

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180224

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1
S 61 M

Accession No. G. H. 2285

Author सिंह, बलवंत

Title मैं जकर शेऊंगी

This book should be returned on or before the date
last marked ~~below~~.

मैं जरूर रोऊँगी !

ॐ

बलवन्त सिंह

लेखक की अन्य कृतियाँ

उपन्यास

रात, चार और चौद

उजाला

एक मामूली लड़की

काले कांस (प्रेस में)

तीसरा आदमी (")

उर्दू में

जग्गा (कहानियाँ और ड्रामे)

तारोपू (नावलेट व कहानियाँ)

सुनहरा देश (")

हिन्दुस्तान हमारा (")

शीराजा (")

उजले फूल (")

पंजाब की कहानियाँ (")

खुदा की वसीयत (नावलेट संग्रह)

मैं ज़रूर रोऊँगी !

बलवन्त सिंह

राजीव प्रकाशन : इलाहाबाद

प्रकाशक एवं मुद्रक,
राजीव प्रेस एवं प्रकाशन
१७ लूकरगंज : इलाहाबाद

मूल्य—तीन रुपया

लेखक की ओर से—

इस संग्रह की कहानियाँ किसी विशेष लक्ष्य को सम्मुख रख कर नहीं चुनी गईं। ये चीज़ कुछ पाठकों को अच्छी लगेंगी और कुछ को नहीं। सच पूछिये तो इनके चुनाव में भी मेरा विशेष हाथ नहीं है। मेरे कुछ मित्रों की मिली-जुली राय से ये कहानियाँ एक संग्रह के रूप में पेश की जा रही हैं।

जैसा कि मेरे पाठक जानते हैं कि पहले मैंने उर्दू में ही लिखना आरम्भ किया । पिछले कई वर्षों के लम्बे अरसे में मेरी बुरी-भली सेवा को उर्दू साहित्य में दिलचस्पी लेने वालों ने जी भर कर सराहा । फिर कुछ मि . . . मेरी कहानियों का हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी के पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया और अब मैं स्वयं अपनी कहानियाँ आपके सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ । परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मैं जिस हद तक उर्दू भाषा, उर्दू साहित्य और उर्दू पढ़ने वालों के मिज़ाज से वाकिफ़ हूँ, उस हद तक हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी पढ़ने वालों के मिज़ाज से नहीं । इसका यह फल हो सकता है कि इनमें से बाज कहानियाँ या तो हिन्दी के पाठकों को बहुत पसन्द ही न आयें, या मैं अपनी ऊपर लिखी दुर्बलता के कारण हिन्दी के मिज़ाज के अनुसार कहानियाँ उपस्थित करने से रह जाऊँ ।

इन कहानियों में से 'प्रतिध्वनि' आज से लगभग दस वर्ष पहले लिखी गई थी और 'एक ही नाव पर' १९५४ में । बाकी कहानियाँ बीच के समय की लिखी हुई हैं । इस अरसे में और भी कई कहानियाँ लिखी गईं, उनमें से कुछ ही इस संग्रह में पेश की जा रही हैं ।

— बलवन्त सिंह

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के नाम

सूची

शाम के धुँधलके में	...	...	६
दूसरी भूल	...	...	२६
शहनाज़	...	...	४७
चकोरी	...	...	६८
पेपर बेट	...	...	८१
वेश्या	...	...	८३
रकीब	...	...	१०६
मैं ज़रूर रोऊँगी !	...	...	१२३
कसक	...	...	१३६
प्रतिध्वनि	...	...	१५०
एक ही नाव पर	...	...	१८४
बाबा मंहगासिंह	...	...	१८४
कठिन डगरिया	...	...	२०७

शाम के धुँधलके में

गर्मी का मौसम, तीन बजे का समय । और फिर जिधर डिब्बे में वह बैठा था, झुलस देने वाली धूप भी उसी तरफ़ की थी ।

स्टेशन पर जब वह डिब्बे में घुसा, तो उसे बीच वाली बेंच पर आराम देने वाली सीट मिल गई थी । जब गाड़ी प्लैटफ़ार्म से बाहर निकल आई, तो उसके सामने वाली सीटों पर बैठे हुए यात्रियों के सिरों पर सूर्य चमकने लगा । खिड़कियाँ बन्द करें, तो हवा रुकती है, खुली रखें, तो धूप झुलसाती है । एक सफेद दाढ़ी वाले बुजुर्ग ने साहस से काम लेकर, उससे कहा—“बेटा, तुम इधर आ जाओ । मुझे छाँव में बैठने दो । तुम जवान हो । मैं ठहरा बूढ़ा और कमजोर ।...”

मैं जरूर रोऊँगी !

वह नौजवान था। अब वह दाढ़ी भी बनवाने लगा था। मगर अभी वह दुनिया के ऊँच-नीच से परिचित न था, केवल कालेज का विद्यार्थी था। धूप की तपन से उसका चेहरा तमतमा उठा। आँखों में नमी-सी आ गई। निर्दयी सूर्य की सुइयों की भाँति चुभती हुई किरणों और लू के भाँकों से अवश्य ही वह बेहाल हो जाता, लेकिन एक मधुर कल्पना ने उसे सम्भाले रक्खा। यात्रा भी कम रह गई थी।

के० एल० साहनी से उनके पुराने सम्बन्ध थे। साहनी एस० डी० ओ० थे। आज-काल एक छोटें में नगर में रहते थे। शायद चार वर्ष पहले उन लोगों को एक-दूसरे के साथ रहने का मौका मिला था। दोनों घरानों के सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो गये थे। फिर अलग हुए, तो सैकड़ों मील का अन्तर उनके बीच पड़ गया। हाँ, पत्र-व्यवहार का सिलसिला जारी था। और जब साहनी साहब का मालूम हुआ, कि वह उनके पास लाहौर ही में पढ़ने के लिये आ गया है, तो वे उसके पिता जी को जब कभी चिट्ठी लिखते, तो इस बात का जिक्र भी जरूर करते, कि 'आप दूर हैं, पर लड़का तो हमारे करीब आ गया है। डेढ़-पाँचे दो घंटे का रास्ता है। कम-से-कम छुट्टियों में तो हमारे यहाँ चक्कर लगा जाया करे।'

पिता जी ने उसे लिखा, और वह जाने को तैयार हो गया। साहनी साहब के यहाँ उसकी दिलचस्पी सिवाय प्रभजोत और किसके साथ हो सकती थी? जब वे अलग हुए थे, तो प्रभजोत की उम्र दस वर्ष से कुछ ऊपर होगी। वह उससे पाँच वर्ष बड़ा था। वे रोज साथ-साथ खेलते रहे। न जाने लाडली जोत किस रंग में दिखाई दे? छोटी उम्र में तो वह प्यारी दिखाई देती थी।...लेकिन वह अभी चौदह वर्ष की ही तो हुई होगी। ऐसा कौन बड़ा परिवर्तन हो गया होगा?

गाड़ी गन्तव्य स्टेशन पर रुकी, तो सुरेन्द्र ने अपना छोटा सा सूट-केस उठाया। भीड़ में धके खाता और पिसता हुआ प्लैटफार्म से

शाम के धुंधलके में

बाहर आया, तो अजीब बेरौनकी-सी देखा। लाहौर वाली वह चहल-पहल यहाँ कौन ? धूल-जमे भदे मकान, सड़कों पर धूल उड़ती हुई। शर्बत बेचने वाली की चीख-पुकार, अत्यधिक भदे तौंगे। यदि उसके पास सूट-केस न होता, तो वह तौंगे की सवारी की जगह पैदल चलना पसन्द करता।

तौंगे के बाद मुहल्ले की गलियों की गवाक छाननी पड़ी। अन्न में उसने साहनी साहब का घर ढूँढ़ ही निकाला। दरवाजा खटखटा कर, वह बाहर से मकान का निरीक्षण करने लगा। कम-से-कम अपने मुहल्ले के अच्छे घरों में गिना जा सकता था। दीवारों पर रंग-रोगन न हुआ था। ईंटें, जो किसी समय लाल रंग की होंगी, अब मटियाली-सी हो गई थीं, और जगह-जगह काई जमी हुई थी।

दरवाजा खुला, और एक नन्ही-सी लड़की ने उसे भौंक कर देखा। वह उसे पहिचान न सका। साहनी साहब के पहले ही तीन लड़कियाँ थीं। सुना था, कि और भी हुई थीं। बच्ची उसका मुँह ताकने लगी। कोट-पतलून पहिने, टाई लगाये, एक लम्बा-सा नौजवान उसके सामने खड़ा था।

“तुम्हारा नाम क्या है, मुन्नी ?”

“बेबी।”

“बेबी ?”

बेबी ने सिर हिला दिया।

“अच्छा, तो तुम्हारे बाबू जी घर में हैं ?”

“नहीं।”

“बीबी जी हैं ?”

“हैं।”

“उनसे कहो कि सुरेन्द्र आये हैं।”

मैं जरूर रोज़ंगी !

मुन्नी 'उर्फ' बेबी चली गई । थोड़ी देर बाद उसे अन्दर बुला लिया गया ।

श्रीमती साहनी बहुत अच्छी तरह मिलीं । उसे पलंग पर बैठाया । बेबी और एक उससे बड़ी लड़की पहले तो उसे दूर से देखती रहीं, फिर आहिस्ता-आहिस्ता बातें करने लगीं ।

अजनबी वातवरण में उसकी कुछ बेचैनी-सी महसूस की, फिर धीरे-धीरे घुलने-मिलने लगा । देशी पैमाने को नज़र में रखते हुए देखें, तो कमरा अच्छे-खासे ढंग से सजा हुआ था । आमने-सामने बिछे हुए दो पलंग नई डिजाइन के बने हुए थे । ड्रेसिंग टेबिल और खूंटियों पर लटके हुए रंग-बिरंगे हलके-फुलके कपड़ों से आधुनिकता की गंध आती थी ।

उसके लिये शिकंजीन तैयार हो रही थी । रसोई-घर से लोटे में चम्मच चलने की आवाज़ आ रही थी ।

जब वह शिकंजीन पी रहा था, तो श्रीमती साहनी उसके साथ, बातें हुए दिनों की बातें करने लगीं । उसे उनके घर का सुथरा और सुन्दर रख-रखाव सदा से बहुत पसन्द था । थोड़ी देर बाद ही उसने अनुभव किया, कि उसने वहाँ आकर कोई भूल नहीं की । इतने में बाहर वाले कमरे से बच्चियों के दादा की आवाज़ आई । श्रीमती साहनी ने हँस कर, कहा--“भई, अब तुम कपड़े बदल डालो, और जरा आराम से हो बैठो । कब तक यों कसे-कसाये रहोगे ? मैं तब तक इनके दादा को पानी दे आऊँ । अब सोकर उठे हैं ।...नौकर दोपहर को दो घंटे की छुट्टी लेकर चला जाया करता है ।”

यह कह कर, वे तो बाहर चली गईं, और वह कपड़े बदलने लगा । उसकी निगाहें जोत को ढूँढ़ रही थीं । वह कहीं नज़र न आती थी । उसके मन में सन्देह उत्पन्न हुआ—वह कहीं चली न गई हो, किसी सम्बन्धी के यहाँ ।

शाम के धुँधलके में

थोड़ी देर बाद श्रीमती साहनी आ गईं। उसे देखकर हँस पड़ीं।
“लुंगी तुम्हें सजती है। सिल्क तो खैर आजकल मिलती नहीं, नहीं तो सिल्क की लुंगी और अच्छी लगती है।”

“चाचा कहाँ हैं, चाची?”

“मैंने तुम्हें बताया नहीं? वे आज ही दौरे पर गये हैं। कल तक आ जायेंगे। तुम्हें बहुत याद करते हैं। तुमने हमें अपने आने की खबर ही नहीं दी...”

“बात यह हुई, चाची, कि मुझे इन छुट्टियों का खुद ही पता नहीं था। हमारे कालेज की एक टीम देहली जा रही है। लड़कों ने भी साथ जाने की ठानी। कई लड़के साथ गये हैं। बड़ा जबरदस्त मैच होगा। इसीलिये तीन दिन की छुट्टियाँ हो गईं। इतवार मिलाकर चार दिन हो जायेंगे। आज कालेज में छुट्टियों का एलान हुआ, और आज ही मैं तैयार होकर इधर चला आया।”

श्रीमती साहनी ने फिर उसकी माँ और बुवा की चर्चा छेड़ दी।
“वे बहुत याद आती हैं। न जाने कब मिलना हो।” पर उसके मन में दूसरी ही बात खटक रही थी। आखिर वह न रह सका। पूछा—“चाची, जोत कहाँ है?”

“हाय, हाय, जोत की तो कोई बात ही नहीं हुई। तुम दोनों तो साथ खेलते रहे हो न। तुम्हें अब तक याद है। वह भी तुम्हें बहुत याद करती है। कहती है, कि ‘अब तो सुरेन्द्र भैया लाहौर में आ गये हैं, हम जो जी चाहेगा, उनसे मँगवा लिया करेंगे। लाहौर तो बड़ा शानदार शहर है, वहाँ सब कुछ मिल जाता है।’”

वह उसे याद करती थी, यह सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। पर वह थी कहाँ? चाची असल बात तो बतलाती ही नहीं।

“क्या वह पढ़ती है?”

“हाँ-हाँ, पढ़ने ही तो गई है। बस, अब आती होगी। बहुत बातें

मैं जरूर रोऊँगी !

करती है, एक दम को चुप नहीं बैठती। छुट्टी के बाद भी सहेलियों से बातें किये जाती है। घर आना तो उसे याद ही नहीं रहता !”

“और चुन्नी भी पढ़ती है ?” उसने जोत की छोटी बहन के बारे में पूछा।

“हाँ, पढ़ती है। पर इस साल उसे टाइफाइड हो गया था न। बेचारी बहुत कमजोर हो गई थी। हमने उसे स्कूल से उठा लिया। अब अपनी बुआ के पास देहात गई हुई है।”

यद्यपि वह अन्य लड़कियों के विषय में भी जानना चाहता था, लेकिन वह बोला नहीं, चुपचाप छोटी बच्चियों की ओर देखने लगा।

श्रीमती साहनी कुछ भौंप कर, बोली—“अब हमारे घर में पाँच लड़कियाँ हैं भगवान की दया से। भला कौन पूछे परमात्मा से कि हमें इतनी लड़कियों का क्या अचार डालना है ? सब से पहले जोत आई। हमने कोई विशेष ध्यान न दिया। फिर चुन्नी। अब हमें कुछ चिन्ता हुई। पुत्र का मुँह देखने को तरस रहे हैं, लेकिन यहाँ तो लड़कियों का तौता बँध गया है। अब हमारे पास पूरी फ़ौज-की-फ़ौज है।”

कुछ देर और इधर उधर की बातें होती रहीं। इतने में उनकी कोई सहेली आ पहुँची। आँगन में दीवार की छाया उतर आई थी। वे दोनों बाहर जा बैठीं, और सुरेन्द्र एक पुरानी पत्रिका के पन्ने उलटने लगा।

थोड़ी देर बाद तेज़-तेज़ कदमों और महीन स्वर में बातों की आवाजें आने लगीं। उसने नज़र उठाई। खिड़की के आगे आँगन में एक रंगीन-सी छाया दिखाई पड़ी।

उसका हृदय धड़कने लगा। शायद वह जोत ही थी। माँ ने सम्भवतः उसे उसके आगमन की सूचना दी, और दूसरे ही क्षण प्रसन्नता-भरी एक चीख सुनाई पड़ी। जोत ने कमरे में प्रवेश कर, कहा—“भैया, नमस्ते !”

वह पलंग पर से उठ खड़ा हुआ, अचरज और आनन्द से प्रफुल्लित,

निस्तब्ध जोत इतनी तेजी से उसके करीब आई, मानो वह उसके गले से लिपट जायगी। किन्तु उसके बहुत निकट आ कर, वह रुक गई। दोनों हाथों की उँगलियाँ एक-दूसरे में गूँथकर, उसने एक क्षण के लिए उसकी ओर देखा। “अब तो आप बड़े हो गये हैं। सूरत से रोब टपकता है।...बैठिये न। आप खड़े क्यों हो गये?”

वह बैठ गया। “जांत, अब तुम भी तो बड़ी हो गई हो।” यह कह कर, उसने उसके चेहरे पर नज़रें गाड़ दीं, यों ही, बेमानी सी नज़रें। यहाँ तक कि जांत ने आँखें मिलाने की जगह इधर-उधर देखना शुरू कर दिया। लेकिन वह परेशान नहीं था। इतने में वह भी संभल गया। और फिर दोनों हँस-हँस कर बातें करने लगे — बीते हुए दिनों की बातें, स्कूल की, किताबों की, सिनेमा, सहेलियों की, लाहौर की, लड़कियों की, लड़कों की बातें। सारांश यह कि बातें-ही-बातें। फिर जोत ने अपने हाथ की काढ़ी हुई चीजें दिखाईं, अपनी किताबें दिखाईं।

“आपने कुछ खाया?”

“खाया तो नहीं, पिया है।...भूख नहीं थी। अब पसीना सूख चुका है। सोचता हूँ, कि नहा लूँ।”

“हाँ, जरूर नहा लीजिये। सारी सुस्ती दूर हो जायगी। गुसलखाने का नल खराब है। आँगन में नल के नीचे नहाते शायद आपको शर्म आये। रसोई घर पास ही है। हम वहाँ भी नहा लिया करते हैं। बस, वहीं ठीक रहेगा। मैं पानी की दो बालटियाँ भर कर रखवे देती हूँ। आप भी बस तैयार हो जायँ।...अच्छा, पहले मैं कपड़े बदल लूँ” यह कहकर, वह अन्दर चली गई।

कपड़े बदल कर, वह खिड़की के सामने नल से पानी भरने लगी।

उसका क्रंद लम्बा हो गया था। बाल वैसे तो काले थे, पर ध्यान से तेज रोशनी में देखा जाय, तो उनमें भूरापन दिखाई देता था। बदन इकहरा था, बल्कि अच्छी तरह भरा भी नहीं था। सीना उभर आया

मैं जरूर रोऊँगी !

था। मुँह को दहाना बहुत छोटा था। नाक सुन्दर, लेकिन कुछ लम्बी थी, और आशा थी कि चेहरा भर जाने पर बिलकुल फिट दिखाई देने लगेगी।

पानी रसोई घर में रख कर, वह उसे सूचना देने के लिये आई। सुरेन्द्र ने तौलिया कन्वे पर डाली, और रसोई घर में चला गया। वहाँ थालियाँ, कटोरियाँ, गिलास आदि बेतरतीबी से पड़े थे। जब लगभग नहा चुका तो दरवाजे के पास से आवाज आई—“भाई साहब, मैं अंदर आ सकती हूँ ?”

“ओ यस !” उसने हँसकर जवाब दिया।

जोत कोई बरतन लेने के लिए आई थी। उसने बरतन उठाया, और चहक कर बोली—“आह, आपको याद है, आप कहानियाँ सुनाया करते थे। मुझे और चुभी को ?”

उसने हाथ बढ़ाकर, तौलिया अपनी ओर खींचते हुए, जवाब दिया - “हाँ, मुझे याद है।... भई तुम्हारी मेमरी राजब की है। सब बातें याद हैं अब तक !”

वह जाते-जाते द्वार के पास रुक गई। “आज मैं आपसे कहानी सुनूँगी। एक नहीं, बहुत सी। इतने दिनों आप मिले नहीं। सारा जुमाना वसूल किया जायगा।”

वह एक कदम आगे बढ़कर, रुक गई थी। उसके ढीले-ढाले बालों की लम्बी चोटी हवा में झूल रही थी। नहाने की तैयारी कर रही थी, इसलिये कमर के गिर्द अँगौछा लपेट रक्खा था। उसमें उसके टखने, सुन्दर और मुडोल पिंडलियाँ, जो अभी भरपूर न हुई थीं, दिखाई पड़ रही थीं। सूर्य के तीव्र प्रकाश में उसके सीने का उभार स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। हवा के झोंके से कमीज का कपड़ा अन्दर को दबे हुये पेट से जा लगता था। उसके शरीर की कच्चे अँगूरों की-सी रंगत थी। मुस्क-राहट, हँसी और प्रत्येक गति में लड़कपन का अलहड़पन था।

शाम के धुँधलके में

“कहानी जरूर सुनाऊँगा,” उसने कहा ।

वह चली गई । और वह कहानी के बारे में सोचने लगा । और फिर एक विशेष ढंग की मुस्कराहट उसके हाँठों पर फैलती चली गई ।

इसके बाद जोत नहाने के लिए रसोई घर में चली गई ।

सुरेन्द्र ने शीशे के सामने खड़े हाँ, अपने बाल सँवारे ! बालों से अधिक अपनी सूरत की ओर उसका ध्यान रहा । फिर वह पलंग पर आ बैठा ।

जोत नहाकर रसोई घर से बाहर निकली । उसने सिर झुकाकर, जूड़ा खोल दिया । बाल लटक कर धरती चूमने लगे । उसने सिर पर तौलिया डालकर, बालों को रगड़-रगड़ कर पोंछ डाला । फिर उन्हें झटका-झटका कर छुँटने लगीं ।

इतने में श्रीमती साहनी अन्दर आईं । बोली—“बेटा, कमरे के अन्दर तो बहुत गर्मी है । अब तो आँगन में धूप नहीं रही । आओ, यहाँ बैठो ।”

वह आँगन में जा बैठा । वहाँ उसे श्रीमती साहनी की सहेलियाँ से कुछ संकोच-सा लगता रहा, अतः वह पत्रिका पढ़ता रहा । जब श्रीमती साहनी की सलियाँ चली गईं, तो आँगन में नौकर ने भोजन बनाने के लिए आग जला दी । धुआँ उठने लगा । श्रीमती साहनी ने कहा—“बेटा, अब सूरज डूब चुका है । चाहो तो छत पर जा बैठो ।”

“हाँ, बीबी जी, मैं भी ऊपर बैठूँगी । बाल भी सूख जायँगे, और कहानी भी सुनूँगी । और आप मुझे कोई काम न बताइयेगा । मैं कुछ नहीं करूँगी ।” अन्दर से आवाज आई ।

वह मन में प्रसन्न हुआ ।

श्रीमती साहनी बोली—“पहले ही तू कौन-से बड़े काम किया करती थी, जो आज नहीं करेगी ? वस बातों का पिढारा है !” कह कर, वे हँस दीं ।

मैं जरूर रोऊँगी !

पत्रिका बन्द कर, वह छत पर जाने के लिए उठा। जोत जल्दी से बाहर आई, और लपक कर उसके आगे-आगे छत पर यह कहती हुई चढ़ने लगी—“उहरिये, मैं आपके लिये बिस्तर ठीक कर दूँ।”

जब वह ऊपर पहुँचा, तो देखा कि जोत अपने गोरे-गोरे हाथों से खुद ही उसका बिस्तर बिछा रही है। वह पास ही खड़ा होकर, इन्तज़ार करने लगा। आगिर बिस्तर बिछ गया। जोत ने सिरहाने की ओर दो तकिये धर कर कहा—“लीजिये, भाई साहब, तशरीफ का टोकरा रख दीजिये !” कह कर, वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

वह स्वयं उसके सामने वाली चारपाई पर गोल किये हुए बिस्तरे पर कोहनी जमाकर बैठ गई। उस समय उसने लट्ठे का शलवार पहिन रखी थी, और ऊदे रंग की कमीज, और बिखरे हुए बालों पर निहायत बारीक चुनरिया ओढ़ रखी थी। उसके चेहरे से प्रफुल्लता फूटी पड़ती थी। चेहरे पर किसी प्रकार का रंग-रोगन नहीं था। सिर्फ आँखों में मुरमे की बारीक और हल्की-सी धारियाँ दिखाई पड़ रही थीं।

मुट्ठी पर ठड्ठी रखे, वह थोड़ी शोखी से उसकी ओर से देख रही थी। जान पड़ता था, कि अभी प्रेम-व्रेम से पाला नहीं पड़ा, नहीं तो इतनी निस्संकोच और निर्भीक न दिखाई पड़ती। दोनों ओर मौन था। आखिर जोत बोली—“हम कहानी का इन्जार कर रहे हैं।”

मुनेन्द्र ने गहरी साँस ली, और इधर-उधर देखा। दूसरे घरों की छतें साथ-साथ मिली हुई थीं। लेकिन एक-दूसरे की छत पर बैठे हुए लोग दिखाई नहीं देते थे, बशर्ते कि कोई खास तौर पर खड़ा होकर और एड़ियाँ उठाकर न भाँके।

“हाँ, भाई साहब...शुरू हो जाय।...एक...दो...तीन !”

उसने अभी तक कोई कहानी न सोची थी। पहले भी वह कहानियाँ सोचा नहीं करता था। बस यों ही ‘एक था राजा...’ से कहानी शुरू कर देता था, और जहाँ धबराया, उसे समाप्त कर देता था। लेकिन वे

शाम के धुँधलके में

कहानियाँ भूतों, परियों, राजकुमारों, राक्षसों और जादूगरों की होती थीं ।
और अब वैसी कहानी सुनाना तो व्यर्थ होगा ।

जोत उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी ।

उसने कहानी का प्लॉट तो न बनाया, बस यह निश्चय कर लिया,
कि कहानी की थीम क्या होगी ।

“अच्छा, तो एक था लड़का ।...”

“राजा नहीं ?”

“अब तो इतनी बड़ी हो गई हो, क्या अब थी राजा-रानी की ही
कहानी सुनोगी ? हाँ, तो एक था लड़का ।”

“हूँ ।”

“वह लड़का पहले तो गाँव के स्कूल में पढ़ता रहा, और फिर...”

“उस लड़के का नाम क्या था ?”

“नाम ?... उसका नाम अरुण था ।... अरुण पहले तो गाँव के
स्कूल में पढ़ता रहा, और जब दसवें की परीक्षा पास कर ली, तो उसके
पिता जी ने उसे लाहौर में पढ़ने के लिये भेज दिया ।...”

“क्या उसका बाप बहुत अमीर था ?”

“बहुत... लाहौर पहुँच कर, वह कालेज में दाखिल हो गया ।...”

“कौन से कालेज में ?”

“अब उसे अनुभव हुआ, कि यह गढ़ी हुई कहानी भी जरा सोच-
समझ कर सुनानी पड़ेगी ! यहाँ तो आरम्भ में ही जिरह होने लगी । “वह
गवर्नमेन्ट कालेज में दाखिल हुआ ।...”

“क्या वह बहुत अच्छा कालेज है ?”

“बहुत ।... और हाँ भई, मुझे बिना जरूरत मत टोका करो । इस
तरह मैं कहानी भूल जाता हूँ ।... क्या कह रहा था मैं ?’...”

“वह गवर्नमेन्ट कालेज में...”

“हाँ, ठीक... और होस्टल में रहने लगा ।”

मैं जरूर रोऊँगी !

“बोर्डिंग हाउस में न ?”

“हाँ !...तुम्हें शायद मालूम हो या न हो, कालेज के लड़के और विशेष कर लाहौर के कालेजों के बहुत शौकीन होते हैं। बड़े अच्छे और कीमती कपड़े पहिनते हैं। सिगरेट और शराब का भी शौक करते हैं। चश्मा लगाते हैं, सिनेमा देखते हैं, गीत गाते हैं, और आहें भरते हैं।...”

“आहें क्यों भरते हैं ?”

“मतलब यह है...कि तुम जानती हो, जब आदमी जवान हो जाय, तब फिर लड़ाकियाँ बहुत अच्छी लगने लगती हैं।...”

जोत के गालों पर हलके गुलाबी रंग की लहर दौड़ गई !

“और वह लड़का...अरुण...बेचारा गाँव का रहने वाला। वह सीधा-सादा लिबास पहिनता था। न शर्वन पीता था, न सोडा। . वस, समझ लो, कि उसे किसी बात की कुछ खबर नहीं थी। उसके साथी उसकी हँसी उड़ाया करते थे। जब वह उनके पास से निकलता, तो उस पर आवाजें कसते, उसके पाजामे और सीवे-सादे कुरते की खिल्ली उड़ाते।...अरुण बेचारा बहुत परेशान हुआ, और जब गर्मियों की छुट्टियों में घर गया, तो पिता के सामने जा खड़ा हुआ, और कहने लगा, ‘अब...बाबूजी...मैं...मैं पढ़ने नहीं जाऊँगा लाहौर में..’”

इतना कह कर, उसने अपने हाथों से आँखों को मला, मानों अरुण की नकल उतार रहा हो।

इस बात पर जोत को बड़े जोर की हँसी आई। “बुढ़ू कहीं का ! अच्छा फिर ?”

“बाप ने पूछा, ‘क्यों, बेटा, क्या बात है ?’ इस पर उसने सारा हाल कह सुनाया। आखिर उसके बाप ने उसे छुट्टियों में बहुत से अच्छे कपड़े सिलवा दिये। और जब वह सूट-बूट पहिने कालेज में पहुँचा, तो...”

शाम के धुंधलके में

“उसके साथी बहुत हैरान हुए होंगे ?”

“हाँ ! कहाँ पहले का गँवार अरुण, और कहाँ अब कोट, पतलून, टाई और अन्य फैशनों से सुसज्जित मिस्टर अरुण । पहले-पहले तो उन्होंने उसकी बहुत हँसी उड़ाई, लेकिन अन्त में हार मान ली ।... अरुण की सूरत-शकल तो उनमें से बहुतों से पहले ही अच्छी थी । खूब जँचता-फबता था ।...वे उसकी कहाँ तक हँसी उड़ा सकते थे ? अब वह भी उनका साथी बन गया ।...”

“अब वह सिगरेट भी पीने लगा होगा, और...शराब, सिनेमा...”

“हाँ, अब बड़े अदा के साथ सिगरेट पीता था । दिन में कई-कई डिब्बियाँ खतम कर डालता ।...शराब भी पीता, और सिनेमा भी देखता ।...यहाँ, तुम्हारे शहर में तो दो ही सिनेमा हैं, पर लाहौर में बीसियाँ हैं । और फिर यहाँ कोई अँगरेजी सिनेमा नहीं है । वहाँ अँगरेजी सिनेमा हाउस भी बने हैं ।...”

“हाय, मैंने अँगरेजी फिल्म नहीं देखा कभी ।.....क्या वे बहुत अच्छे होते हैं ?”

“अरे, तुमने अब तक अँग्रेजी पिकचर नहीं देखी ? अँग्रेजी फिल्म बहुत अच्छे होते हैं । उसमें लड़के लड़कियाँ खूब प्रेम करते दिखाये जाते हैं ।...कभी वे प्यार से एक-दूसरे के हाथ पकड़ लेते हैं...कभी एक-दूसरे से लिपट जाते हैं, और आपस में प्यार करने लगते हैं ।... इसी तरह की और बातें दिखाई जाती हैं । ”

जोत के चेहरे पर गहरे गुलाबी रंग की एक और लहर आई, और उसकी शलवार के पाँचों में सफेद पाँव बेचैनी से हिले, जैसे कबूतर अपने काबुक के खानों में से भाँक रहे हों ।

उसने कहानी जारी रखी—“इस प्रकार की फिल्में देख कर अरुण के मन में गुदगुदी-सी होने लगती । इसलिए जब सड़क पर उसे कोई नौजवान लड़की दिखाई देती, तो वह आँहें भरने लगता ।...लाहौर में

मैं जरूर रोऊँगी !

लड़कियों को भी कमी नहीं है ।...एक से एक तरहदार...रंगीन लिबास पहिने, बड़े बॉकपन से चलती हैं । अगर कोई उनकी ओर प्यार से देखे तो वे बुरा नहीं मानती ।”

यह कह कर, उसने जोत की ओर प्यार-भरी निगाह से देखा । और जान पड़ता था, कि उसने बुरा नहीं माना । उसने कहा—“अरुण शाम को पिक्चर देखता था । और यदि कोई नई पिक्चर न चल रही हो, तो सैर करने के लिये लारेन्स गार्डन चला जाता था । वहाँ नगर के पुरुष, स्त्रियाँ, नौजवान लड़के, लड़कियाँ सभी हवाखोरी के लिये जाते हैं । एक दिन संध्या समय जब वह बाग में घूम रहा था, तो उसने घास के प्लाट पर कुछ लड़कियों का देखा । उनमें से एक उसके मन को भा गई । उसके कन्धों पर लटकी हुई धानी साड़ी आदमी को दूर ही से आकृष्ट कर लेती थी । उसने तंग जम्पर पहिन रखी थी, जो उसके शरीर के साथ चिपकी हुई थी । यह जम्पर नये ढंग की सिली थी । पसलियों के नीचे थोड़ी सी कमर की गोरी-गोरी त्वचा बड़ी भली दिखाई पड़ती थी ।...”

जोत ने अपने हाँठों पर जीभ फेर कर उन्हें तर कर लिया । और उसके गीले होठ बड़े आकर्षक दिखने लगे ।

“अरुण की नजर उसकी नजर से मिली । दो क्षण तो दोनों एक-दूसरे के चेहरे से नजरें न हटा सके । ...फिर लड़की ने सिर झुका लिया । और अरुण ने उसे हृदय सौंप दिया ।...”

जोत बड़ी तन्मयता से कहानी सुन रही थी ।

“बस, इसके बाद क्या था, अरुण को उठते-बैठते उस लड़की का ख्याल सताने लगा । उसकी मोहनी सूरत हरदम उसकी आँखों के सामने रहती थी । जब वह रात को लेटता, तो आँहें भर कर धीरे-धीरे कहता, ‘मेरी प्यारी, जान से प्यारी !...’ यहाँ तक कि जिस दिन वह उसे देख न लेता, उसे सन्तोष न होता । लेकिन भला देखने से भी प्यास

शाम के धुँधलके में

बुझती है ?... लेकिन बात करने का मौका ही नहीं मिलता था ।
उसके साथ सदा कुछ न कुछ लड़कियाँ होती थीं ।...

सुरेन्द्र ने खौम कर, पहलू बदला—“हाँ, जोत...भई, कहानी कुछ पसन्द भी है, या मैं यों ही सुनाये जा रहा हूँ ?”

जोत कुछ लजा सी गई । उसके आग्रह करने पर उसने मिर हिलाकर, स्वीकार किया । कहानी फिर शुरू हो गई ।

“एक दिन जब अरुण सिनेमा देखने के लिये गया, तो वहाँ उसे वही लड़की दिग्विदी दी । उस समय वह अकेली खड़ी थी । अरुण सोचने लगा कि बात-चीत कैसे आरम्भ की जाय । यद्यपि वह आँखों-ही-आँखों में प्रेम का जवाब प्रेम से देती रही थी, फिर भी विश्वास के साथ तो फिर भी कुछ नहीं कहा जा सकता था । ...अरुण क्या जाने, कि वह भी उसे चाहती है या नहीं ।...अँगरेजी सिनेमा-घर में स्त्रियों के लिये टिकट की अलग खिड़की बनी होती है । उस दिन भीड़ अधिक थी; इस-लिये बहाना अच्छा था । वह लड़की की ओर बढ़ा, और कहने लगा—‘यदि कष्ट न हो, तो मुझे एक टिकट ले दीजिये ।...आज भीड़ बहुत अधिक है ।’...लड़की पहले झिझकी, फिर उसने जल्दी से टिकट लेकर, उसके हाथ में थमा दिया, और धीरे से कहने लगी—‘मेरे साथ दो सहेलियाँ हैं । इस समय बाथ रूम में गई हैं । आती ही होंगी ।...’ वह उसका मतलब समझ गया और स्वयं उससे परे हट गया ।.. उस दिन उसका मन बहुत ही प्रसन्न था । अपनी प्रेमिका की मधुर स्वर-लहरी उसके कानों में रस घोलती रही । रात वह देर तक उसके कल्पना में जागता रहा ।...”

कुछ देर रुक कर सुरेन्द्र ने जोत के चेहरे का अध्ययन किया । वह लजा रही थी किन्तु कहानी में उसकी दिलचस्पी बढ़ती जा रही थी ।

“उस दिन के बाद बाग में दूर ही दूर से दर्शन होते रहे । उसने

मैं जरूर रोऊँगी !

चाहा, कि उसका घर देख लें; किन्तु जब उसका पीछा करता, तब लड़की घूम कर इशारे से उसे मना कर देती। शायद उसे अपनी सहेलियों का डर था।...आखिर एक दिन एक कदम और बढ़ाया गया। उस दिन सध्या हो चुकी थी। वह बाग में बनी हुई नकली पहाड़ियों में एक के ऊपर खड़ा था। उधर से वह लड़की अपनी सहेलियों के साथ आती दिखाई दी। वे संख्या में पाँच थीं। शेष चार तो किसी विषय पर बड़े जोर-शोर से बहस कर रही थीं। सिर्फ उसकी प्रेमिका चुपचाप उनके पीछे-पीछे चली आ रही थी। वह एक मोटे से पेड़ की ओट में हो गया। जब वे आगे निकल गईं, तो उसने हाथ बढ़ा कर अपनी प्रेमिका को खींच लिया। वह पहले तो डर गई, किन्तु उसे देखा, तो शर्मा गई, और घबरा कर इधर-उधर देखने लगी। फिर बोली—‘मुझे जाने दीजिये। वे दूर जाकर, मुझे अपने साथ न पायेंगी, तो न जाने क्या समझें’...उसने जल्दी से उसे एक बार अपने गले से लगा लिया।...उमे बहुत-सी बातें पूछनी थीं। ‘आप कब तक सताइयेगा? मुझे न आपका नाम मालूम है, न पता...।’ लड़की बहुत जल्दी में थी। बोली—‘कोकिला नाम है मेरा। अब जाती हूँ। कल पता काराज पर लिख कर फेंक दूंगी। ध्यान से उठा लीजियेगा। किसी का पता न चले। और मेरी ओर बहुत न देखा कीजिये।...शक हो जायगा।’ यह कहकर, वह उसकी बाँहों में से मछली की भाँति फिसल कर, भाग गई।...”

जोत गहरी-गहरी साँसें ले रही थी। उसकी आँखों में धुँधली-सी कुछ दिखाई देने लगी। वायु मण्डल धुँधला-सा होता जा रहा था, और जोत इस प्रकार दिखाई पड़ रही थी, मानों उसके शरीर की रचना इसी धुँधलाहट से की गई हो, मानो वह सुरमई वायु-मण्डल में घुल-मिल कर दृष्टि से ओझल हो जायगी। फिर उसके होंठ हिले—“क्या कोकिला ने उसे अपना पता दे दिया?”

“हाँ।...उस रात को अरुण बहुत देर तक जागता रहा, और उन

शाम के धुँधलके में

अल्प क्षणों की याद में खोया रहा, जब उसने अपनी प्रेमिका को गले से लगाने की चेष्टा की थी। उसे स्पष्ट रूप से कुछ भी याद न था। आँख झपकते क्या-से-क्या हो गया, और क्या होने से रह गया। बस, एक लचक-सी उसके हाथों में समा गई थी।...उसे वह अब भी अनुभव कर सकता था।...दूसरे दिन संध्या को कोकिला ने कागज का पुर्जा फेंका, जो उसने उठा लिया। वह एक स्थानीय बोर्डिंग हाउस में रहती थी। रात को उसे बुलाया था, और मिलने की तरकीब भी लिख दी थी।”

जोत बिना आँख झपकाये बड़ी तन्मयता से उसकी ओर देख रही थी।

“रात के दस बजे वह होस्टल के पास पहुँचा। कोकिला के निर्देशानुसार उसने बूढ़े चौकीदार को एक रुपया दिया, और स्वयं परे हट कर, पेड़ों की छाया में एक टूटी हुई दीवार के पास खड़ा हो गया।...थोड़ी देर बाद कोकिला खूब बन-ठन कर, खुशबू लगाये हुये आई। उसने उसे अपनी बाँहों में दबोच लिया...इतनी जोर से कि कोकिला का दम घुटने लगा ...किन्तु जब अरुण ने उसके हाँठों पर हाँठ रख दिये, तो उसने आँखें मूँद लीं। ..और उसने भी उसके गले में बाँहें डाल दीं।...फिर अरुण ने उसकी आँखों को चूमा, और फिर .”

शायद कुछ खटका हुआ। जोत एक दम चौंक पड़ी, और धवरा कर इधर उधर देखने लगी। शायद कोई ऊपर आ रहा है। कोई नहीं ! कोई नहीं ! उसके दोनों हाथ सीने पर टिके हुए थे। फिर धुँधलके में उसकी निगाहें सामने बैठे हुये सुरेन्द्र की निगाहों से मिलीं, और फिर धरती की ओर झुक गईं।

उसकी साँस तीव्र गति से चल रही थी और हाँठ काँप रहे थे।...

— — —

दूसरी भूल

एलज हांमियोपैथिक कालेज से एम० बी० बी० एच० पास करने के बाद मैंने अपने शहर ही में एक दूकान खोलने की ठानी ।

यां कहने को यह छोटा-सा शहर अपना ही था, लेकिन मेरी ज़िन्दगी के ज्यादातर दिन पहले लाहौर और फिर कलकत्ते में बीते । लाहौर के मुकाबले में यह अपना शहर कहीं छोटा और बेरौनक-सा था । कहाँ वह, चहल-पहल और कहाँ यह अजनबी और खोया-खोया-सा वातावरण ! हमारे शहर में लोहे के ट्रंक और पेटियाँ तैयार होती हैं । फिर उसे अनाज की मंडी होने के कारण भी कुछ नाम प्राप्त हो गया है ।

मुझे गुरु हरिगोविन्द बाजार में दूकान मिली । दूकान अच्छी

दूसरी भूल

खासी थी, लेकिन इस बाजार में वह चहल-पहल न थी । बड़ा बाजार एक ही था । बाकी दो तीन छोटे बाजार थे । गुरु हरिगोबिन्द बाजार बड़े बाजार की अपेक्षा बेरौनक था । दूकान के शुरू के इन्तजामों से छुट्टी पाने के बाद रोगियों की प्रतीक्षा में कुछ अजीब नीरसता से दिन कटने लगे ।

घर से रवाना होने से पहले मैं अपने नौकर को दूकान पर भेज देता था । वह दूकान में भाड़ देता, भाड़न से अलमारियाँ और बाकी फर्नीचर साफ करता । बाद में जब मैं पहुँचता, तो अपने नाम के साइनबोर्ड के नीचे लगी हुई 'अन्दर' 'बाहर' वाली तख्ती के पास क्षण भर रुकता, और 'बाहर' को टाँक कर 'अन्दर' को खोल देता । फिर बड़ी मेज के करीब बिछी हुई कुरसी पर बैठ जाता । मेरा नौकर दूकान के बाहर वाले चबूतरे पर बैठा मक्खियाँ उड़ाया करता, और मैं स्टैथस-कोप हाथ में लिए हुये, कल्पना-ही-कल्पना में उस समय की अपनी व्यस्तता का विचार कर, मन ही मन खुश होता, जब मेरी दूकान पर रोगियों की भीड़ इकट्ठा रहेगी । रोगी दिन निकलते ही मेरी दूकान के आगे आ बैठकर करेंगे । बल्कि मैं चबूतरे पर लकड़ी की कुछ बेंचें डलवा दूंगा, जिसमें कि उन्हें तकलीफ न हो । फिर मैं अपने वक्त से कुछ बाद दूकान पर पहुँचा करूँगा । और जब बग़ी या कार में से चश्मा लगाये उतरा करूँगा, तो लोग हाँठों पर उँगलियाँ रख कर सब को चुप रहने के इशारे किया करेंगे । दबी-दबी आवाजें सुनाई देंगी, 'डाक्टर साहब आ गये ! डाक्टर साहब आ गये !' किस ठाट से मैं कुरसी पर बैठा एक ही नज़र में रोगियों के असिल रोग पहिचान कर नुसखे-पर-नुसखे लिखता चला जाऊँगा ।

कुछ दिन तो इसी तरह के खयाली पुलाव पकाते बीत गये । लेकिन जब उन स्वप्नों का कोई फल न निकला, तो दिल में एक कोफ्त-सी होने लगी ।

मैं जरूर रोऊँगी !

हालाँकि बाजार में वह चहल-पहल और गाड़ियों और साइकिलों की वह रेल-पेल न थी, फिर भी बाजार का यह हिस्सा हलचल से बिल्कुल खाली भी न था । मेरी दूकान के ठीक सामने किसी नौजवान सिख की दूकान थी । इस जगह बाजों, ग्रामोफोनों, फाउन्टेन पेनों आदि की मरम्मत की जाती थी । उस दूकान के तख्तों पर—

‘जाते हो किस तरफ को किधर को खयाल है ?

बीमार बाजों का तो यही अस्पताल है ।’

की तरह के शेर और वाक्य लिखे हुए थे । यह सरदार भी अजब मस्त आदमी था । कभी दूकान खुली है, कभी बन्द । उसके साथ पीतल के बरतनों के बीच बड़ी गागर की भाँति बैठा हुआ बनिया बहुत भला दिखाई देता था । एक तरफ मुंशी दीन मुहम्मद साइकिल वाले की दूकान थी । मेरी दूकान ही बगल में चौंड़ी के बरक कूटने वालों ने डेरा जमा रक्खा था । एक सरदार ईश्वर सिंह कलईगर भी थे । सारांश यह, कि अजीब बेढगा-सा बाजार था । भाँति-भाँति के लोग इस जगह जमा थे ।

शुरू-शुरू में मेरी जानकारी बस यहीं तक सीमित थी, क्योंकि मैं बाजार में कभी-कभी ही खड़ा होता था । अधिक समय दूकान के अन्दर ही बीतता था । इसका एक कारण यह भी था, कि यों ही बाजार में खड़े होकर नज्जाराबाजी करने से डाक्टरी-जैसे भले पेशे की बदनामी का डर होता है, और दूसरे मैं कुछ शर्माता भी था । वैसे मैं स्वभावतः शर्माला नहीं हूँ, लेकिन इस जगह भँपने का कारण यह था, कि मेरा काम पट पड़ा था । मैं कुरसी पर बैठा सोचता, कि देखने वाले न जाने दिल में क्या सोचते होंगे । कहते होंगे कि ये डाक्टर स हब भी बस टुट-पूँजिये ही हैं । रोगी का नाम तक नहीं । रोटी पास से ही खाते हैं, और जम्हाइयाँ लेने के लिये दूकान पर आ बैठते हैं ।

एक दिन मैं रोज की तरह कुरसी पर बैठा ऊँघ रहा था । कस

दूसरी भूल

कर बँधी हुई पगड़ी के नीचे दबे होने के कारण दाँत दर्द करने लगे थे । मैं उँगली बढ़ा कर कान सहला रहा था । उधर बाजार में अनाज के चोरों से लदा हुआ एक ठेला गुजर रहा था । ठेले वाले 'या अली,' 'या अली,' के नारे लगा रहे थे । इतने में मुझे ऐसा महसूस हुआ, मानो कोई आदमी मेरे नौकर से बातें कर रहा हो । मैं तुरन्त चौकन्ना हो गया । पगड़ी ठीक की, और एक हाथ में स्टैंथस्कोप लेकर दूसरे हाथ से टाई को खोलने लगा । नौकर अन्दर आकर बोला—“डाक्टर साहब, सामने की दूकान वाले सरदार जी आये हैं । कहते हैं, रेती से उनका अँगूठा छिल गया है । थोड़ी-सी टिंचर...”

मैं निराश-सा हो गया । सरदार साहब खुद हँसते हुए अन्दर दाखिल हुए । वे शायद कुछ कहने ही को थे, कि मुझे देख कर एकाएक रुक गये । उनके चेहरे पर आश्चर्य के चिह्न उभर आये । कुछ रुक कर बोले—“आप सरदार चिरंजीत सिंह हैं ?”

“जी !” मेरे नाम का बोर्ड बाहर लटका हुआ था ।

“आपने मुझे नहीं पहिचाना ?”

मैं दिमाग पर जोर देकर सोचने लगा । ...मेरे सामने एकहरे बदन और कुछ निकलते हुए कद का बाईस-तेईस वर्ष का एक नवयुवक खड़ा था । मैंने बहुत सोचा । कुछ ऐसा जान पड़ रहा था, जैसे इस आदमी को मैंने कहीं देखा है । उसके चेहरे की रूप-रेखा से मैं बिलकुल अपरिचित तो न था, लेकिन...

“मैं स्वरूप सिंह हूँ ।”

मेरा मन छः-सात वर्ष फलाँगता हुआ अचानक एक जगह रुक गया और हाँ...वे दिन सिनेमा के दृश्यों की भाँति आँखों के सामने फिरने लगे । मैंने उठ कर उससे बड़े जोश से हाथ मिलाया । हम दोनों के ठहाकों से दूकान गूँज उठी, और मैंने माफी माँगी । वास्तव में मैं उसकी दाढ़ी के कारण उसको पहिचान नहीं सका था ।

मैं जरूर रोज़गी !

वह करीब आध घण्टा मेरे पास बैठा रहा ।

जब वह चला गया, तो मुझे पिछले जीवन के वे दिन याद आने लगे । उनकी याद सचमुच बड़ी ही दिलचस्प थी । मैं बी० ए० का विद्यार्थी था । अजब बेफिकरी में दिन बीतते थे । उन्हीं दिनों स्वरूपसिंह से मेरी पहली मुलाकात हुई । मैं लाहौर के एफ० सी० कालेज में पढ़ता था, और यद्यपि पहले दर्जे के विद्यार्थियों में से तो न था, लेकिन कुछ ऐसा गया-गुजरा भी न था । मेरी प्रतिभा के सभी कायल थे । वास्तव में मैट्रिक तक तो मैं बहुत आला दर्जे का विद्यार्थी समझा जाता था । लेकिन कालेज का जीवन शुरू होते ही, मैं कोर्स की किताबों की जगह दूसरे शौकों में लगे गया । कविता से दिलचस्पी थी, सिनेमा देखने का शौक था, खेल-कूद में पागल रहता था, और आवारगी और गप्पबाजी में तो सब से ज्यादा आनन्द आता था । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मैंने होस्टल में रहना उचित न समझा, और एक मामूली होटल में एक कमरे का इन्जाम करके हर तरह के बंधनों से मुक्त हो, भजे में दिन बिताने लगा ।

जिस साल मेरी मुलाकात स्वरूप सिंह से हुई, वह साल मैंने बड़ी बेफिकरी में बिताया । नतीजा यह हुआ, कि मैं फेल हो गया । उन दिनों खाने-पीने और गप्प हाँकने के सिवा कोई काम न था । काफी रात तक बेपर की उड़ा करती ।

एक दिन होटल के डाइनिंग हाल में भोजन करने के बाद, मैं लेटर-बक्स में अपने नाम की चिट्ठियाँ देख रहा था, कि होटल के आगे एक ताँगा आकर रुका । उसमें से पन्द्रह-सोलह बरस का एक लड़का नीचे उतरा, और होटल में दाखिल हुआ । मैंनेजर ने नौकर से कहा, कि उसका सामान आठ नम्बर के कमरे में पहुँचा दिया जाय ।

उस दिन मैंने स्वरूप सिंह को पहली बार देखा था । इसके बाद आते जाते मैंने उसे कई बार देखा । वह एकहरे बदन का हल्का-फुल्का-सा

दूसरी भूल

नौजवान था। रंग गेहुँआ, चेहरा लम्बोतरा, आँखें छोटी न बड़ी, लेकिन शोख और चमकदार, भवें खिंची हुईं, गाल कुछ चपटे, नन्हीं-नन्हीं मूछें, नाक और होंठ पतले और फड़कते हुए ! वह बेदब-सी पगड़ी बाँधता था। आमतौर पर नौकरों से बातें किया करता, या सामने की दूकान में तले हुए बेंगन खाया करता। सूरत से बहुत शरीर, चुलबुला और नटखट लड़का दिखाई देता था।

शायद मैं उसकी ओर कभी ध्यान न देता, क्योंकि हम दोनों की उम्र में काफी फर्क था। मैं उस समय बीसवें वर्ष में प्रवेश कर चुका था। डाढ़ी निकल आई थी, कालेज का विद्यार्थी था। कहाँ एफ० सी० कालेज का अंडर-ग्रेजुएट, और कहाँ बेचारे ये स्कूल के लड़के। लेकिन मुझे पहले पहल यह महसूस हुआ, जैसे वह हमेशा मेरी तरफ देखता रहता है। जब कभी मैं उसके करीब से गुजरता, या उसकी मौजूदगी में करीब या दूर खड़ा होता, तो मुझे आप-ही-आप महसूस होता, जैसे वह मेरी तरफ देख रहा हो। और मेरा खयाल गलत नहीं होता था, क्योंकि जब कभी मैंने सिर उठा कर उसकी तरफ देखा, उसे अपनी ओर देखते हुए पाया। और जैसे ही मैं उसकी ओर देखता, वह तुरन्त मुँह फेर कर दूसरी ओर देखने लगता।

और यह थी भी कुछ परेशान होने की बात। पहले मैंने सोचा, कि शायद वह मेरा मजाक उड़ा रहा है, क्योंकि वह दो-चार लड़कों के साथ खड़ा बातें करता और हँसता होता, और रह-रह कर मेरी ओर भी देख लेता। मैं सोचता, कि किसी दिन इस छोकरे को मजा चखाना पड़ेगा। लेकिन दो-चार दिन बाद यह विचार भी मन से निकालना पड़ा, कि वह मेरा मजाक उड़ाता है, क्योंकि वह अकेला भी होता, तब भी मेरी तरफ देखता ही रहता।

मैंने तय किया, कि किसी दिन उससे पूछूँ, कि आखिर इस हरकत से उसका मतलब क्या है।

मैं जरूर रोऊँगी !

सर्दियों का मौसम था । एक दिन साढ़े-न्यारह बजे के करीब मैं सब से ऊपर की छत पर धूप खा रहा था । मेरा कमरा ऊपर की मंजिल में था । इस लिये अगर कभी कोई दोस्त मौजूद न होता, और कमरे में तबीयत उकता जाती, तो मैं छत पर चढ़ जाता, और दूर नीले आकाश में उड़ती हुई पतंगों की तरफ देखने लगता ।

ऊपर की छत पर एक कोने में पाखाने बने हुए थे । उस समय, जब कि मैं टहल रहा था, स्वरूप सिंह उधर से निकला । उसने मुझे देखा नहीं । वह चुपचाप सीढ़ियाँ उतरने लगा । एकाएक मुझे खयाल आया, कि यह बहुत अच्छा मौका है । अतः मैंने आवाज दी । लेकिन उसने जैसे सुनी अनसुनी कर दी । मैंने फिर कहा - “मैं आप ही से कह रहा हूँ !”

अब उसने आँखें उठा कर मेरी तरफ देखा । सूरत से मालूम होता था, कि अभी-अभी सो कर उठा है । शायद मुँह भी नहीं धोया था । सिर पर तौलिया बँधा था । आँखों के कोनों में लगी हुई कीचड़ सूख रही थी । होठ भी सूखे हुए दिखाई देते थे ।

“जी !” उसने चौंधियाई हुई आँखों से मेरी तरफ देखा । उसके हाँठ खुल गये, और उन पर एक हलकी-सी मुस्कराहट खेलने लगी ।

मैं उसके पास चला गया । हँस कर बोला—“मैं कई दिन से आपसे एक बात पूछने की कोशिश कर रहा हूँ ।...आप जब कभी मुझे देखते हैं...मेरा मतलब यह है, कि आप मेरी तरफ देखते हैं ।...शायद मेरा खयाल गलत हो...लेकिन आप ही कहिये, कि क्या आप मेरी तरफ देखा नहीं करते ? शायद इसकी कोई खास वजह हो !”

मुझसे बात बन नहीं रही थी । वह यह सुन कर, मुस्कराने लगा । अब मैं हैरान था, कि ऐसे आदमी को, जो सूरत से बिल्कुल निर्दोष मालूम होता है, क्या कहूँ ।

मुझे जवाब की प्रतीक्षा करते देख, वह बोला—“अगर मैं आपकी

दूसरी भूल

तरफ देखूँ, तो इसमें आपका नुकसान ही क्या है ?...अगर आप चाहें, तो आप भी मुझे देख लिया करें। मुझे तो इस बात में कोई एतराज न होगा। अगर आपको कुछ एतराज हो, तो कहिये।”

“नहीं साहब, एतराज कुछ नहीं।” मैं कुछ परेशान-सा हो गया। मैंने बात जारी रखते हुए कहा—“लेकिन...अगर कोई यों ही बेमतलब किसी की तरफ देखता चला जाय, तो दूसरा जरा बेचैनी-मी महसूस करता है।”

कुछ रुक कर, वह बोला—“मैं पठानकोट का रहने वाला हूँ। पहले मैं अपने घर से बाहर कभी नहीं रहा। हाई स्कूल पास करने के बाद लाचार होकर लाहौर आना पड़ा। यहाँ रसूल (रसूल नगर के इजीनियरिंग कालेज) के इम्तहान की तैयारी करनी है।...मैं यहाँ उदास रहता हूँ। आपको जब पहले-पहल मैंने देखा, तो मुझे अपने बड़े भाई साहब की याद आ गयी। दूर से आप ठीक उन्हीं की तरह दिखाई देते हैं। आप ही की तरह लम्बोतरी-सी पगड़ी बाँधते हैं। आप ही की तरह वे गूँघर तगड़े-से हैं।...उनकी भी मुझ पर रोब जमाने की आदत है। अभी-अभी जब आपने मुझे बुला कर बात पूछी, तो मुझे फिर वं याद आ गये। लेकिन मैं उनके रोब में नहीं आता हूँ। मैं घर में सब से छोटा लड़का हूँ। मुझे कोई कुछ नहीं कह सकता।”

इस तरह हमारी पहली बातचीत शुरू हुई। इसके बाद हमारे सम्बन्ध गहरे हो गये। यों तो हमारा दोस्ताना था, लेकिन दोनों के दिलों में छुंटे और बड़े होने वाली बात अनजाने तौर पर जड़ पकड़ चुकी थी।

अपने जीवन में मैंने इतना शांख और शरीर लड़का नहीं देखा। उसकी आदतों से जाहिर था, कि सचमुच उसे घर में बड़े लाड़-प्यार से रक्खा जाता होगा। उसकी बात-चीत और प्रत्येक गति एक बिगड़े हुए बच्चे की-सी थी। वह बड़ा हँसमुख और बातूनी था। कई लड़कों से

मैं जरूर रोऊँगी !

उसकी दोस्ती थी। और फिर अगर उसे मालूम हो जाता, कि अमुक आदमी या लड़का पठानकोट का रहने वाला है, तो वह उड़ कर उसके पास जा पहुँचता था। उसे अपने यहाँ चाय पर बुलाता, भोजन कराता, रात अपने ही कमरे में सुलाता, और उसकी बड़ी खातिर करता। एक दिन उसने एक दोस्त के बारे में कहा—“मुझे बैजनाथ विलकुल पसन्द नहीं।... वह कोई अच्छा आदमी नहीं है।... सिगरेट पीता है।... और वह... वह बदमाश औरतों के यहाँ भी जाता है।”

“फिर तुम उसका साथ छोड़ क्यों नहीं देते ?”

उसने उचटती हुई दृष्टि मुझ पर डाली, फिर मुँह तिसूर कर कहा—
“लेकिन... लेकिन मैं क्या करूँ ?... वह पठानकोटी है न, इसलिये ..”

पठानकोटी होना उसके निकट बहुत बड़ी योग्यता की बात थी।

जिस होटल में मैं रहता था, वह एक तरह का होस्टल ही बन गया था। अधिकांश निवासी कालेजों के लड़के ही थे। स्वरूप सिंह लड़कों के कारण खूब खुल खेला। मैंने अलग कमरा ले रक्खा था। लेकिन उसके कमरे में दो लड़के और भी थे। दिन-रात धमा-चौकड़ी मची रहती। न वह खुद पढ़ता, न दूसरों को पढ़ने देता। रात के दो-दो और तीन-तीन बजे तक बातें करना और दिन में ग्यारह बल्कि कभी-कभी एक-एक बजे सो कर उठना उसका नित्य का क्रम बन गया था। दूध, दही और लस्सी से नफरत करता, और चाय, चाट और पकौड़ों का मतवाला रहता। मुँह रजाई में छिपा कर सोने वाला, नित नई शरारतें करने वाला। लेकिन उसके आस-पास के रहने वाले सब उसकी ज्यादातियाँ सह लेते थे। वह इतना सर्वप्रिय था, उसकी सूरत ऐसी अच्छी थी, और बातें...

वह होटल के मालिक को भी बहुत तंग करता था। कभी बिजली ‘फ्यूज’ कर देता, कभी किसी दरवाजे का शीशा तोड़ डालता, कभी गुसलखाने में पड़ी हुई बाल्टी को सीढ़ियों पर से नीचे की तरफ लुढ़का

दूसरी भूल

देता। होटल का मालिक अपनी टूटी फूटी चीजें देखता, तो बिगड़ता। लेकिन स्वरूप सिंह की शिकायत किससे करे? बेचारा मालिक सिटपिया कर रह जाता।

उसका कमरा लाहौर भर के शरीर और आवारा लड़कों का अड्डा था। एक जाता, और दूसरा आता था। गाना-बजाना, चीखना-चिल्लाना। सारांश यह कि एक कोलाहल मचा रहता था।

होटल की तरफ से तीस कैंडिल पावर से ज्यादा का बल्ब लगाने की इजाजत नहीं थी, लेकिन आपने साठ-साठ कैंडिल पावर के एक नहीं तीन बल्ब जला रखे थे। मालिक के साथ यह तय था, कि ग्यारह बजे के बाद बत्ती बिना जरूरत नहीं जलाई जायगी, लेकिन वं लोग रात के दो-दो बजे तक तीनों बल्ब जलाये रखते।

स्वरूप का सम्बन्ध मुझसे बहुत घनिष्ठ हो गया था। दिन को मैं बहुत देर तक सोने के बाद जागता, तो उस समय उसके कमरे में कोई नहीं होता था, क्योंकि और सब लोग पढ़ने के लिये चले जाते थे। लेकिन उसने रसूल नगर के इम्तहान की तैयारी करने के लिए एक नाइट कालेज में नाम लिखवा लिया था। इसलिये उसे दिन भर फुरसत होती थी, और वह सारा दिन मेरे पास ही बिताता था। इधर मैं भी कालेज कभी-कभी ही जाता था।

एक दिन दोपहर के समय हमने बाजार जाने की ठानी। स्वरूप कपड़े पहनने के लिये अपने कमरे में चला गया। और जब मैं तैयार होकर नीचे पहुँचा तो स्वरूप ने आँखों की पुतलियाँ घुमा कर, हाथ मटका कर, मेरे कान के पास मुँह जाकर धीरे से कहा —“आज मैंने एक नई तरकीब सोची है।” उसकी आँखों से शराब टपक रही थी।

मेरे पूछने पर उसने बताया, कि आज उसने टेबिल-लैम्प जला कर बिस्तर में लपेट दिया है, कि किसी को पता न चले, और बिजली भी

मैं जरूर रोऊँगी !

खर्च हो जाय । और मुझे दिखाने के लिये उसने बिस्तर खोला । हमने देखा, कि बिस्तर सुलग रहा है । दरी, चादर, गदेला, तकिया सब कुछ जल गया है । हम परेशान हो गये । बड़ी मुश्किल से आग बुझाई । यह भी कुशल हुई, कि हम उसे इसी तरह छोड़ कर बाजार नहीं चल दिये, नहीं तो वापस आने तक सारे होटल में आग लग जाती ।

इसके बाद उन लोगों की परीक्षा स्थगित हो गई, और उसे घर वापस जाना पड़ा । लोग उदास थे । और जब वह चला गया, तो उसकी याद दिलों में रह गई । बाद में उसके दो-तीन खत आये, लेकिन फिर यह सिलसिला भी बन्द हो गया ।

और फिर इतनी लम्बी मुहत्त के बाद इस तरह संयोगवश मुलाकात ! मेरे दिन भी कुछ अच्छी तरह नहीं बीत रहे थे । इस मुलाकात का नतीजा यह निकला, कि मेरा दिल भी बदल गया ।

मेरी दूकान के दोनों दरवाजों के आगे चिकें पड़ी रहती थीं, और मैं आम तौर पर बड़ी मेज से कुरसी हटाकर दरवाजे के पास बिछा लेता था । यहाँ से मैं सबको देख सकता था, लेकिन बाहर के लोग मुझे नहीं देख सकते थे । मैं बाजार वालों से अधिक सम्बन्ध बढ़ाना भी नहीं चाहता था । हाँ, स्वरूप सिंह दिन में मेरी दूकान के दो-तीन चक्कर जरूर काटता था ।

इतने वर्ष बीत चुके थे, लेकिन स्वरूप सिंह की तबीयत में कोई फर्क नहीं आया था । पहले वह एक चुलबुला लड़का था, अब एक चुस्त चालाक नौजवान । बदन एकहरा सही, लेकिन पहले की तरह हड्डियों का ढाँचा नहीं था । उसकी महीन बालों वाली छोटी-छोटी डाढ़ी उसके चेहरे पर बड़ी भली लगती । नित्य नये रंगों की पगड़ियाँ बाँधा करता । अब वह पगड़ी भी बेढंगे तराँके से नहीं बाँधता था । बदन का रंग भी निखर आया था । उसके गले में सोने की दोहरी जंजीर पड़ी रहती थी । उसकी छाती और गर्दन के बेसनी रंग पर सुनहरा रंग भी

दूसरी भूल

खूब विलता था । वे आँखें, जिनमें पहले शरारत ही झलकती थी, अब मद-भरी हो गई थीं । गरज अब वह एक अच्छा-खासा, तीखा-बौका नौजवान था ।

सूरत में तो खैर इतना परिवर्तन हो ही चुका था, लेकिन मन की चंचलता न गई थी । वही चंचल स्वभाव, शरारतें और ठहाके, दोस्तों के जमघटे, काम-काज से बेपरवाही । और अब भी वह अपने ठेठ पंजाबी स्वर में कहा करता था—“मैं तो ऐसी पट्टा हूँ ।”

अभी न शादी हुई थी, न सिर पर कोई और जिम्मेदारी थी । और न उसे अपनी भलाई की कोई परवाह थी, न भविष्य की चिंता । दूकान पर दो-चार कारीगर लड़के रख छोड़े थे । वही सब काम करते, और वह खुद बस यों ही हवा के घोड़े पर सवार रहता । कभी जी चाहा, तो जिस तरफ को मुँह उठा, चल दिया । ग्राहकों का काम भी दब से न होता था । और कुछ-न-कुछ लोगों की मरम्मत के लिये आई हुई चीजें गुम ही हो जातीं । हर रोज़ तीन-चार ग्राहकों की शिकायतें सुननी पड़ती थीं । लेकिन इन सब बातों के बावजूद उसका काम बड़े मजे में चल रहा था । वह इतना हँस-मुख और मिलनसार था, कि ग्राहक उससे अधिक दिनों तक खफा नहीं रह सकते थे ।

उसकी दूकान में अब भी पहले ही की तरह बेफिक्र और आवारा तबीयत के नौजवानों का आना-जाना लगा रहता था । वही बे-सिर पैर की बातें, चुटकुले, बेबाक कहकहे, वही पहले की सी पकड़-धकड़ और छीना-झपटी । सारांश यह कि उसकी दूकान एक अच्छा खासा आखाड़ा बनी रहती थी । च दी के वरक बेचने वाले सेठ, बरतनों के बांच में बैठे हुए तांदियल लाला, मुंशी दीन मोहम्मद साइकिल वाले और सरदार ईश्वर सिंह भी अपने-अपने काम में व्यस्त उसकी बातों और चुटकलों से आनन्दित होते, ठहाके लगाते, और मौका मिलने पर स्वयं भी

में जरूर रोऊँगी !

आवाजें कंसने से न चूकते थे। उन्हीं के दम से सारे बाजार की रौनक थी।

उन्हीं दिनों की बात है, कि स्थानीय गर्ल्स स्कूल की एक नौजवान अध्यापिका उस रास्ते से आने-जाने लगी। उसके चेहरे का नक्शा बहुत सुन्दर था, और आँखों में तो जैसे जादू था। वह सब के बीच से होकर गुजर जाती। उसके तेवर ऐसे थे, कि उससे आँख तक लड़ाने का हौसला न होता था।

हम लोगों में से कोई भी इतना व्यस्त या विवश न था, कि उस पर नजर न पड़ती, या उसे देखने का अवकाश न मिलता। जब वह पहले दिन उधर से गुजरी, तो हम लोग चौंक पड़े। और भी कई स्त्रियाँ उस बाजार से गुजरती थीं। कभी-कभी उन पर दृष्टि पड़ जाती, नहीं तो साधारणतः सब लोग अपने कामों में लगे रहते। लेकिन उस अध्यापिका का रूप, उसका व्यक्तित्व और चाल-ढाल अनायास दूसरों का अपनी ओर आकृष्ट कर लेते।

बाजार के शान्ति पूर्ण वातावरण में उसने हलचल सी पैदा कर दी। पहले-पहल तो सब लोग दिल ही दिल में उसके पुजारी बने रहे, लेकिन धीरे-धीरे आपस में घुल-मिल कर बातें करने लगे। इशारे होने लगे, आलोचनायें होने लगीं। एक बात पर तो सब सहमत थे, कि ऐसा भरपूर और बेऐब शरीर शहर भर में कहीं न होगा। और फिर उसे भी जवानी का अभिमान था। उसकी नजरें विजय के अभिमान में तनी रहती थीं। वह अजब शान से चलती थी।

कुछ ही दिनों के बाद यह हाल हो गया, कि सुबह शाम दोनों समय उसके आगमन की प्रतीक्षा होने लगी। मुंशी दीन मोहम्मद दुबला-पतला, अघेड़ आयु का आदमी था। उसका विचार था, कि सिक्ख स्त्रियाँ बहुत खूबसूरत होती हैं। और स्वरूप सिंह कहता, कि मुसलमान औरतें परदा करती हैं, इसलिये उनमें खिचाव बढ़ जाता है। इस विवाद

दूसरी भूल

में आमतौर पर दीन मुहम्मद बाजी ले जाता था । और स्वरूप सिंह खिसियाना हो जाता, तो आखिरी बार यही कहता, कि सिक्खों ने अपने राज में अच्छी-अच्छी मुसलमान औरतें चुन कर अपने घरों में डाल ली थीं, इसीलिए वे इतनी सुन्दर होती हैं । दीन मोहम्मद कहता, “तो लाओ, भाई, अब तो अंग्रेजों का राज है, हमारी औरतें हमें वापस कर दो ।” इस पर खूब ठहाके लगते ।

रातनीति को छोड़ कर शहर के इस शान्त काने में सिक्ख, मुसलमान और हिन्दू बिना धर्म-भेद के एक-दूसरे की संगति से पूरा आनन्द उठाते थे । उनकी सहिष्णुता और पारस्परिक प्रेम देख कर इस बात का खयाल भी न होता था, कि वे एक-दूसरे से किसी बात में भिन्न भी हैं । जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं और भावनाओं की दृष्टि से वे भी सभी वास्तव में एक ही थे । दीन मुहम्मद और स्वरूप सिंह का वैसे भी गहरा याराना था । अतः उस अध्यापिका के आगमन पर दीन मोहम्मद कहीं दूकान के भीतर भी घुसा होता, तो स्वरूप सिंह स्वयं भागकर उमें खबर कर देता । दीन मुहम्मद भी लपक कर बाहर आता, और अध्यापिका के गुजर जाने के बाद छाती हाथ रख कर एक लम्बी आह भरता, तो स्वरूप सिंह उसकी पीठ पर हल्की सी धौल जमा कर कहता—“कमबख्त, अपनी इस शरई डाढ़ी का ही कुछ खयाल कर !... अब तो इसमें सफेद बाल भी नजर आने लगें हैं !”

इस पर दीन मोहम्मद जंबूरा हवा में ऊँचा करके कहता—“अबे, मेरी शरई दाढ़ी तो दो ही अंगुल लम्बी है ! अपनी डाढ़ी की तरफ देख । यह बालिशत भर लम्बी है, और अभी और बढ़ेगी ! फिर भी तू मासूम और शरीफ औरतों को देखने से नहीं चूकता !”

स्वरूप सिंह ढीली पगड़ी को थपथपा कर सँवारते हुए, कहता—“अबे तू हमारी एक सिंहनी को रोज देखा करता है, अब मैं भी मुसलमानियों को रोज देखा करूँगा !”

मैं जरूर रोऊँगी !

इस तरह उनके एक-दूसरे पर हमले होते रहते थे । बात-बात पर टहाके लगते ।

मुबह के वक्त सब लोग अध्यापिका के इन्तजार में बैठ जाते । दूर बाजार के नुक्कड़ पर उनकी निगाह जमी रहती । स्वरूप सिंह मरम्मत का काम नौकर छोंकरों को सौंप कर दूकान से बाहर चबूतरे पर कुरसी बिछा कर बैठ जाता । दीन मोहम्मद सिरकण्डों के बने हुये पुराने मोढ़े पर बैठ कर कुरेदा करता । लाला ब्रजनारायण, चाँदी के वरक बनाने वाले, ऊँची धाँती बाँधे और सफेद कमीज पहिने हुक्का गुड़गुड़ाया करते । दीन मोहम्मद की तरह वे भी बाल-बच्चेदार आदमी थे । लेकिन एक खूबसूरत जवान औरत को देखने के लिये किसका मन न चाहेगा ? ईश्वर सिंह कलईगर, भी रंगीन-मिजाज आदमी था । वह बेचारा अनपढ़ और कुछ मोटी अक्ल का आदमी था । उसे इस बात पर तो आपत्ति न था, कि सब लोग उधर से निकलने वाली हर धर्म और हर जाति की स्त्रियों को मिल-जुल कर देखें, लेकिन उसे स्वरूप सिंह और दीन मोहम्मद के एक-दूसरे की औरतों पर हमले नापसन्द थे । बरतन वाले बेडौल हीरालाल जी तो पूरे बनिये थे । अजब मोटे और मसखरे से थे ! जब तक अध्यापिका के दर्शन न कर लें, उन्हें कभी किसी कल चैन न पड़ता था । प्रेमिका के दर्शनों की प्रतीक्षा में लकड़ी के सन्दूकचे पर बेताल-सुर के तबला बजाये जाते । उधर नुक्कड़ से अध्यापिका की सूरत दिखाई दी, उधर सब लोगों में कानाफूसी होने लगी । अध्यापिका तंग कमीज और भड़कीली शलवार पहिने, आँखों में काजल लगाये कन्धों पर डुपट्टा फेंके, और हाथ में रुमाल थामे, एक झन्नाटे के साथ गुजर जाती । और सब लोग भौंचक्के रह जाते । क्षण-प्रति-क्षण नजरों से दूर होती हुई, अध्यापिका के कन्धों पर पड़े हुये किसी हल्के रंग के लहराते हुये डुपट्टे पर निगाहें जमाये रखते । वह डुपट्टा कभी सिर पर नहीं ओढ़ती । बस, यों ही एक या दोनों कन्धों पर बेपरवाही से फेंक दिया करती ।

दूसरी भूल

इसी तरह दिन बीतते जा रहे थे । सुबह के वक्त जब तक वह आ न लेती, उनमें से कोई भी अपना काम न शुरू करता । और जब वह छुट्टी के बाद शाम को उधर से गुज़रती, तो उसके दर्शन पाकर उनकी सारे दिन की थकावट दूर हो जाती ।

एक दिन की बात है, कि अध्यापिका रोज की तरह नुक्कड़ पर दिखाई दी, और नित्य की भाँति छाती ताने मस्त मोरनी की भाँति चलती हुई आई, और फिर एकाएक स्वरूप सिंह की दूकान के सामने रुक गई ।

सब के दिल धक-से रह गये ।

उस समय स्वरूप सिंह नंगे-सिर, जूड़ा निकाले, कुरसी पर बैठा गुद्दी के बालों में धीरे-धीरे हाथी दाँत का बना कंधा फेर रहा था । अध्यापिका ने जब उसे सम्बोधित किया, तो वह बिदक कर कुरसी से उठ खड़ा हुआ ।

अध्यापिका बोली—“मेरा फाउन्टेनपेन बिगड़ गया है । क्या आप इसे ठीक कर देंगे ?”

यह सुन कर सब की जान में जान आई, कि कोई खतरे की बात नहीं है । लेकिन चूँकि स्वरूप सिंह कालीन का शेर था, बस दूर ही से आनन्द लिया करता था, औरत से कभी वास्ता न पड़ा था, और फिर अध्यापिका जैसी रोबदार और सुन्दर सजीली स्त्री से, इसलिये वह कुछ घबरा-सा गया । उसकी जवान लड़खड़ाने लगी । दो-चार बातों के बाद अध्यापिका तो बिदा हुई, और सब तरफ से ‘बधाई, बधाई’ की आवाजें आने लगीं ।

“वाह, मेरे शेर ! मार लिया मैदान !”

“बस, भई अब तिलिस्म की कुंजी लग गई तुम्हारे हाथ !”

“परमेश्वर की कसम, क्या आवाज़ पाई है कमबख्त ने !”

“भई तुम पर रीझ गई है अध्यापिका !”

मैं जरूर रोऊँगी !

और ईंधर विधि का विधान ऐसा हुआ, कि डेराहस्माईल खाँ से स्वरूप सिंह का कोई पुराना मुसलमान दोस्त उससे मिलने के लिये आया। स्वरूप सिंह के सभी दोस्त आबारा और स्वच्छन्द तबीयत के तो थे ही, ये हजरत भी किसी से कम न थे। उन्होंने कहीं दूकान में अध्यापिका का फाउन्टेनपेन देख लिया। बस अड़ गये कि यह तो हम लेंगे। स्वरूप सिंह को पहले भी ऐसे अवसरों से पाला पड़ चुका था। आखिर वे दोस्त पेन लेकर बिदा हो गये। और वायदे के दिन अध्यापिका अपना कलम लेने आई; और स्वरूप सिंह ने बहाना बनाया कि कलम खो गया है, और वह दाम देने को तैयार है, तो अध्यापिका भड़क उठी—“कैसे खो दिया?...अजब दूकानदार हो ! मेरा ब्लैक बर्ड पेन खो दिया ! अब लड़ाई के जमाने में कलम मिलते ही कहाँ हैं?...” इस तरह अध्यापिका ने बहुत बुरा भला कहा, और जैसा कि सुन्दर स्त्रियों के बारे में मशहूर है, वह गुस्से में और भी अधिक सुन्दर दिखाई पड़ने लगी।

फिर वह चली गई, और हमेशा के लिए चली गई। अब वह दूसरे रास्ते से आने-जाने लगी।

यह एक बहुत बड़ी दुर्घटना थी। सारी महफिल सूनी पड़ गई। सबने स्वरूप सिंह को आड़े हाथों लिया—“वाह, सरदार साहब ! आखिर सरदार ही ठहरे न ! हाथ में आई चिड़िया उड़ा दी !”

स्वरूप सिंह स्वयं परेशान था। ये ताने सुन कर और झुँझलाया। इस झुँझलाहट में वह सब की बातों का जवाब भी न दे सकता था। दीन मोहम्मद ने उसकी बुरी गत बनाई। दो-चार दिन तो आवाजें कस-कस कर उसकी नाक में दम कर दिया।

आठ-दस दिन के बाद स्वरूप सिंह का पीछा छोड़ दिया गया। अब सब मिल-जुल कर अपने मिले-जुले नुकसान पर दुख प्रकट करने लगे। उनका खयाल था, कि दूसरे रास्ते से अध्यापिका को अपेक्षाकृत

दूसरी भूल

बड़ा चक्कर काटना पड़ता होगा, इसलिए वह आप-ही-आप इस तरफ से आना-जाना शुरू कर देगी। लेकिन वह भी बड़ी गुस्सावर मालूम होती थी, न आई।

दीन मोहम्मद दिन में दो-चार बार बाजार की नुक्कड़ की तरफ देख कर ठण्डी साँस भरता, और चुप हो जाता। बरतनों वाले लाला अपनी ढीली धोती की गिरह को कसते हुए कहते—“भला उस भाग्यवान से जाकर कोई पूछे, कि ‘खफा तो हुई तू सरदार साहब से, भला हमें इस तरह तरसाने से क्या फायदा?’”

दीन मोहम्मद कहता—“अजी, लाला जी, अपने सरदारजी के सिर पर एक लोटा ठण्डा पानी डालते रहते, तो यह हादसा पेश न आता?”

इस पर वरक वाले लाला गगनभेदी ठहाका लगाते। और स्वरूप सिंह पर एक लोटा क्या, घड़ों पानी पड़ जाता।

दिन बीतते गये। हफ्ते बीते, पूरा वर्ष बीत गया।

मेरी प्रैक्टिस भी कुछ चल निकली थी। अब उनकी बातें सुनने की फुरसत कम ही मिलती थी। हाँ, कभी बरतनों वाले की आवाज़ सुनाई दे जाती—“बड़े गजब की जहरीली निकली उस्तादनी।”

एक दिन दो-तीन रोगियों से निवृत्त कर, मैं यों ही दरवाजे पर गया, तो चिक के बीच में से क्या देखता हूँ, कि वही अध्यापिका स्वरूप सिंह की दूकान के पास खड़ी उससे बातें कर रही है।

मेरा दिल उछलने लगा। उधर अध्यापिका बिदा हुई, इधर सब लोग स्वरूप सिंह की दूकान पर इकट्ठे हो गये। सवालों की बौछार शुरू कर दी। मुझसे भी न रह गया। मालूम हुआ, कि न जाने अध्यापिका के मन में क्या आई, कि वह स्वरूप सिंह को एक और पेन मरम्मत के लिए दे गई है। यह हकीकत थी, कि इस शहर में इस किस्म की और कोई दूकान भी नहीं था।

यह बात सुन कर सब लोग बहुत खुश हुए! अब फिर पुराने दिनों

मैं जरूर रोऊँगी !

को याद ताजी हो गई । वह यौवन की माती अध्यापिका, उसकी नशीली आँखें, भरा सुडौल शरीर, वही बेपरवाही से कंधों से लटकता हुआ रंगीन डुपट्टा ! अब वह नियमित रूप से उसी रास्ते से आने जाने लगी ।

इस पर सबने बगलें बजाईं, और स्वरूप सिंह को बारी-बारी ताकीद की, कि “देखो, भाई, अब खुद अपने हाथ से पेन बनाना और ऐसा मरम्मत करना, कि कमाल ही हो जाय !”

स्वरूप सिंह ने अध्यापिका का पेन मेज पर रख कर, सब कारीगर लड़कों को बुला कर, कहा—“देखो, यह पेन मास्टरनी जी का है !” यह कह कर, उसने अपने खास अन्दाज़ से अपनी शोख और चमकीली आँखों से सब की तरफ देखा, फिर कहा—“और इसकी मरम्मत करेंगे सरदार स्वरूप सिंह ! खबरदार, अगर भूल कर भी किसी ने इसे हाथ लगाया !”

पाँच-सात दिन हँसते-खेलते बीत गये । इस बीच में सरदार स्वरूप सिंह ने पेन बनाने में अपनी सारी योग्यता खत्म कर डाली, और अन्त में यह खुशखबरी सुनाई, कि अब पेन इतना अच्छा बन गया है कि अध्यापिका मुग्ध हो जायगी । इस पर सबने हर्ष प्रकट किया । आखिर वायदे का दिन भी आ पहुँचा । स्वरूप सिंह दूकान पर आया । अभी कारीगर लड़के नहीं आये थे । उसने मेज की दराज़ खोली, और पेन को वहाँ न पाकर, बहुत हैरान हुआ ।

दीन मोहम्मद ने पुकार कर पूछा—“कहो, स्वरूप, क्या मामला है ?”

स्वरूप सिंह ने घबराये हुए स्वर में जवाब दिया—“पेन नहीं मिलता !”

“नहीं मिलता ?” दीन मोहम्मद ने भी बड़े ही घबराये हुए स्वर में पूछा ।

फिर दोनों मिल कर कलम ढूँढ़ने लगे । सारी दूकान छान मारी, पर कलम न मिला । कारीगर लौंडे आये । खयाल था, कि शायद उन्हें

दूसरी भूल

मालूम हो, लेकिन उन्हें भी कुछ पता न था। स्वरूप सिंह को बड़ा क्रोध आया। उसने सबको दो-दो थप्पड़ जड़ दिये। उनमें केतू सबसे ज्यादा नटखट था। स्वरूप सिंह ने केतू को चोटी से पकड़ लिया। केतू ने रो कर कहा—“जी, मैंने कलम उठाया था। इस स्टूल पर रक्खा था ! मेज की दराज़ में रखना भूल गया।”

स्टूल पर कोई कलम नहीं था। इधर देखने पर कोने में उसकी टोपी मिल गई। फिर शक हुआ, कि तख्ते की दरार में से नाली में न जा पड़ा हो। पानी की नाली भी कुरेद मारी, पर कुछ हाथ न लगा। वे लोग इसी परेशानी में थे, कि स्वरूप सिंह ने कहा—“यार, अब क्या करें ?”

दीन मोहम्मद ने सलाह दी—“इस वक्त दूकान से भाग जाओ। एक बार तो टालो, फिर देखा जायगा। शायद कलम ही मिल जाय।”

अन्त में यही तय हुआ, कि स्वरूप सिंह दूकान से हट जाय। लेकिन इधर स्वरूप सिंह दूकान से बाहर निकला, उधर अध्यापिका आती दिखाई दी। वह बौखला कर उलटे-पाँव दूकान में घुस गया। बाकी लोग भी चुपचाप अपनी-अपनी दूकान को चले गये। मैं भी चिक के नीचे खड़ा हो गया।

जैसे-जैसे अध्यापिका निकट आ रही थी, वैसे-वैसे लोगों की चिन्ता बढ़ती जा रही थी।

जाहिर में सब लोग अपने-अपने कामों में लगे थे, लेकिन ध्यान सबका उसी तरफ था। अध्यापिका नित्य की भाँति मस्तानी चाल चलती हुई आई, और दूकान के अन्दर चली गई। इस पर औरों की तो क्या कहूँ लेकिन मेरा दिल तो जैसे धड़कते-धड़कते एकदम रुक गया।

दूकान के अन्दर अँधेरा था। वे दोनों दिखाई तो देते थे, लेकिन उनके चेहरों के उतार-चढ़ाव का कुछ पता न चलता था। बातें भी बहुत धीरे-धीरे की गईं। सब लोग बेचैन हो-होकर दबी-दबी नज़रों से दूकान की तरफ देख रहे थे। प्रति क्षण यही डर था, कि इधर अध्यापिका को

मैं जरूर रोऊँगी !

असिल बात मालूम हुई, और उधर वह बिगड़ कर बिखरी। लेकिन वे जरूरत से ज्यादा देर तक अन्दर खड़े बातें करते रहे। और जब अध्यापिका दूकान से बाहर निकली, तो उसके रस-भरे होंठों पर मुस्कराहट खेल रही थी, और उसने कंधों पर गिरे रहने वाले डुपट्टे को सँवार कर सिर पर ओढ़ लिया था।

उसके चले जाने के बाद हम सबने स्वरूप सिंह को घेरे में ले लिया। सवालियों की बौछार कर दी। लेकिन सिवाय इसके कि उसके गाल पर गर्म खून की सुखी-सी दिखाई दी, हम और कुछ न मालूम कर सके।

अब हमारे लिये यह एक नई पहेली थी। उस दिन के बाद स्वरूप सिंह का व्यवहार भी बदल गया। अब वह बन सँवर कर रहने लगा। पहले की तरह नंगे-सिर, जूड़ा निकाले, बाजार में बैठना उसने छोड़ दिया। हर वक्त की हँसी और ठठोल भी पुरानी कहानी बन कर रह गई।

यद्यपि अध्यापिका अब भी उधर से गुज़रती थी, लेकिन अब वह भी कुछ पारसा-सी बन गई थी। सिर डुपट्टे से ढाँके और उद्दण्ड सीने पर डुपट्टे की दो-तीन तहें जमाये, नज़रें झुकाये, बड़े सुघड़पन से बाजार में से गुजर जाती।

आठ-दस दिन बाद एक दिन सुबह जब मैंने 'लोकल गज़ट' का ताजा अंक देखा, तो मोटे टाइप में इस शीर्षक पर नज़र पड़ी—

'गर्ल्स स्कूल की चट की ली और अल बे ली अध्यापिका गायब !'

और उसी दिन से स्वरूप सिंह की दूकान भी हमेशा के लिये बन्द हो गई।

शहनाज़

आगे बरसाती नदी थी, एक मील चौड़ी ।

कोचवान ने बग्घी रोक ली । घोड़े थरथराये और सिर घुमा कर पीछे की ओर देखने लगे । कोचवान ने कुछ कहने से पहले झुक कर बग्घी के अन्दर झाँका । पर दोनों औरतें सो रही थीं । एक की आयु होगी लगभग पैंतालिस वर्ष । चेहरा जवानी में यदि सुन्दर नहीं, तो असुन्दर भी न रहा होगा । अब वह दादी अम्माँ-सी तो नहीं प्रतीत होती, किन्तु एक हँस-मुख माँ-सी अवश्य दीख पड़ती थी । उसके साथ उसकी बूढ़ी दासी थी । कहने को तो वह दासी थी, किन्तु वह स्त्री उसकी गोद में पली थी ।

मैं जरूर रोऊँगी !

मूसलाधार वर्षा में कोचवान को अपने स्थान से उठना पड़ा ।
दरवाज़े के निकट आ कर, वह चिल्लाया — “बेगम साहब !”

दोनों नींद में बेहोश थीं, थकान की नींद में ।

“बेगम !”

बुढ़िया ने जम्हाई ली ।

“आगे नदी है, और पानी चढ़ा हुआ है ।”

दूसरी औरत की आँख भी खुल गई ।

कोचवान की भौंहों से पानी की बूँदें टपकने लगीं । वह बोला—

“बेगम ! ऐसे में पार जाना मुश्किल है ।”

बुढ़िया ने गर्दन बढ़ा कर, नदी का पानी देखना चाहा । लेकिन
अँधेरे में कुछ दिखाई न दिया ।

“पानी उतर रहा है । दिन होने तक काफ़ी उतर जायगा ।”

औरत ने बिजली की चमक में घड़ी देखी । तीन बजे थे । आखिर
वे किस जगह शरण लें ?

“गाड़ी घुमाओ ।”

गाड़ी घुमा ली गई, और वह ऊबड़-खाबड़ सड़क पर हिचकोले
खाती, धीरे-धीरे बढ़ने लगी ।

वह जगह सुनसान थी—शहर की सिविल लाइन्स से भी । बाहर
एक अकेली कोठी दिखाई पड़ती थी । लेकिन बिना जान-पहचान कैसे
किसी का द्वार खटखटया जाय ? दस-पन्द्रह मिनट बीत गये । दो-तीन
जानवर सड़क काट कर भागे । घोड़े बिदके । चाबुक खाने पर भी आगे
बढ़ने के बजाय उल्टे पाँव चलने लगे । एक बार तो अगली टाँगें उठा
कर, पिछली टाँगों पर खड़े होने की कोशिश भी की । बग़ी एक घनी
बाढ़ में घुस गई ।

“क्या है ?” भीतर से आवाज़ आई ।

“हुजूर, घोड़े बिदक गये हैं, आगे नहीं बढ़ते ।”

शहनाज़

“हाय !” वह और रँआसी हो कर, चीखी ।

घोड़ों ने फिर हिनहिना कर जोर मारा । बग़्घी बाड़ के भीतर घुसती ही चली गई । स्त्रियाँ घबरा कर नीचे उतर आईं, गर्म-गर्म कम्बलों में से एकदम बारिश में ।

“छूतरी ! छूतरी !”

सेविका ने छूतरी उसके सिर पर तान दी ।

“हो-हो ! कौन है ?”

एक लम्बे-तड़गे आदमी ने फाटक में से लालटेन आगे करते हुये गर्दन आगे बढ़ाई । फिर वह लट्ट लिये हुए आगे बढ़ा । बोला—“कौन हो, भाई ? क्या मामला है ?”

“कुछ नहीं, भैया । घोड़े बिदक गये हैं । जनानी सवारी साथ है ।”

“अरे, बेया, पार जाना था । नदी में बाढ़ है । घोड़े बिगड़े हुये हैं । बारिश हो रही है ।”—सेविका ने कहा ।

नवागन्तुक, जो सूरत से दरबान जान पड़ता था, पहले मुँह खोले उनकी ओर देखता रहा, फिर उसे वास्तविक स्थित का ज्ञान हुआ ।

“भाई, अगर कहो, तो हम अन्दर चले आयें । बारिश थमे, तो चल देंगे ।”

दरबान अपना कदू-सा सिर अस्वीकृति में हिलाने ही को था, कि दूसरी औरत ने विनम्र स्वर में कहा—“भाई, हम शरीफ़ लोग हैं, कोई चोर-चमार नहीं ।...यदि तुम इजाज़त दो, तो...”

औरत समझदार थी । लगता था, कि वह इस प्रकार के लोगों के मनोविज्ञान को खूब समझती है ।

“‘सरीफ़’ तो आप जरूर हैं ।...फिर ना कैसे कहें ?” और उसने फाटक खोल दिया ।

औरतें तो कोठी की ओर बढ़ीं, और वे दोनों घोड़ों को आगे-पीछे से हाँकने लगे । बड़ी कठिनाई से बग़्घी सायबान के नीचे पहुँची ।

मैं जरूर रोऊँगी !

बरामदे में बेंत की कुर्सियाँ पड़ी थीं। औरतें ठंडे गद्दों पर सिमट-सिमटा कर बैठ गईं। दरबान ने बिजली का बटन दबाया। रोशनी हो गई।

इमारत लाल रंग की थी। दीवारों पर बेलें चढ़ी थीं, और कई जमी हुई थी। जगह बहुत खुली हुई और लम्बी-चौड़ी थी। एक ऊँची, घनी बाड़ कोठी को घेरे हुई थी।

दरबान अभी तक उत्सुक दृष्टि से उन्हें देख रहा था। वह मालकिन-सी लगने वाली महिला और उसके कपड़ों से बहुत प्रभावित हुआ। औरत की शक्ल से गंभीरता और भद्रता टपकती थी। रंग लाली लिए हुए गोरा, शरीर कुछ भारी-सा। उसके बैठने के ढंग और बातचीत के अन्दाज़ में एक खास शान पाई जाती थी। यहाँ तक कि दरबान को पूर्ण विश्वास हो गया, कि वे 'सरीफ' हैं। वह वहाँ से खिसक गया।

थोड़ी देर बाद वह फिर आया।

“आप लोग अन्दर चलिये। मालिक ने बुलाया है।”

“अन्दर ?” औरत सोच में पड़ गई—“क्या अन्दर औरतें हैं ?”

“जी नहीं ! औरत यहाँ एक भी नहीं।”

“तो फिर हम इसी जगह ठीक हैं। कोई हर्ज नहीं। हम आराम से हैं।”

“पर मालिक बोलते हैं, कि आप लोगों को अन्दर बैठाया जाय।”

“कौन हैं तुम्हारे मालिक ?”

दरबान चुप रहा।

“बूढ़े हैं ? अकेले रहते हैं ? कोई बच्चा, कोई औरत, कोई भी नहीं ?”

“कोई भी नहीं।”

औरतों ने एक-दूसरे की ओर भेद-भरी दृष्टि से देखा।

“बहुत 'सरीफ' हैं हमारे मालिक, आपकी ही तरह 'सरीफ'।”

शहनाज

औरत को दरबान की इस बात में धोखे की बू नहीं आई। दोनों औरतें अज्ञात भय का अनुभव करती हुई, अन्दर जाने के लिये तैयार हो गईं।

बरामदे में ऊपर की ओर चौड़ी सीढ़ियाँ थीं। दरबान उन पर चढ़ने लगा। आगे एक बहुत ऊँचा दरवाज़ा था। दरबान ने दरवाज़े के तख्तों को बारी-बारी से खोला, और रंगीन पर्दों को हटा दिया।

पहला कमरा बहुत बड़ा था। बड़े-बड़े दरवाज़े, साधारण दरवाज़े के बराबर खिड़कियाँ, ऊँची छत, फ़र्श पर दरी, गलीचे, कोच, रंगीन भारी पर्दे, दीवारों पर बहुमूल्य चित्र, कीमती फ़र्नीचर।

दरबान के पीछे-पीछे वे आगे बढ़ती गईं। बड़े कमरे के बाद एक तंग किन्तु लम्बे कमरे में से गुज़रना पड़ा। रोशनी भी मद्धिम थी। इसके बाद जो दरवाज़ा खुला, तो आँखें चौंधिया गईं।

तीसरा कमरा छोटा, किन्तु सजा हुआ था। सजावट में भी सादगी और सुरुचि झलकती थी। एक ओर एक भारी मेज़ थी। उस पर क़ागज़, किताबें, इन्साइक्लोपेडिया, डिक्शनरियाँ आदि बिखरी पड़ी थीं। आलमारियों में अनगिनत पुस्तकें भरी थीं। मकान-मालिक विद्या और साहित्य का प्रेमी जान पड़ता था। एक बड़ा तख्त लगा था, जिस पर सफ़ेद चादर बिछी थी, और कोनों पर दो गावन्तकिये रखे थे।

औरतें कुर्सियों पर बैठ गईं। दरबान चला गया।...

बग़ल के दरवाज़े का पर्दा उठा। पचास-पचपन वर्ष का बूढ़ा तौलिए से हाथ पोंछता हुआ भीतर आया, और एक कुर्सी पर बैठ गया। साधारण सलाम-बन्दगी हुई।

“आपको हमारी वजह से सचसुच बड़ी तकलीफ़ हुई। हम नहीं चाहते थे, कि आपको जगाया जाय। नौकर ने हमारी रज़ामंदी के बिना जगा दिया आपको।” औरत ने खेद प्रकट किया।

“बिल्कुल नहीं। मैं आज-कल चार-पाँच घंटे से ज्यादा नहीं सो

मैं जरूर रोऊँगी !

सकता । यों समझिये, कि मैं दस बजे के करीब सो जाता हूँ, और तीन बजे से पहले या उसके लगभग जाग उठता हूँ । अगर आप आराम करना चाहें, तो इत्तज़ाम हो सकता है ।”

“शुक्रिया ! हम सोयेंगे नहीं ।” औरत ने अपने सामान का खयाल रखते हुये कहा, क्योंकि अभी तक उसे खटका था—“पालमपुर से आगे मेरे एक रिश्तेदार हैं । उनसे मिलने के लिए हम जा रहे थे । अभी-अभी गाड़ी से उतरे थे । खयाल था, कि सुबह तक पहुँच जायेंगे, लेकिन रास्ते में आपकी नदी आ गई ।”

बूढ़ा हँसा । बोला— “जी, इन बरसाती नदियों का कोई भरोसा नहीं । ..यहाँ से लगभग बाईस मील पच्छिम की तरफ मोतीचूर जंगल है । एक बार हम वहाँ शिकार खेलने के लिए गये । मौसम बरसात का था । वापसी पर एक बरसाती नदी में से होकर गुज़रे । शाम का वक्त था । नदी में पानी मामूली था । तब हुआ, कि रात नदी के किसी टीले पर बिताई जाय । एक चट्टान पर चढ़ गये । आसमान साफ़ था । छै-सात घंटे के बाद आँख खुली, तो देखते क्या हैं, कि हर तरफ पानी ही पानी । और पानी पल पल बढ़ता जा रहा था । हमें डर लगा, कि कहीं पानी चट्टान के ऊपर से हो कर न गुज़र जाय, लेकिन हम बच गये । बरसाती नदियाँ जल्द ही उतर जाती हैं । अगर सुबह तक पानी न उतरा, तो आप पुल पर से चली जाइयेगा । पाँच-छै मील का चक्कर तो जरूर पड़ेगा ।”

“आपको शिकार का शौक है ?” औरत ने बात का रुख बदला ।

“शौक ! शौक तो बहुत-से थे ।”

सेविका आँगठी के पास आराम कुर्सी पर जा लेटी । कमरा खूब गर्म हो रहा था । औरत ने बूढ़े की ओर ध्यान से देखा । साधारण क़द, चेहरे पर गहरी रेखायें, छोटी-सी डाढ़ी, पीलापन लिये हुये सफेद बाल,

बातचीत में गंभीरता, रहन-सहन में सभ्य । शरीर के ढाँचे से प्रतीत होता था, किसी समय अच्छा-खासा, मजबूत जवान रहा होगा ।

“मेरा खयाल है, कि आपके कपड़े भीग गये होंगे ।”

“बिलकुल नहीं । हम गाड़ी के अन्दर थे । काफ़ी पानी बरस गया, पर हम बचे रहे । गाड़ी से उतरते समय दो-चार छूँटे, मुमकिन है, पड़ गये हों । सो उनका कोई हर्ज नहीं ।”

बूढ़े ने धीरे से पूछा — “ये आपकी माँ हैं ?”

“नहीं, नौकरानी हैं । लेकिन मैं इनको अम्माँ ही कहती हूँ । जब मैं छोटी थी, तब ये जवान थीं । मैं इनकी गोद में ही बड़ी हूँ ।”

कुछ देर मौन रहा ।

“अजब संयोग की बात है । चार बरस से मेरे यहाँ मेहमान के रूप में कोई न आया था ।”

“आपका कोई रिश्तेदार नहीं है ?”

“नजदीकी कोई भी नहीं है ।...और दूर की रिश्तेदारियाँ आप जानती हैं...”

“आप इस जगह बिलकुल अकेले रहते हैं ?”

“बिलकुल ।”

“आपको साहित्य से बहुत दिलचस्पी मालूम होती है ।”

“मैं पहले ही कह चुका हूँ, कि मेरे शौक अनगिनत थे । अब तो मैं कमजोर हो चुका हूँ, इसीलिये वही शौक बाकी रह गये हैं, जिनमें कोई तकलीफ़ न उठानी पड़े । संगीत से मुझे लगाव है । मैं जवानी में बाँसुरी और सितार बजाया करता था । शिकार का मुझे काफ़ी से ज्यादा शौक था । कविता से भी दिलचस्पी थी, हालाँकि मैंने कभी कविता नहीं की । साहित्य से भी प्रेम है । दर्शन प्रिय विषय है । चित्रकला से मुझे असाधारण प्रेम है ! मैं अपने वाटर कलर और ऑयल के काम आपको दिखाऊँगा । मुझे उम्मीद है, कि आप पसन्द करेंगी ।”

मैं जरूर रोऊँगी !

“शुक्रिया ! क्या सामने की तस्वीर ‘वेन गफ़’ की है ?”

“जी हाँ ! तो आप भी इन चीज़ों से दिलचस्पी रखती हैं ?”

औरत मुस्कराई । मुस्कराने में उसकी आँखों के कोनों की हलकी झुर्रियाँ गहरी हो गईं ।

“बस दिलचस्पी ही रखती हूँ ।...दिलचस्पी रखने से क्या होता है ? यां तो मुझे साहित्य से भी हमेशा से लगाव रहा है । लिखा-लिखा कभी नहीं । हाँ, पढ़ने का शौक़ रहा है ।”

“सच पूछिये, तो मैं मन में सोच रहा था, कि दो बूढ़ी औरतें—खैर, आप इतनी बूढ़ी न सही—और एक बूढ़ा कैसे वक्त काट सकते हैं ।...लेकिन यह जान कर कि आप कला और साहित्य से दिलचस्पी रखती हैं, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ।”

“आपकी मेहरबानी है । कला और साहित्य तो बड़ी चीज़ें हैं । मैं किस गिनती में हूँ भला ?”

बूढ़े के होंठों पर प्रसन्नता की मुस्कराहट दौड़ गई ।

“‘वेन गफ़’ मेरा प्रिय चित्रकार है । मुझे इसकी विक्षिप्तता बहुत पसन्द है । जितना जोर इसके कामों में है, शायद ही किसी और के यहाँ हो । यह सामने की तस्वीर उसकी प्रसिद्ध तस्वीरों में से है । सुविधा के लिये हम इसे तीन भागों में बाँट लेते हैं । आकाश, पहाड़ और आगे वाले खेत । तस्वीर में एक चीज़ आपको प्रमुख दिखाई देगी—एक चंचलता-सी, बेचैनी-सी, विक्षिप्तता-सी । आसमान को देखिये । बादलों के सिलसिले कैसे उचके पड़ते हैं, कितने जानदार मालूम होते हैं ! जैसे हरकत कर रहे हों । यही कैफ़ियत पहाड़ों की है । छोटे-से-छोटा पत्थर घूमता-भागता नज़र आता है । चट्टाने मानों एक-दूसरे का पीछा कर रही हों । कितनी तीव्र गति का अनुभव होता है । उधर मैदान में उगी हुई फ़सल पर नज़र डालिये । जैसे पौधे हवा के एक ही तेज झोंके के साथ आसमान की तरफ़ उड़ जायँगे । और वे पेड़ जैसे आग की चिता हों, और पत्तें लपटों-सी लगते हैं उसकी तस्वीरों की इस परेशानी,

इस बेचैनी, इस गतिशीलता, इस जोर पर मैं फ़िदा हूँ। ये सब उसकी मानसिक दशा के चित्र हैं। ऐसा लगता है, जैसे जालिम ने कूची नहीं, तलवार चलाई है। जैसे रंगों को एक चक्कर दे दिया गया है, और जैसे अनन्त काल तक वे घूमते ही चले जायेंगे।

औरत ने बूढ़े मेज़बान की गति-विधि तथा उसके स्वर में जवानों के से उत्साह का अनुभव किया। उसे महसूस हुआ, कि जैसे कमरे के शिथिल वातावरण में जीवन के लक्षण पैदा हो गये हों।

“मैं समझती हूँ, कि ये आपके मनोभावों का भी चित्रण करते हैं, नहीं तो आप इनसे इतना अपनापन जाहिर न करते।...आप खुद भी बड़े जोशीले होंगे।” — कह कर, वह हँसी। उसकी हँसी आकर्षक थी।

बूढ़े ने धनी भौहों के नीचे से अपनी पलकों को उठाया। उसका चौड़ा जबड़ा हिला। उसकी ठोड़ी आगे की बढी, मुँह खुला। फिर वह मुँह से एक हल्की-सी चटख की आवाज निकाल कर रह गया। वह सोचने लगा, कि उसे एक प्रतिभाशालिनी और मामले की तह तक पहुँचने वाली औरत से वास्ता पड़ा है।

“अच्छा हो, अब अगर हम काफी मँगा लें।...आप काफी पसन्द करेंगी, या चाय?”

“जो आप पसन्द करें।”

“तो काफ़ी ही रहे।...बढ़ी बी तो ऊँघने लगेंगी।”

नौकर को बुला कर, काफ़ी के लिये कहा गया। मेहमान औरत के दिल से परायेपन का अनुभव दूर होने लगा।

वार्ता को जारी रखते हुए, मेज़बान ने कहना शुरू किया—“आप ठीक समझीं मेरा शारीरिक जोश कम था, मानसिक अधिक। मेरा दिमाग एक ज्वालामुखी पर्वत से कम न था। एक ऐसा दर्द, एक ऐसी जिज्ञासा एक ऐसी कुरेद लगी रहती थी, जिसका मैं वर्णन नहीं कर

मैं जरूर रोज़ंगी !

सकता । मैं एकान्तप्रिय था और मुझे एकाध दोस्त की ही संगत पसन्द थी । मेरा एक ही दोस्त था महेन्द्र । महेन्द्र उन दिनों कैम्ब्रिज स्कूल में पढ़ता था । हमारे स्कूल की इमारत बिलकुल सफेद थी । वह शहर से दूर एक चौड़ी बरसाती नदी के किनारे पर था । दूर पहाड़ पर बसे हुए शहर की पीली-पीली इमारतें दिखाई पड़ती थीं । काली रातों में जब उस पहाड़ी शहर पर बिजली की बत्तियाँ जगमगातीं, तो ऐसा लगता, मानों घाटी के सब जुगनू रुठ कर पहाड़ पर जा इकट्ठे हुए हों । कभी-कभी किसी पहाड़ की बर्फ से ढँकी चोटी ऐसी दिखाई पड़ती, मानो कोई राज-कुमारी सफेद ताज सिर पर रखे, एड़ियाँ उठा कर हमें देख रही हो । यों तो पहाड़ बिलकुल निकट दिखाई पड़ते थे लेकिन जैसे-जैसे हम उनकी ओर बढ़ते, वे पीछे हटते जाते । हमें उन दिनों प्राचीन यूनान और रोम के वीरों की कहानियाँ पढ़ाई जाती थीं, इसलिये हम पर ऐसे दृश्य देखने से एक रोमानी प्रभाव छा जाता था । मैं अपने दोस्त के साथ नदी पार करने जाया करता था । मैं प्रायः स्वेटर, नेकर और फुलबूट पहना करता था । किसी-किसी ठंडी शाम को रास्ते में जेनी, हमारी सहपाठिनी, जिसे मैं प्यार से 'साइकी' कहा करता था, सफेदे के पेड़ों के नीचे घूमती और लीचियाँ खाती दिखाई दे जाती थी । उसे मेरा लाल रंग का स्वेटर बहुत पसन्द था । जेनी को देखते ही मैं उसके बदन जान-बूझ कर खोल देता, और उसके पास जा कर, कहता—'अच्छी साइकी, हमारे बदन तो लगा दो ज़रा ।' जेनी अपनी चमकीली आँखें मटका कर हँसती, अपने नन्हें हाथों से बदन लगा देती, और कहती—'तुम, मुझे विश्वास है, बड़े होकर सुन्दर जैसन बनोगे ' और मैं अकड़ता हुआ आगे बढ़ जाता । जब कभी कोई बड़ा-सा चिमगादड़ अपने पर फैलाये हमारे सिरों पर से गुज़र जाता, तो हम सोचते, कि हो सकता है, कि यह 'परसीआस' ही हो, और शायद 'मेडोना' का सिर काट कर उड़ा जा रहा है । जंगल की झाड़ियों में घूमते समय खयाल आता, कि हो सकता है,

कि 'अपालो' अपना रथ छोड़ कर यहीं किसी जगह आ बैठा हो। सौन्दर्य और संगीत का देवता, 'दफ़नी' का निराश प्रेमी। उसे देख पायें, तो शिकायत करें, कि तुम्हारी प्रेम-कहानी वाला पाठ बहुत कठिन है। और वह ठंडी साँस भर कर चुप हो जाय। भला उसके लिये ही वह पाठ कहाँ सरल था ? हम चश्मे के पास बैठ जाते। हवा और ठंडी हो जाती। पेड़ सायँ-सायँ करने लगते। और दूर चाय के बगीचा से गीदड़ों की 'हुआ-हुआ' की आवाज़ आने लगती। पहाड़ों की ओट से चाँद निकल आता, और उसका अक्स पानी में दिखाई पड़ने लगता।...उसे भी 'नार्कसिस' की भाँति पानी में अपना चेहरा देखने का बहुत चाव था। पर यह चाव था बुरा।... 'नार्कसिस' बहुत सुन्दर लड़का था। सुख गाल, गहरी चमकीली आँखें, चमकीले सोने के-से बाल। उसने एक बार अपना अक्स पानी में देख लिया, और उस सूरत पर मरने लगा। वह बिना नागा घन्टों पानी में अपना अक्स देखा करता। आखिर यह पागलपन रंग लाया। वह वहीं मर गया, तड़प-तड़प कर। और... 'आसकर वाइल्ड' के शब्द याद कीजिये— 'जब नार्कसिस मर गया, तो घाटी के सुन्दर फूलों के हृदयों पर दुख और शोक की काली घटायें छा गईं। वे उस चश्मे से पानी माँगने लगे, जिसमें कि वे उसके शोक में आँसू बहा सकें। "आह!" चश्मे ने जवाब दिया, "अगर मेरे पानी की बूँदें आँसू ही होतीं, तो भी नार्कसिस को रोने के लिये अपर्याप्त होतीं। मुझे स्वयं उससे प्रेम था। तुम भला उससे प्रेम किये बिना कैसे रह सकते थे?" फूलों ने कहा— "कितना सुन्दर था वह!" "क्या वह सचमुच सुन्दर था?" चश्मे ने पूछा। "यह बात तुम से ज्यादा कौन जान सकता है?" फूल बोले - "वह बिना नागा पेट के बल लेट कर तुम्हारी सतह पर अपना अक्स देखा करता था कि नहीं?" "अगर मैं उससे प्रेम करता था," चश्मे ने जवाब दिया— "तो इसका कारण यह था, कि जब वह मुझ पर झुकता था, तो उसकी आँखों में मुझे अपने ही

मैं जरूर रोऊँगी !

हुस्न की झलक दिख जाया करती थी ।” ’

मेहमान औरत बड़ी तन्मयता से मेज़वान की ओर देख रही थी । अँगोठा में आग के शोले उठ रहे थे ।

बारिश के शोर में मेज़वान ने अपनी बात जारी रखी—“आह, वह फूलों और पौधों की घाटी ! वहाँ की वह मस्ती-भरी, सुगंधित हवायें ! वहाँ बसन्त ऐसे आता था, जैसी देवी वेनस दवे-पाँव, मधुर मुस्कान के साथ भीनी रातों में ज्यूपिटर के शयनागार में जा घुसती थी । देखते-देखते बर्फ पिघल जाती, पहाड़ियाँ और टीले मखमली लिबास में खड़े नज़र आते, रंग-बिरंगे पक्षियों के झुण्ड-के-झुण्ड आ इस्टूटा होते । कण-कण में सुन्दरता और जवानी अँगड़ाइयाँ लेने लगती । दिन के समय सूर्य चमकता, और खामोश रातों में चाँद अपनी चमक-दमक दिखाता । कैसी गज़ब की सुन्दरता ! सौन्दर्य अँगव झपकते में नष्ट हो जाने वाली एक आफत है । यह एक मौन धोखा है ।...आह, अब नये सिरों से यह मुसीबत सहने की तमन्ना दिल में पैदा हो रही है । अब फिर धोखा खाने को जी मचलता है ।”

बात खत्म कर चुकने के बाद भी मेज़वान का मुँह खुला रहा । जैसे अभी वह कुछ कहने को हो । लेकिन फिर सिर हिला कर, वह चुप हो गया । औरत कुछ क्षणों तक उसकी आवाज़ की गूँज से आनंदित होती रही । फिर औरत ने काफ़ी की प्याली बढ़ा दी ।

“शुक्रिया !”

“यह था आपका बचपन ?”

मेज़वान चुप रहा । उसकी मुद्रा से प्रकट था, कि उसने सवाल सुना था, पर वह स्वीकारात्मक उत्तर नहीं देना चाहता था । शायद उसका मतलब यह था, कि अभी तो उसे बहुत-कुछ कहना है ।

“क्या बीते हुए दिनों की हसरत अभी तक दिल में है ?”

मेज़वान हँसा । कहने लगा—“आपके सवालों और मेरे जवाबों से

ऐसा प्रकट होता है, जैसे आप मुझ से इन्टरव्यू लेने आई हैं ।...आप मेरी मेहमान हैं । मेरा फ़र्ज़ है, कि आपके दिल बहलाने का सामान करूँ । आप अपनी ज़िन्दगी के हालात इस तरह बताने को शायद ही राजी हों । लेकिन आप शिक्षित हैं । यही कारण है कि हम इतने थोड़े समय में दो बेतकलुफ़ दोस्तों की तरह बातें कर रहे हैं ।”

“मैं सचमुच बहुत आनंदित हो रही हूँ,” कह कर, औरत अपने खास अन्दाज़ में मुस्कराई ।

मेज़बान भी इस मुस्कराहट से आनन्दित हुए बिना न रह सका ।

काफ़ी पीने के बाद, दोनों आराम कुर्सियाँ घसीट कर, अँगोठी के पास आ बैठे । बारिश की बौछारों की आवाज़ बराबर सुनाई दे रही थी । लकाड़ियाँ चटक-चटक कर जल रही थीं । कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं ।

“मेरा खयाल है, कि हम असल विषय से भटक गये हैं । आप अपने बारे में कुछ बता रहे थे ।”

“जी, वह बात तो मैं ख़तम कर चुका ”

“मैं तो उसे आपके हालात की केवल भूमिका समझती थी ।”

“भूमिका ?...हा-हा-हा !...जी नहीं ! बहुत दिनों बाद आज बात-चीत का मौक़ा मिला, इसलिये दिल का गुबार निकाल लिया ।”

“मेरे खयाल में ऐसे रोमैंटिक बचपन के बाद ज़िन्दगी की कटु वास्तविकताओं ने आपके रोमान्सपूर्ण जीवन के दृष्टिकोण को तो मटियामेट ही कर दिया होगा ?”

कुछ सोचने के बाद बूढ़े ने जवाब दिया —“सच पूछिये, तो जीवन की उन वास्तविकताओं से, जिनको आमतौर पर वास्तविकतायें समझा जाता है, मैं बहुत प्रभावित नहीं हुआ । ज़िन्दगी में निर्धनता भी एक कटु वास्तविकता है, लेकिन मुझ पर उसका कभी गहरा असर नहीं हुआ । मैं बेकार भी रहा, भूखा-प्यासा भी रहा, लेकिन ये ऐसी गौण चीज़ें थीं,

मैं जरूर रोऊँगी !

जिनसे मैं अधिक प्रभावित न होता था। मैं समझता था, कि जब चाहूँ, रुपया कमा सकता हूँ। किन्तु इसे मैं उतना ही महत्व देता था, जितना उसका जीवन की आवश्यकतायें पूरी करने से संबंध था। ... इसका कारण कोई महात्मापन नहीं था। बल्कि यों समझिये, कि मुझे इन बातों में दिलचस्पी ही न थी। मैंने जिन्दगी का कुछ भाग रुपया खर्च करने में भी लगाया, और उसमें मुझे काफ़ी सफलता भी मिली।”

“आखिर वह क्या चीज़ थी, जिसकी ओर आपका मन इस तरह लगा, कि दूसरी बातों की सुध ही न रही?”

बूढ़े ने तनिक धिलम्ब किया। उसकी घनी भौंहों के बीच माथे पर की रेखायें और स्पष्ट हो गईं। फिर वह बोला—“आप इस तरह के सवाल कर रही हैं, जिनके जवाब देने के लिये मैं तैयार न था। सारांश यह, कि अकेलेपन का भाव था, जिसने मेरा दिमाग सोच-विचार की ओर लगा दिया। और अकेलेपन की यह भावना इसलिये नहीं थी, कि दुनिया में मेरा कोई नहीं था, बल्कि इसलिये कि मेरी यह भावना इतनी तीव्र थी, कि इस मैदान में मेरा कोई भी प्रतिद्वन्द्वी न था। या यों समझिये, कि मेरे विचार नये या दूसरों से भिन्न थे, इसलिये मेरा किसी से सभझौता न हो सका। ... दर-असल मैं आपको समझा न सकूँगा। बस, इतना समझ लीजिये, कि मैं बिल्कुल अकेला रहा। मैं किसी ऐसी चीज़ की प्रतीक्षा करता रहा, जिसे मैं स्वयं न जानता था, न बयान कर सकता था। और न उसे मैं पा ही सका। न किसी व्यक्ति ने मुझमें ऐसी खूबी ही देखी, कि वह मुझे असाधारण महत्व देता।”

“आप निराश हो गये होंगे। आपको कोई न मिला, जिसे आप अपना बना सकते?”

“मैंने किसी से नहीं कहा, कि वह मेरा बने। और न किसी ने अपने-आप इस बात की जरूरत ही महसूस की।”

“जिन्दगी आपके लिये आँधेरी हो गई होगी !”

“ऐसी बात नहीं। मेरी तबीयत में एक ज़िद, एक उजड़ूपन था, जिसने मुझे जीवित रक्खा। वास्तव में मेरा जीवन में प्रेम की कमी ही रही। जिन्दगी में मुहब्बत की कमी रह जाना एक पुरानी कहानी है। बहुतों की जिन्दगी में ऐसा हो जाता है। लेकिन मैंने एक तो बड़ी नफ़रत से आकेला रहना स्वीकार कर लिया, दूसरे इसका अनुभव कम हो जाने के बावजूद उसका प्रभाव कम ज्यादा मौजूद है। सब से अधिक निराशाजनक पहलू इस सम्बन्ध का यह था, कि मैंने कभी पराजय स्वीकार नहीं की, और न कभी अपने दर्द का प्रकट होने दिया। मैं इस बात को समझता हूँ, कि दुनिया में मेरा होना या न होना कुछ भी महत्व नहीं रखता, और न मेरे व्यक्तिगत जीवन का प्रश्न समस्त मानव-जाति की समस्याओं में कुछ भी महत्व दिये जाने के योग्य है। यह तो मेरे निजी मामले हैं, बिलकुल मेरी निजी उलझन, जिसे आप कुरेद-कुरेद कर पूछ रही हैं !”

औरत दोनों जुड़े हाथों पर गाल टिकाये, खोई-खोई दृष्टि से बूढ़े की ओर देखती रही।

“जिन्दगी...”

“हाँ, इनसानी जिन्दगी की बाबत भी जो राय मैंने कायम की है, उस पर मेरे व्यक्तिगत हालात का असर है। मुझे जीवन के खोखलेपन का बहुत खयाल है। मैं जानता हूँ, कि यह शुद्ध पूर्वोक्त विचार है। लेकिन जीवित रहने के पक्ष में कौन-सा तर्क है, जो उपस्थित किया जा सकता है ? यानी अगर यह मान भी लिया जाय, कि वास्तव में जीवन एक ही है, और कुछ भी नष्ट नहीं होता...”

औरत अधीरता से बोली—“अब बात का रख बदल चुका है, और शायद इससे आगे मैं आप का साथ न दे सकूँ।...लेकिन मैं जानना चाहती हूँ, कि क्या आप बुराई और भलाई, नेकी और बदी में

मैं जरूर रोऊँगी !

विश्वास करते हैं ? क्या आप मानव की भलाई पर विश्वास रखते हैं ?”

“भलाई और बुराई स्वतः ऐसी चीजें हैं, जिनके लिये स्थाई मान्यतायें क्रायम करना कठिन होगा । ‘मानवता की भलाई’ एक बहुत ही अस्पष्ट-सी बात है । आखिर कहाँ होगी मानव या मानवता की भलाई ?...लेकिन यदि हमें जीवित रहना ही है, अर्थात् अगर हम जीवित रहने पर बिना किसी विशेष कारण के विवश या तुले हुये ही हैं, तो अवश्य ही हमें सचना पड़ेगा, कि जीवित रहने का फिलहाल सब से अच्छा ढंग कौन-सा हो सकता है । यदि यह बात स्पष्ट न हो, तो और विस्तार से कहूँ ?”

“धन्यवाद ! मैं चाहती हूँ, कि बातचीत हल्की क्रिस्म की हो । क्यों न हम कला के विषय पर ही बात करें ?”

बादल खूब गरजने लगे । बिजली तो ऐसी कड़की, जैसे कहीं गिरी हो ।

“कला को समझने और उसका सेवा करने की क्षमता स्वभावतः मुझ में थी । लेकिन मैं दूसरी बातों से तंग आ कर इसकी ओर आकर्षित हुआ । मैंने कला को जीवन की समस्याओं के लिये लगा दिया । और जीवन की समस्याओं के बारे में आप सुन चुके हैं, कि मेरे विचार क्या हैं ।...रचना करने में अवश्य ही कलाकर को कुछ शरण मिलती है ।”

औरत सोचने लगी, कि बात घूम-फिर कर फिर जीवन की कठिन समस्याओं के दलदल में फँसी जा रही है । वह सीखचे से जलती हुई लकड़ियों को कचोके देने लगी । बूढ़ी सेविका की भी आँख खुल गई । और आग फिर भड़क उठी ।

“इस उम्र में आपकी भावनायें तो और भी तीव्र होंगी ? आपके बाल-बच्चे क्या हुये ?”

शहनाज़

बूढ़े ने आश्चर्य से औरत की तरफ देखा। बोला—“बच्चे ! बच्चे कैसे ? मैंने शादी ही कब की थी ? और भावनाओं के तीव्र होने के विषय में बस यह समझ लीजिये, कि यह दुनिया किसी के साथ रियायत नहीं करती ।”

इसके बाद बहुत देर तक खामोशी छाई रही। सिर्फ बारिश की आवाज़ आती रही। मेहमान और मेजवान, दोनों के सिर झुक गये। वे किसी गहरे सोच में डूब गये। बूढ़ी सेविका का चेहरा भावनाओं से खाली था। वह उनकी शुष्क बातों की ओर से बिलकुल बेपरवाह दिख रही थी।

“क्या कभी किसी औरत से आपका सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ ?” औरत ने आगे की ओर हाथ बढ़ाये।

मेजवान क्षण भर आँगीठी को घूरता रहा। फिर बोला—“सम्बन्ध तो अवश्य हुआ। एक-दूसरे के बहुत करीब आ जाने का मौका भी मिला। लेकिन...किसी के प्रति भी मुझे अपनेपन का अनुभव न हुआ।”

“किसी से भी नहीं ?”

बूढ़े ने हाथ मलते हुये, कुछ रुक कर, औरत की ओर देखा। कहा—“सिवाय एक के ...”

“एक ?”

“जी हाँ, एक ! लेकिन मैंने उसे देखा कभी नहीं। बस, निकटता का अनुभव हो कर ही रह गया। आप शायद एक असफल प्रेम की कहानी सुनने की आशा रखती हों ? लेकिन बात ऐसी नहीं।”

औरत फिर एक बार अपने खास अन्दाज में मुस्कराई। “वह कौन थी ?”

“मैं ज्यादा कुछ नहीं जानता।...उसका नाम था ..”

औरत आगे को झुक गई।

मैं जरूर रोजूँगी !

बूढ़े ने फ़र्श पर नजरें गड़ा कर, कहा—“उसका नाम था शहनाज !”

औरत ने डुपट्टे से सिर ढाँप लिया, और ठोंगें समेट कर बैठ गई ।

“मुझे उसकी दो चिट्ठियाँ मिलीं । उसने किसी नुमायश में मेरे हाथ की बनी तस्वीरें देखाई, और उसे वे इतनी पसन्द आईं, कि वह मुझे पत्र लिखने को विवश हो गई ।...‘आशा है, कि आप बुरा न मानेंगे ।...जवाब जल्द से जल्द दें ।...’ वगैरा-वगैरा ।...बस यही लिखा था ।”

‘आप ने क्या जवाब दिया ?’

“मैंने ?...आप जानती हैं, औरतों से सम्बन्ध निभाने के ढंग मुझे बिल्कुल नहीं आते । खैर, उस चिट्ठी का जवाब तो मैंने दे ही दिया । पहले तो मैंने लिखा, कि शहनाज उसका फ़र्जी नाम है । उसे चाहिये, कि वह अपना असली नाम और हालात लिखे । फिर मैंने अपनी नई कृतियों पर उसकी राय माँगी । इस बात पर आश्चर्य प्रकट कियाक, मेरा पता कहाँ से मिला । अन्त में मैंने लिखा, कि मैं औरतों से पत्र-व्यवहार करने की कला से अनभिज्ञ हूँ । आप किसी बात का बुरा न मानें ।”

औरत की दिलचस्पी बढ़ी । बोली—“उसने क्या जवाब दिया ?”

“उसने जवाब बहुत दिनों के बाद दिया ।...वही औरतों की पुरानी आदत ।...ज़रा ठहरिये, शायद असल चिट्ठी ही यहीं कहीं मिल जाय ।”

बूढ़ा उठा । बड़ी मेज के ड्राअर बाहर खींच-खींच कर टोले, और एक बड़ा-सा, पुराना लिफ़ाफ़ा उठा लाया । “यह रही ! सुनिये ‘जवाब बहुत देर से दे रही हूँ । आप तो इन्तज़ार करते-करते थक गये होंगे । खुश और ख़ासी इतनी बढ़ी, कि न पूछिये । बहुत दुर्बल हो गई हूँ । आपकी नाराज़ी का खयाल न होता, तो अभी पत्र लिखने की हिम्मत न

शहनाज़

करती । आप मेरे बारे में क्या जानना चाहते हैं ? मैं वायदा करती हूँ, कि आप जो सवाल करेंगे उनका सही जवाब दूँगी । नाम तो मेरा सच-मुच शहनाज़ नहीं, लेकिन आप मुझे इसके लिये मजबूर न करें, तो अच्छा हो । आपके पते के बारे में यही कहना है, कि ढूँढ़ने से तो ईश्वर भी मिल जाता है ।...मुझे खुशी है, कि आपने मेरी धृष्टता का बुरा नहीं माना ।...

“वगैरा-वगैरा :...इसके बाद मेरी तस्वीर पर आलोचना है । अन्तिम लाइनें ये हैं—‘मैंने विस्तार के साथ अपने विचार प्रकट कर दिये हैं । अपनी राय लिखें, तो बड़ी कृपा हो । आपके पत्र की अन्तिम लाइनों के विषय में निवेदन है, कि मुझे आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई । नापसन्द या बुरी क्क्यों लगने लगी कोई बात ? अन्त में इतनी देर में जवाब देने के लिये फिर माफी चाहती हूँ । आपके जवाब का बेहद इन्तज़ार रहेगा कृपा कर देर न कीजियेगा ।

जवाब की प्रतीक्षा में—

शहनाज़ ।’ ”

औरत ने आँखें झपकाईं । “आपने क्या जवाब दिया ?”

बूढ़ा कुछ देर तक उसकी ओर अर्थहीन दृष्टि से देखता रहा । फिर बोला—“उनको अब तक जवाब का ‘बेहद इन्तज़ार’ है ।”

औरत कुर्सी के पीछे की ओर झुक गई । फिर बोली—“आपने ऐसा व्यवहार क्क्यों किया ?”

“ज़रा शब्दों पर गौर कीजिये । ‘आप तो इन्तज़ार करते-करते थक गये होंगे ’ मूर्ख कहीं की ! मैं भला क्क्यों इन्तज़ार करने लगा ? इसके बाद अपनी बीमारी और कमजोरी का रोना । और फिर, ‘आपकी नराजी का डर न होता...’ मूर्खता तो देखिये, भला मुझको नाराज होने का अधिकार था ?...फिर अपने को इतना महत्व दे दिया, कि भली औरतों

मैं जरूर रोऊँगी !

की तरह सीधी बात न लिख दी, कि क्या नाम है, कौन है, क्या काम करती हैं। व्यर्थ की बकवास के क्या मानी ?”

औरत ने सफारिश के लहजे में कहा—“आखिर औरत ही तो थी। हो सकता है, कि कोई खास कारण हो।”

“औरत ! औरत ! हो सकता है, कि वह कोई चुड़ैल हो। हो सकता है, कि एक सिरे से औरत का अस्तित्व ही न हो। यां ही कोई हज़रत दिल बहला रहे हों। आप जरा पत्र के शब्दों पर गौर तो कीजिये ”

“हो सकता है, कि वह भली लड़की हो, कला की प्रेमी, आपकी दोस्त ।...खैर, कभी-कभी उसकी याद तो आती ही होगी ?”

बूढ़े ने माथे पर त्योरियाँ डालीं। “याद ? कभी नहीं, कभी नहीं ! बल्कि मैं उसको हमेशा के लिये भूल गया, उससे नफ़रत करने लगा।”

इस बात पर औरत गहरे सोच में डूब गई।

“अरे, आप सोचने क्या लगीं ?” बूढ़ा ठहाका लगाता हुआ, बाहर निकल गया ।...

बादल हल्के हो गये। बारिश करीब-करीब थम गई। प्रातःकाल का प्रकाश फैलने लगा। पन्द्रह-बीस मिनट के बाद बूढ़ा वापस आया।

“आप लोग नाश्ता कर लें। मैंने नौकर को नाश्ता लाने के लिये कह दिया है।”

मेहमान औरत बोली—“अब आप इजाजत ही दें, तो अच्छा हो।” नाश्ते पर भी इधर-उधर की मजेदार बातें होती रहीं।

नौकर ने आ कर पूछा, कि “कोचवान पूछ रहा है, कि गाड़ी तैयार की जाय ?”

औरत ने सिर हिला कर, ‘हाँ’ कह दिया।

“आइये, तब तक आपको अपना स्टूडियो दिखाऊँ।”

वे तीनों स्टूडियो में पहुँचे। एक बड़ा कमरा था, और अनगिनत

शहनाज़

चित्र—वाटर और ऑयल कलर के दीवारों पर लटके थे । औरत उनको देख कर बहुत आनन्दित हुई ।

एक घन्टा बीत गया, फिर भी दिल न भरा ।

जब वह जाने को तैयार हुई, तो बूढ़े ने कहा—“ज़रा ठहरिये । मैं कोट पहन आऊँ । फिर नीचे चलेंगे ।”

उसके चले जाने के बाद, दोनों औरतें फिर चित्रों को देखने लगीं । एक ओर एक पुराना-सा दरवाजा था । सेविका ने उसकी चट्कनी खोल दी । औरत ने मना किया । किन्तु दरवाजा खुल जाने पर, भीतर भाँक लेने में उसने कुछ हर्ज न समझा । छोटा-सा कमरा था । इधर-उधर साधारण सामान बिखरा हुआ था—कागजात, रंगों की प्यालियाँ, पैमाने इत्यादि । वह दरवाजा बन्द करने को ही थो, कि कमरे में एक ओर एक सुन्दर पर्दा दिखाई पड़ा । सेविका के साथ वह आगे बढ़ी, और पर्दा हटा दिया । पर्दे के पीछे एक अनि सुन्दर युवती की आदम-क्रद तस्वीर बड़े अच्छे ढंग से एक सुनहरे चौखटे में जड़ी रखी थी । युवती इतनी सुन्दर थी, कि औरत स्तब्ध रह गई । वह हैरान थी, कि बूढ़े कलाकार ने वह तस्वीर उन्हें क्यों नहीं दिखाई । यह तो उसकी सर्वश्रेष्ठ कलाकृति थी । यह तस्वीर पूर्ण कर लेने के बाद यकीनन बूढ़े ने और तस्वीरें बनाना छोड़ दिया होगा । सेविका तक तस्वीर को देख कर हैरान रह गई । नीचे कुछ धुँधले अच्छर दिखाई पड़ रहे थे । औरत ने आगे बढ़ कर पढ़ने की चेष्टा की । लिखा था—“शहनाज़ !”

“शहनाज़ !” औरत के होंठ काँपे । बारिश में भीगी हुई गुलाब की दो ताजी कलियाँ चौखटे के आगे रखी थीं ।

इतने में बूढ़े की आवाज़ आई—“हा-हा-हा !...मुझे ऐसा महसूस होता है, जैसे मैं सदितों...”

उसकी आवाज़ बन्द हो गई । वह इधर-उधर देखने लगा । जल्दी से दरवाजे के अन्दर घुसा, और देखा कि औरत काँपते हुये हाथों से

मैं जरूर रोऊँगी !

‘शहनाज’ की तस्वीर पर पर्दा गिराने की चेष्टा कर रही है। बूढ़ा अपनी एक बाँह कोट की आस्तीन में डाल चुका था। और दूसरी बाँह... तो वह हिला ही न सका।...

औरतें बग़ी में बैठ गईं।

मेहमान औरत ने दूसरी बार विनम्र स्वर में बूढ़े मेज़वान से पूछा—“मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ ?”

बूढ़ा मौन रहा। वह सायबान पर चढ़ी हुई घनी बेल के पत्तों से टपकने वाली पानी की बूँदों की ओर देख रहा था। फिर उसने खोखली दृष्टि से औरत की ओर देखा। नीरस स्वर में धीरे से बोला—
“धन्यवाद !”

उसका मुँह खुला रहा। निचला जवड़ा जरा-सा आगे को बढ़ा। मानो वह कुछ कहने को हं। लेकिन फिर वह सिर हिला कर, चुप रह गया।

पीठ मोड़ कर, बूढ़ा सीढ़ियों पर भारी कदमों से चढ़ने लगा। उसके सिर के पीलाहट लिए सफेद बाल चमक रहे थे। वह ऐसा दिखाई देता था, मानो एक बहुत बड़ा टूटा हुआ जहाज़ हो, जिसके पाल कट चुके हों। चौड़ी सीढ़ियों पर चौड़े और ऊँचे दरवाजे के सामने वह कितना छोटा और दीन दिख रहा था !

एक हल्के-से धक्के के साथ बग़ी चल पड़ी।

औरत की पलकें भीगी हुई थीं। फिर उसकी आँखें आँसुओं से भर गईं। एकदम झुक कर, उसने दोनों हाथों में अपना चेहरा छिपा लिया।

सेविका उसके कौपटे कंधों पर हाथ फेरने लगी।

चकोरी

निजहत घर पर अकेली बैठी जुर्राबें बुन रही थी। उसके अन्ना दफ्तर गये हुये थे। प्रोफेसर अब्दुल्ला के घर कोई मौत हो गई थी, अम्मी को वहाँ जाना पड़ा। छोटा भाई और बहन स्कूल में थे। केवल उनका बारह वर्ष का नौकर उमरू सहन में बैठा डेगची माँज रहा था। मटर और कीमा थाली में रखे थे। अम्मी सालन तैयार करने के लिये कह गई थीं। निजहत ने कई बार उठने का निश्चय किया लेकिन न उठी। आज उसका मन बस यही चाहता था कि जुर्राबें बुने जायँ।

उन्हें सरकारी मकान मिला हुआ था। मकान के इर्द-गिर्द कुछ

मैं जरूर रोऊँगी !

गज जमीन बाग के लिये छोड़ दी गई थी। मकान में एक ही पंक्ति में चार बड़े-बड़े कमरे थे। दो बरामदे थे। एक बरामदा अन्दर की ओर था जिसके दोनों सिरों पर स्नान-गृह और एक छोटा सा स्टोर बना हुआ था। अच्छा खासा सदन था। सदन के परले कोने पर रसोई-घर था।

अब्बा या तो बड़े खुश-मिजाज और अलबेले स्वभाव के आदमी थे, लेकिन उन्हें बाग से कोई दिलचस्पी न थी, इसलिये बाग वीरान पड़ा था। हरी-भरी बाढ़ कटाई न होने के कारण बेतहाशा बढ़ी और उलभी हुई डाढ़ी के समान दिगवाई पड़ रही थी। बीच की चौड़ी रौंस के दोनों किनारों पर लम्बी पंक्तियों में गड़ी हुई आड़ी ईंटें भी इधर-उधर गिरी पड़ती थीं। जमीन पर अपने आप उगी रूखी-सूखी घास बहुत भदी मालूम होती थी। वह छोटा सा चौकार तालाब जो सिंचाई के लिये सरकार की ओर से बनाया गया था, सूखा पड़ा था। उसमें तीन-चार बार न जाने कैसे मेंडक गिर पड़े। कहीं बच्चों ने देख पाये। ढेले मार-मार कर बेचारों को शहीद कर डाला। अभी तक वे ढेले बेतरतीबी से पड़े थे और वे मेंडक उपलों की तरह सूखे।

सर्दी विदा हो चुकी थी। गर्मी आ रही थी, किन्तु सुबह के समय हवा ठंडी ही होती थी। हाँ, दोपहर को गर्मी महसूस होने लगती। इसलिये दिन का वह भाग तो यां ही कमर सीधी करते और करवटें बदलते ही बीत जाता। हाँ, सुबह के समय, जब कि सब लोग बाहर चले जाते थे और मौसम भी सुखद होता था, काम करने में जी लग जाता था। उसकी उंगलियों में सलाइयाँ तेजी से इधर उधर घूम रही थीं। वह अपने हाथों से लगाये चमेली के पौधों की ओर देख रही थी। पिछली शाम को उन पर कुछ कलियाँ मौजूद थीं। आज फूल खिल गये थे। वह सोचती थी कि न जाने कितने फूल हैं। पौधे जरा दूर थे, इसलिए वह फूलों की सही संख्या का अनुमान न लगा सकती थी।

चकोरी

इतने में क़रीब एक फ़र्लाङ्ग दूर पक्की सड़क से एक टाँगा उधर को घूमा और गुड़हल के तीन वृद्धों के पास से होता हुआ आगे बढ़ा। उस जगह लारियों, कारों और टाँगों की ऐसी रेल-पेल न थी। यह सरकारी जगह थी। बिना ज़रूरत कोई टाँगा उस तरफ़ का रुख़ न कर सकता था। टाँगा उसी दशा में दिखाई पड़ता था जब किसी को कहीं जाना हो या किसी का कोई सम्बन्धी मिलने के लिये चला आये। यहाँ सभी लोग परदेसी थे। भला ऐसे बिना किसी खास ज़रूरत के किसी के सम्बन्धी को क्या पड़ी है कि अपना काम छोड़-छोड़ कर इतनी दूर मिलने के लिये चला आये।..... निजहत पहले तो बरामदे की उठी हुई चिक में से टाँगे की ओर देखती रही, लेकिन जब टाँगा चिकों की ओट में आ गया तब वह फिर ज़ुर्रायों पर झुक गई। हाँ, उसके कानों में घोड़े की टापों और टाँगे की खचाखच की आवाजें आती रहीं और फिर टाँगा एक दम रुक गया। वह चौंक पड़ी.. उनके यहाँ तो कोई आने वाला नहीं था। लेकिन टाँगा अवश्य ही उनके दरवाज़े पर ही आकर रुका था... यद्यपि वह जिस दरवाज़े के पास बैठी हुई थी उस पर चिक पड़ी हुई थी, फिर भी उसने सावधानी से अपना सिर ढाँप लिया और पीढ़ी खिसका कर तनिक पीछे हटा ली। फिर कान धर कर, सुनने लगी... पाँव की आहट सुनाई पड़ी। फिर बरामदे के फ़र्श पर सामान रखने की आवाज़ आई। इसके बाद कुछ क्षण खामोशी छाई रही, फिर टाँगे वाले की आवाज़ सुनाई दी—‘सलाम साब !

निजहत ने दरवाज़े के पट भेड़ने शुरू किये। अभी वह दरवाज़ा पूरी तरह बन्द भी न करने पाई थी कि बूयों का शोर बहुत क़रीब से सुनाई पड़ा और वह बिदक कर पीछे हट गई। क्या किसी अपरिचित ने उसे देख पाया था ? उसने अपना हाथ काँपती हुई छाती पर रख लिया, और उसकी साँस असाधारण गति से चलने लगी। उसकी बड़ी-बड़ी सुर्मयी आँखें फैल कर और भी बड़ी हो गईं। उसके निचले होंठ का जरा

में जरूर रोज़गी !

सा भाग उसके दाँतों तले दब गया । लेकिन नहीं, अजनबी उसे हरगिज़ न देख पाया होगा ।

‘ख़ाँ साहब !...ख़ाँ साहब !!’

आवाज़ से नव आगन्तुक तरुण ही जान पड़ता था । उसकी आवाज़ भरपूर न थी, न उसके स्वर में परिपक्वता और न भारीपन ही पैदा हुआ ।...निजहत कोने में चुपचाप दुबकी खड़ी रही । वह जवाब न दे सकती थी । नव आगन्तुक की आवाज़ इतनी मद्धिम थी कि सहन में बैठे हुए नौकर के कानों तक भी न पहुँच सकती थी । शायद वह जानता था कि कमरे में कोई न कोई तो अवश्य होगा । दरवाजा अब भी कुछ खुला हुआ था । दरवाजे के आगे चिक पड़ी सही, किन्तु नव आगन्तुक आगे से हटे तो वह सहन में जाकर नौकर को बाहर भेजे । नव आगन्तुक मद्धिम स्वरों में आवाज़ें देता ही चला गया । निजहत भी बेजान बुत बनी खड़ी रही । फिर तनिक मौन के बाद बूयों के चर्र-मर्र की आवाज़ परे हटने लगी । उसने दबे पाँव आगे बढ़ कर दरवाजा बन्द कर दिया और फिर पंजों के बल लम्बे-लम्बे डग भरती हुई नौकर के निकट पहुँची और हाँपती-कौपती आवाज़ में कहने लगी—‘उमरू ! उमरू !!’

उमरू बाहर गया, फिर भीतर आया, फिर बाहर भेजा गया, फिर जवाब लेकर अन्दर आया । इस प्रकार पाँच-सात मिनट इसी हेर-फेर में बीत गये । परन्तु उमरू इतना मूर्ख लड़का था कि उसकी बातों से निजहत के पल्ले कुछ भी न पड़ा । बस, यही मालूम हो सका कि नव आगन्तुक अब्बा के किसी दोस्त का लड़का है । निजहत बेचारी अजीब सोच में पड़ी थी अब्बा का डर कि कहीं डाँटें न कि अन्दर क्यों न बैठाया और फिर उसने अखबारों में यह भी पढ़ा था कि किस तरह कुछ घोखेबाज ठग मेहमान बन कर लोगों के घरों में पहुँच जाते हैं... हार कर उसने कोने वाले कमरे में, जिसे घर की बैठक कहना चाहिये, मेहमान को बैठाया और उसका सामान—एक बिस्तर, एक सूट-

केस और एक बेग—भीतर मँगवा लिया, और फिर घर के कुल दरवाज़े भीतर से बन्द करके रसोई घर में उमरू के पास जा बैठी।

“अरे उमरू ! कौन होगा, भला तूने पहले भी कभी देखा है उसे ?”

थोड़ी देर बाद अम्मी आ गईं। वे दोनों रसोई घर में दुबके बैठे थे। उन्होंने मेहमान से पानी तक के लिये न पूछा था। अम्मी को ये सब बातें मालूम हुईं, तो उन्होंने उमरू को तुरन्त मेहमान के पास भेजा।

अम्मी के जरिये मालूम हुआ कि वह नवयुवक अब्बा के किसी दोस्त का लड़का था और इस जगह इम्तहान देने के लिये आया था। उमरू ने वापस आकर जोर-जोर से चिल्लाते हुए कहा—“जी, वह पानी माँगते हैं, लोय माँगते हैं, तौलिया माँगते हैं।”

अम्मी हाथ झटका कर बोलीं—“कलमुँहे, चिल्लाता क्यों है ! देखो तो खड़ा हाँफ रहा है।”

फिर अम्मी ने निजहत को ट्रंक में से धोबी का धुला हुआ तौलिया निकालने के लिए भेजा। वह आँचल सँभालती बड़ी फुर्ती से छोटे-छोटे कदम उठाती चल दी। उसके पीछे-पीछे उमरू नाक सुड़सुड़ाता हुआ लपका चला जा रहा था। भीतर वाले कमरे में पहुँच कर निजहत ने लकड़ी का बक्स खोलने के लिये हाथ बढ़ाया। उमरू बोला—“उन्होंने कहा था—‘मेरे ट्रंक में से निकाल कर दो।’”

“उन्होंने किसने ? अम्मी ने ?”

“जी नहीं !” उमरू ने हाथ उठा कर इशारा करते हुए काफी ऊँची आवाज़ में कहा—“उन्होंने...वह...जो आये हुए हैं...!”

निजहत उसकी इतनी ऊँची आवाज़ सुन कर काँप गई। चपत मारने के अन्दाज़ में हाथ उठाती हुई बोली—“तुझसे धीरे से नहीं बोला जाता क्या ?”

मैं जरूर रोऊँगी !

उमरू अपने हाँठों पर आप ही उँगली रख कर चुप हो गया । निजहत मन-ही-मन शर्मा रही थी—बेवकूफ उमरू, कमबख्त कैसा गला फाड़ कर चिल्लाता है ।

चमड़े का सूट-केस पलंग पर अभी तक ज्यों का त्यों धरा था । कमरे के बाक़ी जाने-पहचाने सामान में यह चाकलेट रंग का सूट-केस बिलकुल अजनबी मालूम होता था । उसके चारों कोनों पर निकल किये हुए लोहे के टुकड़े चमक रहे थे...वह आगे बढ़ी । सूट-केस के स्पर्श से उसकी उँगलियों में एक हल्की-सी थरथराहट की लहर दौड़ गई । उसने उसके बटन पर अँगूठा रख कर दबाया । किन्तु वह अपनी जगह से टस से मस न हुआ । उसने और जोर से दबाया, फिर भी वह अपनी जगह से न हिला । इसी कशमकश में उसके सिर से डुपट्टा खिसक गया । किन्तु वह उसे खोलने पर तुली हुई थी । बटन दबाने के कारण उसका अँगूठा पीछे की ओर घूम गया और उसकी पोरों पर गहरे लाल रंग की रेखाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगीं । और फिर सहसा अँगूठा हटा और कुड़ा पटाख से खुल कर उसके हाथ से टकराया और वह हाथ पकड़ कर बैठ गई । उमरू की बत्तीसी निकल आई ।

नौकर तौलिया लेकर चला गया और वह खुले हुए सूट-केस के पास ही खड़ी रही । सूट-केस से फिनाइल की गोलियों और सुगंधित तेल की मिली-जुली सुगन्ध आ रही थी । कपड़े-लत्ते ठुँसे-ठुँसाये नजर आ रहे थे । तीन रङ्ग-बिरङ्ग की टाइयों एक कोने में चार-पाँच कालर । सफेद रूमालों की तह बिगड़ गई थी । फाउन्टेन पेन, नोट बुक और कुछ रंगीन लिफाफे बिखरे पड़े थे ।

शाम को जब अब्बा घर आये तो मेहमान से बड़े तपाक से मिले और अन्दर आकर पूछते रहे कि कहीं उनकी खातिरदारी में कोई कसर तो नहीं उठा रखी । मेहमान और अब्बा का उम्र में बहुत अधिक अन्तर भी हुआ तो क्या, अब्बा छोटे बच्चों तक से हिल-मिल जाते थे ।

चकोरी

थोड़ी देर बाद बच्चे भी स्कूल से वापस आ गये। खूब हंगामा रहा। मेहमान के आगमन से घर में बड़ी चहल-पहल हो रही थी। रात के लिये विशेष रूप से कई तरह के सालन, सब्जी और दाल आदि बनाने का हुक्म मिला। मर्दाने में से अब्बा के ठहाकों और बच्चों की किलकारियों की आवाज़ें आ रही थीं। थोड़ी देर बाद नौ वर्षीय तौफीक अन्दर आया – “अम्मी, अम्मी ! हम नुमायश देखने के लिये जायेंगे। खुशी भी चलेगी। अब्बा कहते हैं कि कपड़े पहन कर आओ, तुम्हें मुमताज भैया के साथ नुमायश में ले चलें। अम्मी, बस जल्दी कीजिये, बहुत जल्दी।”

अम्मी ने तौफीक के माथे से बाल हटाते हुये निजहत से कहा कि बच्चों को कपड़े पहना दे। निजहत अचल सँभालती अन्दर चली गई। पीछे-पीछे चीखते-चिल्लाते बच्चे।

निजहत ने कपड़े ट्रंको में से निकाले।

बच्चे हाँप रहे थे। उनके गाल तमतमा उठे थे। लगता था कि मुमताज भैया से उनकी काफी घनिष्टता हो गई थी। “मुमताज भैया की वह बात...!” और फिर “आपा आप जानती हैं, मुमताज भैया कैसे बैठते हैं...?” यह कह कर वह स्टूल पर टाँग पर टाँग धर कर और ठोड़ी के नीचे हाथ रख कर बड़े आकर्षक ढंग से बैठ गया और मुस्कराने लगा। निजहत उसे कनखियों से देखती रही और फिर, “आपा, आपको मालूम है कि मुमताज भैया...”

रात के साढ़े दस बजे के लगभग वे लोग नुमायश से लौटे। बच्चे चीखते-चिल्लाते, गाते-मटकते और खड़ के रंग बिरंगे गुब्बारे उड़ते हुए आँगन में दाखिल हुए। बेचारी खुशी कुछ थक सी गई थी। “अच्छा तो हमारी नन्हीं खुशी क्या चीज़ खरीद कर लाई है?... एक गुड़िया ! जितनी बड़ी वह खुद है उतनी ही बड़ी गुड़िया ! और

मैं जरूर रोज़गी !

यह क्या ?...खुर्शी बिटिया यह क्या है ?” खुर्शी फूँक मारती है और कागज़ में लिपटा हुआ साँप सीढ़ी की सी आवाज़ निकालता हुआ अकस्मात अम्मी की नाक छू लेता है। खुर्शी की नौद ही माती आँखें चमक उठती हैं। किन्तु थोड़ी ही देर बाद उसे नौद आने लगती है। बाकी लोग भी खाना-पीना करके धीरे-धीरे सो जाते हैं। निजहत खिड़की के पास अपने बिस्तर पर लेटी है। मौसम बड़ा सुहावना है। तारे धुल्ले हुए मोतियों के समान चमक रहे हैं। चाँद बादलों की ओट में उड़ा जा रहा है।

सुबह बच्चे स्कूल जाने के लिये तैयार होने लगे। घर के उजड़े हुए बगीचे में टमाटर के पौधे में कुछ टमाटर तोड़े गये। बच्चों को आलू टमाटर देने थे और फिर इसके बाद मुमताज भैया के लिए क्या चीज पकेगी ? न जाने उन्हें कौन सी चीज पसन्द है ? उनसे कौन पूछे ?...निजहत स्वयं यह बात उमरू से कहना उचित न समझती थी, और अम्मी को इस बात का खयाल ही न आ सकता था। फिर उसे याद आया कि नवम्बर के महीने में उसने गोभी सुखाई थी। शायद वह रक्खी हो। इस विचार से वह उठी। जब वह सहन से निकल कर बरामदे में पहुँची तो उमरू बरामदे से सरपट भागता हुआ निकला और उससे टकरा गया। हकला-हकला कर बोला - “आपा जी ! दुथ क्या होता है ? जी, वह जो आये हैं वह दुथ दुथ ।”

‘मुझे दूध पेस्ट चाहिये। मेरे बेग में...’

मर्दाने से यह आवाज़ सुनकर निजहत स्तब्ध रह गई। पहले वह उलटे पाँव दौड़ने लगी।...फिर कमरे की ओर...लेकिन अम्मी कहाँ हैं ?...उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा....‘किसी ने देखा तो नहीं ?’ ...बड़ी कठिनाई से जाकर उसने बेग में से दूध-पेस्ट और ब्रश निकाल कर नौकर से जान छुड़ाई और स्वयं जल्दी से रसोई घर में चली आई।

अम्मी सिर मुकाये प्याज काट रही थीं। निजहत के कान अभी

चकोरी

तक बज रहे थे—‘मुझे दूध-पेस्ट चाहिये।’ उसके शरीर में सनसनी दौड़ रही थी। जैसे-जैसे समय बीतता गया, उसके कानों में आवाज़ की प्रतिध्वन मद्धिम होती गई, यहाँ तक कि उसके कानों में वह अत्यन्त मधुर और रसीला संगीत गूँजता रह गया।

वह आवाज़ उसे दिन में कई बार सुनाई पड़ती। विभिन्न स्वरां और लौच के साथ कभी ऊँचे ठहाके, कभी दबी-दबी हँसी—धूमते-फिरते परिचित ध्वनियों में उसके कानों को यह ध्वनि बड़ी भली लगती थी। वह केवल आवाज़ ही सुन कर कई प्रकार की कल्पनायें करती थी। प्रत्येक कल्पना चित्ताकर्षक होती थी। उसे सुनते रहने की दबी-दबी-सी इच्छाएँ उसके मन में करवटें लिया करतीं। चोरी-छिपे मर्दाने में भाँकने का उसे साहस ही नहीं हो सकता था, बल्कि उसके मन में इसका खयाल तक न आया था ...किन्तु कोई नाजुक-सा रिश्ता इस ध्वनि से बंध चुका था।

जब वह इधर-उधर के कामों में लगी एक कमरे से दूसरे कमरे में जाती तो मुँह ही मुँह में कुछ गुनगुनाया करती। उसने कभी कोई काम का गीत या लाइन याद न की थी।

मन में से कोई गीत बन कर उसके होंठों तक आता था, किन्तु इतना अस्पष्ट और अर्थ-हीन कि शब्दों में व्यक्त न होता था। अनजानी और अनसुनी ध्वनि में एक गुनगुनाहट सी पैदा होकर रह जाती थी।

संध्या समय जब उनके रसोई घर की लोह की चादरों वाली छत सूर्य के प्रकाश में जगमगा उठती थी, तो उस समय आँगन की दीवार के साथ बाहर की ओर वे सब लोग मिलकर बैडमिंटन खेला करते थे। निजहत सूखे हुए कपड़ों को रस्सियों से उतार-उतार कर उनको तह करती, तो उसकी दृष्टि दीवार के ऊपर उठ जाती, जहाँ रैकेट एक क्षण के लिए धूमते दिखाई पड़ते और फिर विलीन हो जाते। खिलाड़ियों के

मैं जरूर रोऊँगी !

पाँव तले से धूल उठ कर हवा में मँडराने लगती और निजहत सोचने लगती, इसी धूल में वह धूल भी मिल गई होगी जो ।...बच्चों के शोर मचाने और तालियाँ बजाने की ध्वनि सुनाई पड़ती—“अहा !...अब मुमताज भैया की सर्विस है...अब मुमताज भैया...!” और कभी चिड़िया उछल कर आँगन में आ गिरती । और यदि कोई आस-पास न होता तो वह ‘चिड़िया’ को उठा लेती और फिर विचित्र सोच में पड़ जाती कि उसे बाहर फेंके या न फेंके...।

कभी निजहत आँगन के कोने में रसोई घर की दीवार की छाया में बैठी उँगलियों के नाखून बराबर किया करती । उमरू चूल्हा लीपने के लिये मिट्टी गूँधने में मग्न होता, और अम्मी उसे निर्देश देतीं । मर्दाने से आवाज़ आती—“उमरू !...उमरू !!” वह उस आवाज़ को हजारों आवाज़ों में से पहचान सकती थी । परन्तु उमरू उस ओर बिना ध्यान दिये, मिट्टी गूँधे जाता । अम्मी बेपरवाही से हाथ-पाँव से मल-मल कर मैल की बत्तियाँ बनातीं और झाड़तीं । उनके कान पर जूँ भी न रेंगती । निजहत मन ही मन में कुदती ।

एक दिन मुमताज भैया का कोई पच नहीं था । शायद घर ही पर बैठे रहे—बिलकुल चुपचाप ! निजहत कुछ घबराई, कुछ लजाई, कुछ सिमटी, कुछ लड़खड़ाती इधर-उधर घूमती रही । जब वह रसोई घर से भीतर की ओर या भीतर से रसोई घर की ओर जाने के लिए मर्दाने के पास से होकर निकलती तो उसका मन उछलने लगता । किन्तु मर्दाने में बिलकुल सन्नाटा था ! कोई आवाज़, पाँव की चाप, कागज़ों की सरसराहट, गीत की गुनगुनाहट या कुछ—कुछ भी नहीं...। उमरू मर्दाने की ओर जाता था और लौट आता था, परन्तु मुँह से कुछ न फूटता था ।...हर कोई कितना संतुष्ट दिखाई पड़ता था !

जब दोपहर के समय अम्मी सो गई...तो निजहत ने भीतर-बाहर कई चक्कर लगाये, और कौवों की कायँ-कायँ सुनती रही । सुबह से वह

चकोरी

नहाई ही नहीं थी। वह बड़े आईने के सामने बैठ गई। एक सप्ताह से बाल तक धोने का समय ही न मिला था। उसने सोचा, कि वह बाल धो ही डाले...! चोटी खोल कर वह आईने में अपने बालों को देखने लगी...ये बाल कैसे हैं ? बुरे तो नहीं ..अच्छे हैं ..बहुत अच्छे हैं.. अगर बालों की एक लट इस जगह हो तो ? या एक काकुल चोटी की पकड़ से मुक्त रह कर गालों पर लहराती रहे तो ?...उसने कंधी उठाई...उसकी कमीज़ के सब बटन खुले थे। उसने हाथ उठाया तो गले का कुछ भाग भी ऊपर को उठ गया...वह घबरा कर इधर-उधर देखने लगी। अम्मी सो रही थीं। उमरू घर पर नहीं था। होंठ दाँतों तले दबा कर वह देर तक बैठी रही।

फिर वह स्नान घर में नहाने के लिये गई। वह चुप थी, कुछ संतुष्ट थी, कुछ बेचैन-सी थी। स्नान घर की दीवारों पर साबुन के फेन के छींटों-से अजीब-अजीब आकृतियाँ बन गई थीं, जिनसे परियाँ, जंगल, पहाड़, नदी और भीलें सब कुछ बना हुआ था। वह देर तक उन आकृतियों की ओर देखती रही। उसने पहले कभी उनकी ओर ध्यान ही न दिया था। किन्तु अब जैसे-जैसे वह विचार करती, उन बेदंगी रेखाओं की नई आकृतियाँ बनती जाती थीं। खिड़की के पास जिस जगह साबुनदानी पड़ी रहती थी, साबुन की भाग वह जाने से लम्बी रेखायें ऐसी दिखाई पड़ती थीं, मानो सफेदे के वृक्ष तने खड़े हों। वह कुछ देर उनकी ओर देखती रही...फिर उसने कमीज़ उतार दी। खिड़की के पट तनिक से खुले थे। उनमें से आँगन के कोने में खड़ा हुआ पपीते का पेड़ दिखाई पड़ रहा था। दो पपीते पक गये थे। गोल-गोल, चिकने। बाहर से कड़े, अन्दर से नर्म। रंग भी कितना आकर्षक था। कम-से-कम ये दोनों तो इस योग्य थे कि इनको तोड़ लिया जाता। वृक्ष के बड़े पत्ते हिल रहे थे। जब पत्ते हिलकर इधर-उधर हो जाते तो धूप खिड़की के नारङ्गी रङ्ग के शीशों में से हो कर भीतर आ

मैं जरूर रोऊँगी !

जाती और उसके सुन्दर गौर वर्ण कन्धों पर झिलमिलाने लगती । उसके शरीर की त्वचा का रङ्ग नारङ्गी रङ्ग में धुल-मिलकर नया रूप धारण कर लेता ।

मुमताज का इम्तहान खतम हो गया ।

अन्तिम परचा खतम होते ही उसने वापस जाने की तैयारी शुरू कर दी । उसके अब्बा ने हिदायत कर दी थी कि इम्तहान के बाद तुम लौट आना । उसकी जो छोटी-बड़ी चीज घर के भीतर पड़ी रह गई थी वह उमरू एक-एक करके मर्दाने में ले गया । उसका तौलिया, कोई गिरा पड़ा रुमाल या टाई या पिन—प्रत्येक चीज उमरू बड़ी निर्दयता से उठा के लिये जा रहा था । उस समय वह छोटे पैमाने पर 'चंगेज खॉ' बना हुआ था । फिर उसे टोंगा लाने के लिये भेजा गया । इस बीच अब्बा के निर्भीक, ऊँचे और आनन्दपूर्ण ठहाके सुनाई देते रहे । टोंगा आने पर सामान रक्खा गया और फिर टोंगा चर-चूँ करके चला गया । गुड़हल के बच्चों के पास से होता हुआ पक्की सड़क की ओर घूम गया ।

और निजहत...

पेपर वेट

वह कितना प्रसन्न था। आखिर छुब्बीस वर्ष की आयु भी क्या होती है ! उसे तरक्की देकर अब बैंक का मैनेजर बना दिया गया था। अहा ! उसकी प्रसन्नता का भला कौन अनुमान कर सकता था। वह दफ्तर से घर उड़ कर पहुँचा। जब वह 'मदन मेन्शनज' के आँगन में घुसा तो सहसा उसके होठों की मुस्कान लोप हो गई। उसकी पत्नी आज फिर ड्राइंग-रूम की खिड़की खोले ठीक उसके सामने काउच पर बैठी थी...उसने फरहत को अनेक बार मना किया था कि इस प्रकार खिड़की खोल कर न बैठा करे। सामने के फ्लैट पर सम्भवतः कालिज के कुछ विद्यार्थी रहते थे, जो अक्सर ताक-भाँक करते रहते थे। फरहत की आयु

मैं जरूर रोऊँगी !

मुश्किल से बीस साल की होगी। काश्मीरी माँ की बेटी थी। कौन था, जो उसे बेपर्दा अपने सामने पाये और फिर मन मसोस कर न रह जाये। और विद्यार्थी बड़े भले बनते थे। कभी कोई बदतमीजी न करते थे। परन्तु उसका विचार था कि वे जरूर ताक-भाँक करते होंगे। यदि वे सहन में ग्वाले से भी बातें करते तो उसे यही सन्देह होता कि फरहत की ओर चार दृष्टि में देख रहे हैं। और यदि वह फरहत को समझाता तो वह कहती, 'देख लेंगे तो मेरा क्या बिगाड़ लेंगे। क्या मैं अन्दर दम घोट कर मर जाऊँ ?' और जब वह बहुत खफा होता तो कहती, 'अच्छा, आगे नहीं बैठूँगी'... परन्तु बीसियों बार वायदा करने के बावजूद आज फिर वहाँ बैठी थी।

वह भारी कदमों से सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। उसका फ्लैट दूसरी मंजिल पर था। रास्ते में वह सोचता जा रहा था कि आखिर इसका क्या इलाज हो। दरवाजे पर पहुँच कर उसने द्वार खटखटाया। भीतर से रस में डूबी हुई आवाज़ आई—“चले आइये, दरवाज़ा खुला है।”

उसके कानों में पत्नी का मधुर स्वर गूँज रहा था। वह इस माधुर्य से अनायास आनंदित हो गया। अतएव, जब उसने अन्दर कदम रक्खा तो पत्नी पर एक दम बरस पड़ने का खयाल भी कमजोर पड़ गया।... किन्तु इसका यह मतलब नहीं था कि वह पत्नी के इस कार्य को और अधिक समय तक सहन करने पर राजी था। वह आज दो टूक फैसला कर देना चाहता था।

उसने हैट उतारा और बेपरवाही से घुमाकर कुर्सी पर फेंक दिया। फिर टाई को गिरह ढीली करते हुए उसने खिन्न दृष्टि से पत्नी की ओर देखा। परन्तु वह डबल रोटी के टुकड़े काटने में व्यस्त थी। उस समय वातावरण ऐसा था कि यदि वह पैतरा बदल कर हँसने-खेलने लगता तो भी कोई हर्ज न था। आज खुशी का मौका भी था। किन्तु अब वह इस बात पर तुला हुआ था कि इस मामले में अधिक दील न देगा।

वह मुँह फेर कर दूसरी खिड़की के सामने खड़ा हो गया और पतलून के दाँनों सिरों को पकड़ कर ऊपर की ओर खींचा। उसकी कमर पतली थी और कूल्हों का उभार भी नाम मात्र का ही था, नीचे को ढलक-ढलक जाती थी। फिर वह उलट-पलट कर अपने हाथों को देखने लगा। उसके हाथ भी छोटे-छोटे हलके-फुलके से थे। उँगलियाँ पतली और नाजुक! एक तो उसमें यह बड़ी कमी थी कि तेंवर मर्दाना नहीं थे। न उसकी आवाज़ भारी और रोबदार थी। यही कारण था, कि चाह वह कितने ही गुस्से की हालत में हो, देखने वाले पर उसका जरा भी रोब न पड़ता था।

खिड़की के सामने खड़ा-खड़ा वह उँगलियाँ चटकाता रहा। एक बार फिर माथे पर बल डालकर और भवें तान कर पत्नी की ओर देखा। किन्तु वह बच्चों की सी तन्मयता के साथ अपने कार्य में व्यस्त थी। यह भी एक बड़ी भारी कठिनाई थी। आखिर वह बच्चा ही तो थी। उसे इशारों और संकेतों से कुछ पता न चलता था। वह मूर्ख न थी। बस, उसके स्वभाव में बच्चों का सा भोलापन था। यदि कोई बात कहो तो बड़े भोलेपन से वह स्वयं कोई सवाल पूछ बैठती। उसका जवाब दो, तो फिर कोई सीधा-सादा सवाल कर बैठती। पर अब वह केवल लड़की न थी। शादी हुए लगभग एक वर्ष हो चुका था, परन्तु उसे इस बात की भी कुछ खबर नहीं थी कि पुरुष किन भूखी नजरों से सुन्दर-सुन्दर स्त्रियों को देखते हैं। उसे यदि यह बात समझाइये तो बस एक ही जवाब देती—‘देखते हैं तो देखने दीजिये...।’

उसने जब देखा कि फरहत का ध्यान उसकी ओर नहीं है तो उसने मुँह फेर लिया और सोचने लगा कि अब बात-चीत कैसे शुरू करे। यदि वह उसकी ओर देख लेती तो उसे मालूम हो जाता कि वह खफा है। अब वह समझ रही होगी कि पति कपड़े बदल रहा है। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा था, वैसे वैसे खफा होने और नाराज़ी प्रकट करने की सम्भावना कम होती जा रही थी। वास्तव में भगड़ा तुरन्त शुरू हो

मैं जरूर रोऊंगी !

जाना चाहिये था । इस तरह सोच कर खफा होने में कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं किया जा सकता । अतएव, उसने और अधिक देर करना उचित न समझते हुए पत्नी की ओर पीठ फेर ली, और कहा—“फरहत !”

फिर वह अपने स्वर के विषय में सोचने लगा कि सचमुच इससे उसका हार्दिक रोष प्रकट होता है या नहीं । किन्तु वह कोई निर्णय न कर सका ।

“जी !” फरहत की आवाज़ से यह प्रकट नहीं होता था कि उसे किसी असाधारण बात का अनुभव हुआ है ।

अब उसने निश्चय किया कि उसे बड़े नाटकीय ढंग से घूम कर उसकी आँखों में आँखें डाल देना चाहिये और उसे देर बिलकुल न करनी चाहिये । परन्तु जल्दी के यह मानी भी नहीं कि उसके चेहरे पर क्रोध या नाराज़ी के भाव ही न प्रकट हों । इस सोच-विचार में कुछ देर भी हो गई वह घूमा तो चेहरे से भाव तो बिलकुल ठीक प्रकट हो रहे थे, किन्तु हड़बड़ी में उसे वह जोशीले शब्द भूल गये जो उसे उस मौके पर कहने चाहिये थे । दो-चार क्षणों तक तो वह चुपचाप पत्नी की आँखों से आँखें मिलाये रहा किन्तु शब्द न मिलने के कारण वह चेहरे के भावों की तीव्रता को न बनाये रख सका । वह जानता था कि अब उसे कुछ-न-कुछ कहना चाहिये । उसने कहा—“फरहत ! आज तुम फिर खिड़की में बैठी हो ?”

यह सुनकर फरहत ने बड़े भोलेपन से दाँतों तले जीभ दबाई और खिड़की से जरा हट कर दूसरी कुर्सी पर जा बैठी । वह सोचने लगा कि फरहत कहीं मोटी तो नहीं हो रही है । उसे पतली औरत पसन्द नहीं थी । वह जरा गदराये हुए शरीर वाली औरत को अधिक पसन्द करता था । इस समय फरहत का शरीर आदर्श शरीर था । किन्तु अब उसे और अधिक मोटा होने की आवश्यकता नहीं । आज उसके हाथ और पाँव

मेंहदी से रंगे हुए थे। सुबह उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया था। उसके शरीर की रंगत पर मेंहदी का रंग खूब खिलता था...

पति को चुपचाप घूरते देख फरहत ने कहा—“अब तो मैं खिड़की से हट गई हूँ।”

उसे सहसा ध्यान आया कि उसे खफा होना चाहिये और इस भगड़े का सदैव के लिये अन्त कर देना चाहिये। लेकिन कैसी कठिनाई आ पड़ी थी। फरहत को भूल का अनुभव तक नहीं। तब फिर उसे इस भूल से रोका कैसे जाय ? आज कल की लड़कियाँ सातों आसमानों तक की खबर रखती हैं। एक उसकी पत्नी ही थी कि बस लड़कपन क्या, बचपन तक छोड़ती ही न थी। सूरत देखो, बातें सुनो, गति-विधि का अध्ययन करो, क्या मजाल जो उसे गहरे सोच विचार की हवा तक लगी हो। अभी तक जेली और क्रोम खाने की शौकीन है। बन्दर-बंदरिया का तमाशा देखती है। यदि कहीं कोई बुद्धू पति मिल गया होता तो आटे दाल का भाव मालूम हो जाता।

फिर उसने सोचा—यह नई रोशनी का युग है। मुझे अपनी पत्नी के मनोविज्ञान का गहरा अध्ययन करना चाहिये। तभी उसे सीधे रास्ते पर लाया जा सकता है। अतएव एक गहरे विवाद के लिये तैयार होकर उसने कहना शुरू किया “देखो फरहत ! मेरे कहने से तुम हट गई हो। लेकिन सवाल यह है कि तुम वहाँ बैठती ही क्यों हो ?”

फरहत ने अपने नाखूनों की सुखों को देखते हुए कहा—“मैं तो यों ही बैठ जाती हूँ। अन्दर रोशनी कम होती है। इधर रोशनी भी खूब है और खिड़की खोल देने से हवा भी आती रहती है...”

“तुम हवा का बहाना करती हो हमेशा...” फिर उसने सोचा कि यह ‘बहाना’ शब्द ठीक नहीं यहाँ पर। इसके तो यह मानी हुए कि मुझे फरहत के चाल-चलन पर सन्देह है। हालाँकि चाहे कुछ भी हो, फरहत के चरित्र पर सन्देह नहीं किया जा सकता।... “मेरा मतलब यह है कि

मैं जरूर रोऊँगी !

बार-बार इस बात को दोहराती हो । मैं कहता हूँ, कि दूसरों को देखने का बहाना मिल जाता है, और वे तुम्हें देखते रहते हैं ।”...फिर उसने सोचा कि फरहत कहेगी, अगर देखते है तो मेरा क्या बिगाड़ लेंगं... “देखो न, दुनिया की जवान नहीं पकड़ी जा सकती...अब यह नाखूनों का देखना बन्द करो...जो मैं कहता हूँ, वह भी तो सुन लिया करो ध्यान से...”

“मैं सुन तो चुकी इतनी बार...”

इस पर उसे बड़ा तैश आया,—“अगर सुना होता तो अमल न करतीं...”

“मैं तो हमेशा ध्यान से सुनती हूँ ।”

“तो क्या कह रहा था मैं ?”

फरहत ने आँखें झपकाते हुए लाड़ से मुँह फुलाकर कहा— “आप कह रहे थे कि दुनिया की जवान पकड़ी नहीं जा सकती ।”

“हाँ, तो मैं...”

फरहत उठकर उसके निकट आ गई और उँगलियाँ बढ़ाकर बोली— “लाइये, मैं आपकी जवान पकड़ लूँ...”

“खुदा की कसम मैं मार बैटूँगा...इतना भी तो समझो कि जब तुम खिड़की खोल कर सामने जा बैठती हो, तो दूसरे क्या समझेंगे ?”

“तो अब वहाँ कौन बैठा है...?”

“गुड़ खुला पड़ा हो तो मक्खियों को आते देर लगती है ?”

“आती हैं मक्खियाँ तो आया करें । हमें डर है किसी का...?”

“हाँ, तुम तो यही कहोगी—लोग इस तरह बात को नहीं दालते ।”

“तो वह क्या कहते हैं ?”

“कहते क्या हैं ? यही कि औरत की अपनी खाहिश है कि लोग उसे देखें । नहीं तो खाहमखाह खिड़की में क्यों आकर बैठे ।”

“तो आपका मतलब है कि मेरा दिल चाहता है कि लोग मुझे देखा करें...।”

“तौबा है...भई मैं नहीं कहता, लोग कहते हैं...”

“आपने किसी को कहते सुना ?”

“फिर वही बात...भई मुझसे कहने की किसी की हिम्मत भी है। लेकिन मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि आखिर भली औरतों...”

वह चुप हो गया। फरहत एक फूल बालों में उड़स कर शीशे में उच्चक-उच्चक कर देख रही थी कि कैसा लगता है। इस प्रकार देखते-देखते मुँह फेर कर उसे सम्बोधित कर बोली— “आप चाय नहीं पियेंगे ? आज सलाइस नमकीन अंडों में तले हैं...”

“और मैं जो बात कह रहा था, तुमने बीच ही में काट दी...”

“मैंने कब काटी बात ? आप खुद ही चुप हो गये। मैं सम्झी बात खतम हो गई।”

वह थक कर कुर्सी पर बैठ गया। उँगलियों से कनपटियाँ टबाने लगा।

“क्या सर में दर्द है ?” फरहत ने परेशान होकर पूछा। उसने सिर हिला कर इनकार किया।

“तो चाय मँगवाऊँ ?”

“नहीं, मैं चाय नहीं पियूँगा।”

“वाह, कैसे नहीं पियेंगे ?” यह कह कर दोनों हाथ पीछे किये, वह मटक-मटक कर आगे बढ़ी। उसकी आँखों में नटखटता नाच रही थी।

अब बड़ा नाजुक समय आ रहा था। अब बस फरहत उसको गुदगुदाने ही वाली है। गले में बाँहे डालकर लटक जायगी। परन्तु वह अपनी गम्भीरता बनाये रखना चाहता था। वह जल्दी से उठ खड़ा हुआ और इस ढंग से, जैसे उसने उसकी ओर देखा ही न हो, रुखाई

मैं जरूर रोऊंगी !

से बोला—“अच्छा, जल्दी से मंगवा लो । मुझे बहुत जरूरी काम से बाहर जाना है ।”

नौकर चाय ले आया । चाय पीते समय उसने अपनी गम्भीरता को बनाये रखा । मन-ही-मन वह सोचता रहा कि फरहत को कैसे समझाये । चाय खतम होने पर उसने तौलिये से मुँह पोंछते हुए फरहत की ओर गहरी नज़रों से देखा और कहा—“फरहत ! असल बात यह है कि तुम अपनी हरकतों से मुझे बहुत दुःख पहुँचाती हो । मैंने तुम्हें प्यार से समझाया, खफा हुआ, डाँटा-फटकारा भी । लेकिन तुम न जाने किस मिट्टी की बनी हुई हो ...।”

इतने में नौकर ने खबर दी कि रशीदा की बहन मिलने आई हैं । यह सुन कर फरहत के चेहरे पर प्रसन्नता की लहर सी दौड़ गई । उसकी मुद्रा से प्रकट होता था कि वह मन में भगवान को बहुत-बहुत धन्यवाद दे रही थी...उमसे पीछा छुड़ा कर वह जनाने में चली गई ।

फरहत का इस ढङ्ग से विदा होना उसे बिलकुल पसन्द न आया । वह दार्शनिक की भाँति सोचने लगा कि विवाहित पुरुष का सुख अधिकतर उसकी पत्नी पर निर्भर करता है । वे भी कैसे सुनहरे दिन थे जब वह कुँआरा था । इसी प्लैट में वह अकेला रहता था । यार-दोस्त जमा होते थे । अवकाश का प्रत्येक क्षण मौज-शौक में बीतता था । दुःख और चिन्ताएँ तो पास न फटकते थे । उस समय प्रसन्न रहना बिलकुल अपने बस में था । अब पत्नी से पाला पड़ा था । वे अलबेले दोस्त भी विदा हो गये और बी बी घर की रानी बन बैठी । रात को घर आने में जरा सी भी देर हो जाय तो जवाब तलब करती, रूठ जाती, बल्कि ठुनकने लगती ।...अब उसका खुश रहना पत्नी के हाथ में था और पत्नी को इसका जरा भी खयाल न था । जब कभी अत्यधिक गुस्से की हालत में उसे मारने पर तुल भी जाता तो फिर सोचने लगता कि पत्नी के शरीर के किस भाग पर चपत मारे...और वह कोई निश्चय न कर पाता...

उसकी कितनी इच्छा थी कि फरहत से उसके सम्बन्ध अच्छे रहें । किन्तु, उसने तो मानो उसे न समझने की कसम खा रखी थी । ओफ, किस बेपरवाही से उठ कर चली गई हरामजादी...रशीदा की बहन से मिलने के लिये ।

उसे अपने आप पर दया आने लगी । वह कितना बेवस था । आज की शाम बेकार जाने पर उसका मन बलकुल ही टूट गया । उसका विचार था कि मैनेजर बन जाने की खुशी में फरहत को जेकब की दूकान की जेली और क्रीम खिलाऊँगा । वह कितनी खुश होगी और चटोरी बिल्ली की तरह उँगलियों तक चाटने लगेगी ।...पर कमबख्त ने खुद ही काम बिगाड़ दिया । आपस में प्रेम और सहयोग से जीवन बिताने का जितना तीव्र भाव उसके अपने मन में था, यदि फरहत के मन में उस भाव की तीव्रता उसकी अपेक्षा दसवाँ भाग भी हो, तो भी आपस के सम्बन्ध बहुत मजबूत हो सकते हैं । परन्तु वह यों समझने वाली नहीं । यदि कल को वह मर जाय तब अभागिनी को उसकी क्रूर मालूम हो ।

अपने मरने के खयाल से उसे बहुत कुछ शान्ति मिली । फरहत के सुन्दर चेहरे पर फैले हुए बालों, उसकी सुख नाक और हृदय विदारक चीखों की कल्पना से उसके हृदय को सांत्वना मिली... और फिर उसकी आँखों में आँसू आ गये ।

वह मेज पर टाइम-पीस के निकट खड़े हुए ताँबे के बारहसिंघे को हाथ में उठा कर देखने लगा ।

फरहत रशीदा की बहन से हँस-हँस कर बातें कर रही थी । अपने गति की मानसिक स्थिति से बेखबर कैसे मजे से गप्प लड़ाने में व्यस्त थी । फिर सहसा एक विचार उसके मन में बिजली की भाँति कौंध गया...वह घर से चला जाय ।

ऐसे स्थान पर जहाँ किसी को पता न चले और फिर वहाँ से न तौटे...। मृत्यु की अपेक्षा यह विचार अच्छा था । मरना कठिन था

मैं जरूर रोऊँगी !

और यों चले जाना आसान भी था और परिणाम करीब-करीब मृत्यु के बराबर ही प्रभावशाली हो सकता था। उसने सोचा, कल सुबह सूर्योदय से पहले...बल्कि साढ़े चार बजे वाली गाड़ी पर वह सवार हो जायगा, और फिर कभी नहीं लौटेगा। सबेरे-सबेरे जब फरहत जागेगी तो इधर-उधर भागी-भागी फिरेगी। नौकर से पूछेगी, तार दिलवायेगी, पागलों की भाँति चिल्लायेगी। उस समय वह न जाने कहाँ पहुँचा होगा।

यह विचार सही था। रशीदा की बहन रात साढ़े नौ बजे तक बैठी रही। बल्कि फरहत ने जान-बूझ कर ही बैठाये रक्खा होगा।...यह सोचकर उसे और भी गुस्सा आया। उसके चले जाने के बाद, फरहत ने खाने के लिये कहलवा भेजा। उसने इनकार कर दिया। फिर मालूम हुआ कि उसने अकेले ही भोजन कर लिया है। इस पर उसे गुस्सा तो बहुत आया। परन्तु, खैर कोई हर्ज नहीं। अब वह उससे सब बातों का बदला लेगा। फिर नौकर से पता चला कि फरहत सोने की तैयारी कर रही है और उससे कहलवा भेजा ! उसने कह दिया कि काम कर रहा हूँ।

अब उसने सोचा कि जाने की तैयारी अभी से कर लेनी चाहिये। उसने नौकर भेजकर अन्दर से अपना सूटकेस मंगवाया...नौकर सूट-केस ले आया तो उसने पूछा— “बीबी ने कुछ कहा तो नहीं ?”

नौकर बोला — “कुछ नहीं कहा।”

उसने सूट-केस तैयार कर लिया, बिस्तर बाँध दिया और नौकर को हिदायत कर दी कि सुबह जल्दी ही उठना होगा और टाँगा लाना होगा।

इसके बाद उसने तीन बजे का एलार्म लगा दिया।

नौकर चला गया। चारों ओर शान्ति छा गई। छोटे फ्रेम में उसकी पत्नी की तस्वीर रक्खी थी। वह उसे देखता रहा। फिर उसने पत्नी को अन्तिम चिट्ठी लिखने की ठानी। काराज और कलम लेकर बैठ गया।

“जान से प्यारी फरहत.....!” यह ठीक नहीं, केवल ‘डियर फरहत’ काफी होगा। बल्कि सिर्फ ‘फरहत’ लिख दिया जाय तो और अच्छा होगा।

फिर उसने एक दर्द भरा मजबून बनाया—

“मैं तुम से तंग आकर जा रहा हूँ, और हमेशा के लिए जा रहा हूँ। मुझे तलाश करने की कोशिश न करना। अब मैं नहीं मिल सकता। देखो, शौहर को खुश न रखने का यही नतीजा निकालता है...। इत्यादि-इत्यादि।”

चिन्ही लिखकर उसने मेज पर इस ढंग से रख दी कि उस पर तुरन्त नज़र पड़ सके। रात किसी प्रकार सोफे पर सोते जागते काटी। घड़ी का एलार्म बजते ही उसने नौकर को जगाया। स्वयं मुँह धोकर कपड़े पहनने लगा। नौकर से कहा कि टाँगा ले आओ और सामान रख दो। फिर उसने कमरे पर अन्तिम निगाह डाली। कुछ क्षणों तक इधर-उधर घूमता रहा, फिर सोने के कमरे के पास से गुज़रा तो उसने दरवाजे को यों ही थोड़ा सा धक्का दिया, कि देखें दरवाज़ा खुला है या नहीं। दरवाज़ा खुला था। इसका मतलब है कि उसकी पत्नी उसकी प्रतीक्षा करती रही थी।

उसने अन्दर की ओर भाँका। बड़ी खिड़की के पास उसकी पत्नी सोई पड़ी थी। उसने सोचा कि अन्तिम बार पत्नी को देख लिया जाय।

उसकी पत्नी बस बच्चा ही थी। सोते में रजाई इधर-उधर खिसक जाती। परन्तु उसकी नींद ऐसी गहरी थी कि उसे कुछ पता तक न चलता। अतएव उस समय भी रजाई खिसक गई थी।

वह पास पहुँचा तो खिड़की के शीशों में से आने वाली चाँदनी में उसने देखा, उसकी पत्नी अति सुन्दर दीख रही थी। कवियों के कथनानुसार उसके होंठ खुले थे। उनमें से दाँत मोतियों की लड़ी के समान

मैं जरूर रोऊँगी !

दिख रहे थे । बन्द आँखें मानों दो पैसों से ढँकी हुई हों । गले के बटन भी खुले थे और कमीज़ भी इधर-उधर खिंच गई थी और...

उसने रजाई के दोनों कोने पकड़ कर ऊपर को खींचे । रोज रात को उसे इस प्रकार करना पड़ता था । ऐसा न हो कि बेचारी सुबह सर्दी से अकड़ जाय । रजाई ऊपर खींचकर उसने उसके सिरे फरहत की बगलों में दबा दिये जिसमें कि शरीर हर तरह से ढँका रहे । फिर वह जाने के लिये मुड़ा । “मैं जा रहा हूँ प्यारी फरहत, मेरी जान से ज्यादा अजीब ।”...उसने सोचा कि जाने से पहले उसके माथे को धीरे से चूम ले । उसे इस बात का पता न चलेगा...और वह ओवरकोट को समेट कर धीरे से नीचे को झुका । फरहत की नींद की माती आँखें आधी खुलीं । उसने पति को देखा, तो होठों पर अस्पष्ट-सी मुस्कान खिल उठी । पति ठिठका । फरहत ने नींद ही में अंगड़ाई के लिये बाँहें उठाईं और बड़े प्यार-भरे ढंग से लिपटा कर धीरे से पति को अपनी ओर खींचा । और वह इच्छा न होते हुए भी खिंच गया...फरहत ने उसे जूतों सहित रजाई में छिपा लिया ।

नौकर की आवाज़ आई—“जी, सामान टाँगे में रख दिया है ।”

फरहत ने नींद में झूबी हुई आवाज़ में कह दिया—“सामान उतार कर ऊपर ले आओ ।”

और वह कुछ न बोला ।

वेश्या

बर्फ रुई के गाले की तरह धीरे-धीरे गिर रही थी ।

पहाड़ों, वृक्षों, मकानों, उन दोनों के कंधों और उनके पीछे-पीछे आने वाले कुलियों की पीठ पर लदे हुए सामान पर बर्फ ही बर्फ । शरीर को छेदने वाली अत्यन्त सर्द हवा चल रही थी ।

उनके सफ़र की आखिरी मंजिल थी । वे देर तक बातें करके थक चुके थे । अब उन्होंने बोलना भी बन्द कर दिया था । बस, खामोशी से थके-माँदे धीरे-धीरे क़दम उठाते हुए आगे बढ़ रहे थे । उनके पीछे कुली बाग़ के नीचे दबे हुए पसीने में तर हो रहे थे, और उनकी साँस धौंकनी की तरह चल रही थी ।

मैं जरूर रोज़गी !

दोनों अच्छे कपड़े पहिने थे । एक तो लम्बे कद और छरहरे बदन का सुन्दर नौजवान था, दूसरा कुछ नाटा और कुछ मोटा तथा भद्दा-सा । पर दोनों के चेहरे से उनकी प्रतिभा टपकती थी ।

सुन्दर नौजवान ने ओवरकोट की जेब से हाथ निकाल कर अपनी नाक को छुआ—“अरे, मेरी नाक कितनी टंडी है, जैसे बर्फ की डलो, बलकुल सुन्न, जैसे है ही नहीं !”

दूसरा हँसने लगा । अपनी नाक की नोक पर पानी की काँपती हुई बूँद पोछते हुए कहने लगा—“हम कहाँ ठहर रहे हैं ?”

जवाब मिला—“सेवाय होटल में ।”

सेवाय होटल की चकरी सीढ़ियों के दोनों ओर बिजली की रोशनी हो रही थी । लट्टू हरे रंग के थे । धुन्ध में ऊपर को उठी हुई मेहराब पर गहरे नीले रंग के अँगरेज़ी अच्छर चमक रहे थे । हरे रंग की रोशनी आगे सड़क तक फैली हुई थी । उस समय बड़ी घमा-घमी थी । सुन्दर कपड़ों में लड़कियाँ, स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े इधर-उधर आ-जा रहे थे । पहाड़ी टट्टुओं और रिक्शाओं की खूब रेल-पेल थी ।

एक आदेशात्मक आवाज़ गूँजी—“कुली !”

वहीं खम्भे के पास से तीन-चार कुली घट ओढ़े उठ खड़े हुये । उन्होंने अपनी-अपनी बीड़ी बुझाकर जेब में ठूँस ली ।

एक लाल रंग का गठीले, किन्तु नाटे कद का व्यक्ति हाथ बढ़ाकर बोला—“दिश शाइड झीज् ।”

दोनों युवक आगे बढ़े । सुन्दर नवयुवक ने ओवरकोट के उलटे हुए कॉलर में से मुँह निकाल कर पूछा—“इज् इट सेवाय ?”

“अश शर !”

नवयुवक ने ‘अश शर’ कहने वाले की ओर नज़र उठाकर देख । उसके चेहरे पर चमक थी । उसके माथे और कनपटियों पर नीले और लाल रंगों का जाल-सा बुना हुआ था । नवयुवक बोला—“आर...यू ?”

वेश्या

“अश शर, आई ऐम दि गाइड आफ दिश होटेल ।”

होटल के कुलियों ने सामान उठा लिया, और वे तीनों उजली-उजली सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। होटल का भोंतरी भाग बर्फ के कारण साफ नहीं दिखाई पड़ रहा था। दोनों ने घूमकर देखा, कोहरे में धुँधली-धुँधली बर्फ से ढँकी इमारतें, टिमटिमाते हुए खोए-खोए से लैंप और रिकशा-कुलियों की काली-काली फुर्तीली टाँगे। होटल के पास से अपेक्षाकृत एक अंधेरी-सी गली जाती थी।

गली के भीतर रोशनी बहुत ही मद्धिम थी। बर्फ को छूकर आने वाली हवा में सड़े हुए तेल की गन्ध मिली हुई थी। उस रहस्यपूर्ण गली में एक दबी हुई सी आवाज़ उठी—

अब्र छाया है, मेह बरसता है,

जल्द आ जा कि जी तरसाता है।

वे बराबर आगे बढ़ते जा रहे थे। नवयुवक ने गाइड से पूछा—
“यह गली कैसी है ?”

गाइड ने ठिठकते हुए जवाब दिया — “कुछ नहीं, इधर यो ही डान्सिंग गर्ल्स रहती हैं !”

डान्सिंग गर्ल्स !... ‘जल्द आ जा कि जी तरसता है... जल्द आ जा’... धीरे-धीरे आवाज़ मर गई, किन्तु उसके प्रतिध्वनि देर तक सुनाई पड़ती रही। पहाड़ की प्रत्येक गुफा आवाज को दुगने दर्द के साथ वापस लौटा रही थी !

दूसरे दिन तीसरे पहर को सुन्दर नवयुवक बाहर निकला। उनका कमरा ऊपर की मंजिल पर था। नीचे होटल का विस्तृत सहन। उसने नीचे सहन में भाँक कर देखा। आज बहुत रौनक थी। आज चूँकि आकाश पर बादल छाए थे और मौसम सुखद था, अतः लोग टोलियाँ बनाए, खुले सहन में ही बैठे आनन्द लूट रहे थे।

मैं जरूर रोऊंगी !

एक और एक भारी-भरकम सिख रईस दोहरी पगड़ी बाँधे चाय पीने में व्यस्त था। उससे ज़रा हट कर एक नौजवान ईसाई लड़की बड़े गमले के पास खड़ी नौकर से बात कर रही थी, और सूरत-शकल में बिलकुल खूबूर से मिलती-जुलती थी। टॉर्गे लम्बी और तगड़ी, छातियाँ नोकदार और बेतहाशा उभरी हुईं, मुँह लम्बूतरा-सा, रंग अधिक पकी हुई ईंट की भाँति, किन्तु गाल सुखीं मलने के कारण खूब लाल हो रहे थे। परे मैनेजर फोन के पास बैठा, अपनी अधखुली आँखों से उपस्थित लोगों को देख रहा था। उसकी दृष्टि सहन के परले सिरे तक पहुँचती थी, जो रंग-बिरंग के दुपट्टों और पगड़ियों के कारण फूलों की एक क्यारी बना हुआ था।

अन्दर से आवाज़ आई—“देवेन्द्र ! देवेन्द्र !”

युवक ने उच्च स्वर में उत्तर दिया—“हाँ !”

“अन्दर आओ भई, तुम्हें एक चीज़ दिखायें।”

“आया !”

वह वापस जाने ही लगा था, कि साथ के कमरे से एक तेरह-चौदह वर्ष का लड़का निकला, जिसके पाँवों पर घुँघरू बाँधे हुए थे। वह रेडियो की गत पर पाँव को बराबर हरकत दे रहा था। और उसके सिर पर दोपल्सी टोपी, आँखों में काजल और कुर्ते के साथ तंग पैजामा कुछ विचित्र सी कैफ़ियत पेश करता था। टोपी में से निकले हुए सीधे ब्रश के समान बाल उसकी चिकनी कनपट्टियों तक पहुँचते थे।

अन्दर से एक साँवले रंग के आदमी ने बाहर निकल कर कहा—
“कूलहे भी तो हिलाओ, देखो यों, इस जगह हाथ रखकर, यों। बस, अब हिलाओ कूलहे, और उँह, अब भटका दो।”

देवेन्द्र के साथी ने दरवाजे में से सिर बाहर निकाल कर कहा—
“भई, आओ भी,” और जब देवेन्द्र अन्दर गया, तो उसका साथी हाँफते

वेश्या

हुए कहने लगा—“ओह गई, बस गई। कब से बुला रहा हूँ सरकार को। यह साथ के कमरे में हमारे पड़ासी, जानते हो कौन हैं ?”

“शायद नाचने वालों की कोई पार्टी है। अभी-अभी एक लड़का बाहर खड़ा नाच रहा था।”

“ओहो, तो मुझको गलतफ़हमी हुई। मैं समझा किसी भले घर की बहू-बेटियाँ हैं। सचमुच आजकल दोनों में पहिचान करना करीब-करीब नामुमकिन है।”

देवेन्द्र कवि था। बलदेव उसका साथी। देवेन्द्र को जीवन की अधिकाँश सुविधाएँ प्राप्त थीं। वह एक धनी पिता का पुत्र था। यों तो एक बेकार आदमी की हैसियत से उसको कवि बनने का पूरा अधिकार प्राप्त था, किन्तु सच यह है कि वह कवि बनने की पूरी योग्यता भी रखता था। बलदेव उसका प्रशंसक था, और हर मौके का साथी। बलदेव की उससे ऐसी ही मित्रता थी, जैसी बास्वेल की जान्सन से थी। उसके मुँह से निकला हुआ प्रत्येक वाक्य, उसकी कही हुई प्रत्येक कविता को लिख लेना और उसकी प्रवृत्ति का अध्ययन बलदेव का सब से महत्वपूर्ण व्यसन था।

थोड़ी देर बाद नौकर चाय का ट्रे उठाये अन्दर दाखिल हुआ। बलदेव ने चाय बनानी शुरू की।

देवेन्द्र ने नौकर से पूछा—“क्यों भई, यह बगल का दरवाज़ा बन्द क्यों है ?”

“हुज़ूर, मुसाफ़िर अपनी इच्छा से इसे बन्द रखते हैं। कुछ लोग इसको खोलना पसन्द नहीं करते। इधर कुछ है भी नहीं। एक गली-सी है।”

देवेन्द्र ने बलदेव की ओर अर्थपूर्ण निगाहों से देखते हुए कहा—“वेशक ! दृश्यों का आनन्द लेने के लिए तो सामने का द्वार खोल देना ही काफी है।”

मैं जरूर रोऊँगी !

नौकर चेला गया ।

देवेन्द्र ने उठकर बगल का दरवाजा खोल दिया । “ओहो, अन्न राज खुला, तो यही रूप का बाजार है । खूब !”

वह दरवाजे के पास ही रज़ाई लपेट कर कोच पर बैठ गया । बलदेव ने चाय की प्याली बढ़ाई ।

देवेन्द्र ने चाय पीते हुए कहा—“क्यों भई, हम पहाड़ पर इस शर्त पर तो नहीं आये थे कि चाय पी-पीकर सीना जलायें ? कुछ याद है ?”

बलदेव ने मुस्कराकर चाय का ट्रे एक ओर को सरका दिया और एक लम्बी गरदन की बिल्लोरी सुराही और दो सुन्दर प्याले मेज पर रखकर घन्टी बजा दी । नौकर भीतर आया । बलदेव ने देवेन्द्र की ओर देखा । देवेन्द्र ने आर्डर दिया—“चार अण्डों का आमलेट, भुनी हुई मछली और तली हुई कलेजी ।

बादलों ने घाटियों से ऊपर उठना शुरू किया । तीव्र वायु बहने लगी हिमाच्छादित चोटियाँ धुन्ध में विलीन हो गईं । रेडियो पर सितार की गत बजने लगी ।

देवेन्द्र ने दो-चार पेग पिये, और रज़ाई उतार कर अलग रख दी । उसके गाल तमतमा उठे । आँखों में लाल डोरे पड़ गये । शराब का हल्का-सा नशा उसे बहुत सुरूर पहुँचता था । कभी हृदय को मस्तिष्क के राज्य से मुक्त कर देने में वह कुछ अधिक हर्ज नहीं समझता था । उसके मस्तिष्क में पाप और पुण्य की यह कल्पना भी नहीं थी, जो साधारण लोगों के मन में होती है । मनुष्य की असमर्थता का जितना तीव्र अनुभव उसको था, वह बहुत कम लोगों के हिस्से में आया है । वह भलाई पर विश्वास रखता था, और एक पूर्ण और शान्तिमय जीवन को धर्म । जीवन को बनाना और सँवारना और उसमें से दुख के अनावश्यक अंश को हर सम्भव उपाय से दूर करना वह अपना

वेश्या

कर्त्तव्य समझता था। मनुष्यों के बीच धर्म और राष्ट्र के भेद से वह घृणा करता था। उसके विचार ऊँचे थे, मस्तिष्क तेज और हृदय उत्साही।

वह कोच से उठा और ओवरकोट खूँटी से उतार कर कन्धों पर डाले हुए बगल के दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ। हलकी-हलकी फुहार पड़ रही थी। उसके चौड़े माथे पर उलभे हुए बालों में पानी की बूँदे काँपने लगीं। बलदेव मेज़ पर तबला बजा-बजाकर गा रहा था—“सावन के नज़ारे हैं...!”

देवेन्द्र ने हाथ के इशारे से उसको अपने पास बुलाया। दोनों दरवाज़े में से गरदन बढ़ा कर देखने लगे। सामने की इमारत के बड़े हुए छज्जे पर नीचे की तरफ़ एक औरत की सूरत दिखाई पड़ी। बलदेव ने धीरे से कहा—“सुन्दर !”

“जानते हो, यह भी ‘डान्सिंग गर्ल्स’ में से एक है।”

“सुन्दर !”

देवेन्द्र दोनों हाथ पीठ पर बाँध कर इधर-उधर टहलने लगा। बलदेव अपनी कुरसी पर जा बैठा। वह देवेन्द्र की तरफ़ देखने लगी, जो एकाएक गम्भीर होकर बेचैनी से इधर-उधर घूम रहा था। फिर वह दरवाज़े के आगे जाकर रुका और कहने लगा—“उस औरत की छतियाँ लज्जाजनक ढग से उभरी हुई हैं।”

बलदेव चुप रहा। वह फिर टहलने लगा। बलदेव ने एक पेग और बढ़ाया। देवेन्द्र खामोशी के साथ पी गया।

इतने में पानी ज़ोर से बरसने लगा। बड़े सहन से लोगों के उठ-उठ कर भागने और फ़र्नीचर के खसकने और गिरने की आवाज़ें आने लगीं।

एकाएक देवेन्द्र रुक गया। वह सिपाही की भाँति तनकर खड़ा हो

मैं जरूर रोऊँगी !

गया । उसकी नज़र नंगा पर्वत की धुँधली हिमाच्छादित चोटियों पर जमी हुई थी ।

बलदेव ने चुपके से नोटबुक उठा ली ।

थोड़ी देर के मौन के बाद देवेन्द्र ने कहना शुरू किया—“तुम शायद अनुमान न कर सको कि इस समय मुझे कैसी मानसिक पीड़ा हो रही है—इनका अस्तित्व मानवता का अपमान है । ये इस संसार की गन्दगी हैं । दोस्त, इनकी भी कैसी जिन्दगी है !”

बलदेव की पेन्सिल चल रही थी । वह ऐसे अवसर पर किसी महत्वपूर्ण बात की प्रतीक्षा कर रहा था ।

देवेन्द्र ने बात का सिलसिला जारी रखते हुए कहा—“इस कमरे पर दृष्टि डालो, हर चीज़ में सलीका, सफ़ाई । ये कोच, ये कुरसियाँ, ये पलंग, ये मेज़ और फिर सफ़ाई देखो ! दरी, कालीन कितने साफ़-सुथरे हैं । सिर्फ़ एक चीज़ ऐसी है, जिसकी आर हम कभी ध्यान नहीं देते । वह चीज़ है यह रद्दी की टोकरी, मेज़ की बग़ल में । फलों के छिलकों, फटे-पुराने काग़जों से भरी । क्या इस टोकरी ही की कृपा नहीं कि कुल कमरा साफ़ दिखाई पड़ता है ।”

बलदेव ने धीरे से कहा—“बेशक !”

“बहुधा हम सड़क पर जाते हुये जब सड़क के किनारे पड़े हुए गन्दगी से भरे टीन के पास से गुज़रते हैं, उस समय अपनी नाक रुमाल से ढाँक लेते हैं । लेकिन क्या यह सत्य नहीं कि यदि वह टीन वहाँ पर न होता, तो वही गन्दगी सड़कों पर फैली नज़र आती । यह भी जिन्दगी की ट्रेजडी है...इनमें से कितनी औरतें हैं, जिन्होंने यह पेशा अपनी खुशी से शुरू किया होगा, कितनी स्त्रियों ने इस कीचड़ से निकलने के लिये हाथ-पाँव न मारे होंगे । वे कौन थे, जिन्होंने इनको ऐसा जीवन बिताने पर बाध्य किया—और फिर अब जब कभी हम उनके पास से गुज़रते हैं, तो नाक रुमाल से ढाँक लेते हैं ! दोस्त, एक बार फिर भले

वेश्या

घर की बहू-बेटियों और इन बाजारू औरतों में तमीज़ करने की कोशिश करो ।”

देवेन्द्र की रगों का तनाव कम हो गया । नदी चढ़कर उतर गई ।

धीरे-धीरे कदम उठाते हुये देवेन्द्र दरवाज़े के पास जा खड़ा हुआ । बादल का टुकड़ा बरस कर उड़ गया था । उसने वेश्या पर नज़र जमा दी और फिर मानो अपने-आपसे कहना शुरू किया—

‘हे देवी !

हे संयम की मूर्ति !

मुझको अपने पाँव छू लेने दे ।

इन्हें पीछे मत हटा ।

तू वह घाव है —

जिसे सदैव बनाये रखने के हम इच्छु हैं, और जिसे ताज़ा रखने के लिये हम अपनी काली और शान्तिपूर्ण रातों की नींद हराम कर डालते हैं ।’

बलदेव ने पेन्सिल रख दी और गिलास उठा कर बची हुई शराब बड़े-बड़े दो घूंटों में चढ़ा गया ।

एकाएक अन्धकार से तीव्र प्रकाश में आने पर देवेन्द्र की आँखें चौंधिया गईं । कुछ शराब का नशा भी था, क्योंकि बलदेव के साथ रात भीगने तक शराब का दौर चलता रहा । इतने में वह अन्दर दाखिल हुई ।

देवेन्द्र गौर से उसकी ओर देखने लगा । साधारण लोग उसको रंडी के नाम से पुकारते थे । नाम कितना घृणित है, यद्यपि सूरत के लिहाज़ वह देवियों को मात करती थी । उसने सरलता से हँस कर कहा—“आदाब अर्ज़, आप आ गये । मुझको विश्वास था कि आप आयेंगे ज़रूर ।”

देवेन्द्र का जी चाहा कि वह भाग जाय ।

मैं जरूर रोज़ूँगी !

“आपके एक साथी दोपहर के समय भाँक रहे थे । वह कौन थे ?”

देवेन्द्र एक कुमारी कन्या की भाँति लजा गया । उसका चेहरा कानों तक लाल हो गया । लड़खड़ाते हुये स्वर में बोला—“वह मेरे दोस्त हैं ।”

“दोस्त ! खूब ! तो वह क्यों नहीं आये ?”

“वह सो रहे हैं ।”

औरत ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा ।

देवेन्द्र भँपकर बोला—“मैं उनसे कहकर नहीं आया, बल्कि उनकी चोरी से आया हूँ । मैंने जब आपको देखा तो...”

“ओह ! यह बताने की ज़रूरत नहीं । मैं जानती हूँ कि आपके दिल पर क्या बीती होगी । शायद आप भूल रहे हैं, हमारे पास बहुत लोग आते हैं ।”

देवेन्द्र शराब के नशे में था ! यद्यपि वह अपने को रोके हुये सँभल-सँभलकर बातें करने की चेष्टा कर रहा था, फिर भी वह यह बात न छिपा सका कि वह शराब पिये हुये है ।

जितनी देर तक वह मौन रहा, वह उसको देखती रही । उसे वह पसन्द था, बहुत पसन्द ।

देवेन्द्र कुछ परेशान-सा हो गया । उसे और कुछ न सूझा, वह बोला—“मैंने आज तक किसी औरत को छुआ नहीं ।”

औरत यह सुनकर एकदम हँसने लगी । वह हँसते-हँसते दोहरी हो गई, उसे अपना पेट पकड़ना पड़ा । किन्तु देवेन्द्र गम्भीर था, और हैरान ! उसकी गम्भीरता उस अवसर पर और भी हास्यास्पद प्रतीत होती थी । उसका सिर चकरा रहा था । औरत चाहती थी कि जवाब दे । बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर उसने कहा—“अच्छा, तो इसमें कोई हर्ज नहीं ।”

देवेन्द्र अपनी दृष्टि में स्वयं को भूख अनुभव कर रहा था । वह उस औरत को अपनी नीयत के नेक होने का विश्वास दिलाना चाहता था,

वेश्या

पर उसको कुछ सूझना ही न था—“शायद आपको विश्वास नहीं आया। मैं कुँवारा हूँ।”

औरत ने बड़ी मुश्किल से गम्भीर बनकर कहा—“मैं आप पर विश्वास करती हूँ।”

देवेन्द्र बगलें झाँकने लगा, फिर सँभलकर बोला—“मुझमें और आपके पहले ग्राहकों में बहुत अन्तर है।”

औरत ने उसके सुन्दर नख-शिख का निरीक्षण करते हुए उत्तर दिया—“मैं आपकी यह बात भी मानती हूँ। मैं आपसे पूरे तौर पर सहमत हूँ।”

फिर उसने मन में निश्चय कर लिया कि वह इस दिलरुबा से एक दमड़ी वसूल न करेगी। बड़ी अम्माँ को अपने पास से रुपये दे देगी।

देवेन्द्र ने उत्साह पाकर बात छोड़ी—“आज शाम के वक्त जब मैंने आपको पहली बार देखा, तो मुझको आपसे बड़ी हमदर्दी पैदा हो गई।”

औरत ने उस नव-उम्र अल्हड़ छाँकरे को दयापूर्ण दृष्टि से देखा और जवाब दिया—“मुझको भी आपके साथ बहुत हमदर्दी है।”

औरत उसको इस प्रकार सम्बोधित कर रही थी, जैसे वह कोई कल का बच्चा था। उसको औरत के बात करने का यह ढंग मारे डालता था।

वह अपने विचार एकत्र करने लगा। उसकी सोचने की शक्ति मर चुकी थी। उसने छत की ओर देखना शुरू किया। वह सुधार का जोश और लम्बी-चौड़ी बातें गायब हो रही थीं। उसने मरे हुए स्वर में कहना शुरू किया—“आप लोगों का जीवन भी कितना दुःखमय है। आपका दिल तो बहुत कुदता होगा?”

नौजवान औरत के चेहरे पर उदासी छा गई—“आप ठीक कहते हैं। आप जैसे कोमल हृदय, दयालु दुनिया में हैं कहाँ? कम से कम

मैं जरूर रोऊँगी !

शुभको तो वास्ता पड़ा नहीं ।” यह कहकर औरत ने धरती पर नजरें गड़ा दीं । उसके नेत्र सजल हो गये ।

देवेन्द्र ने सोचा, कितनी सुन्दर है यह लड़की...बेचारी...! वह उसके निकट चला गया । औरत कुछ आगे को झुक गई । वह समझा शायद वह गिरने को है । उसने उसको सँभाला । वह उसके सीने से लग गई । हिचकियाँ लेते हुए बोली—“कभी-कभी तो ऐसे लोग आते हैं कि उनकी मूर्छों मेरे नथुनों में घुस जाती हैं । दम घुटने लगता है ।”

फिर उसने देवेन्द्र की ओर देखा “तुम कैसे अच्छे लड़के हो !”

देवेन्द्र के शरीर में बिजली की-सी लहरें दौड़ रही थीं । उसके शरीर की शक्ति नष्ट होती जा रही थी । औरत थी कि उससे लिपटती जा रही थी । देवेन्द्र पर दोहरा नशा छा रहा था । उसने बड़ी चेष्टा के बाद एक झूबते हुए आदमी की तरह हाथ-पाँव मारते हुए कहा—“तुम मेरी माँ हो !”

वेश्या ने उसके गालों पर हाथ फेरते हुए कहा —“जान पड़ता है, कुछ ज्यादा पी गये हो ।”

देवेन्द्र के मस्तिष्क में धुन्ध-सी छाई हुई थी । मानो वह बादलों में उड़ा जा रहा हो । वह कुछ कहना चाहता था, पर वह कह न सकता था । वह एक शून्य में बेबसी के साथ हाथ-पाँव मार रहा था । उसने अपने मस्तिष्क पर जोर दिया । उसने अनुभव किया कि यदि वह चाहे, तो कुछ कह सकता है । पर साथ ही यह भी अनुभव हुआ कि वह कुछ नहीं कहना चाहता । वह बचाव भी नहीं करना चाहता था । अब तक उसने किसी स्त्री को स्पर्श तक नहीं किया था । अनायास उसके मुँह से निकला—“तुम मेरी माँ हो !”

वेश्या हँस पड़ी । उसके रस-भरे ओठों की ओर देखती हुई बोली—“क़रीब हो जाओ...तुम देवता हो !”

वेश्या

देवेन्द्र ने उसको गले से लगाकर, ऐसे स्वर में, मानो वह किसी और ही लोक से बोल रहा हो —“तुम देवी हो !”

वेश्या नीचे तक उसको बिदा करने के लिये आई। उसने बड़े ही प्रेम के साथ उसकी ओर देखा। उसके ओवरकोट के बटन बन्द किये। उसका नोटों से भरा हुआ बटुआ, जो पलंग पर गिर पड़ा था, उसकी अन्दर की जेब में रखते हुए बोली —“बटुआ सबसे अन्दर की जेब में रख लो। यह बदमाश मुहल्ला है, सँभल कर जाना। कोई रास्ते में निकाल न ले।”

यह कहकर वह चुप हो गई, फिर मुस्कराकर उसके होठों से होठ मिला दिये—“अच्छा, अब बिदा ! और गाहक मेरी राह देख रहे होंगे...। कोट के कॉलर दोहरे करके छाती ढाँप लो, हवा न लग जाय !”

देवेन्द्र कॉपते हाथों से कॉलर ट्योलने लगा। उसकी यह हालत देखकर वेश्या ने अपने हाथ से उसके कॉलर दोहरे कर दिये। उसके गाल पर प्यार से एक हलकी-सी चपत जमाते हुये बोली—“तुम बिलकुल लड़के ही हो; तभी तो इतने अच्छे लगते हो।”

शीतल पवन के तीव्र झोंके चल रहे थे। देवेन्द्र कॉलर दबाये, कन्धे सिकोड़े, जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता चला जा रहा था। उसके पाँव नर्म-नर्म बर्फ में धँसे जाते थे। इधर-उधर दूकानों पर मछलियाँ तली जा रही थीं, और लोग कम्बल लपेटे बाही-तबाही बक रहे थे।

एक कुरूप स्त्री सामने शीशा रखे बैठी थी। देवेन्द्र ने एक उड़ती सी दृष्टि उस पर डाली और जल्दी से मुँह फेर लिया। मन में सोचने लगा —कुछ सूरतें कितनी कुरूप होती हैं...शक्ल चुड़ैल की, मिज़ाज परी का !

ठीक जिस समय वह उसके सामने से गुज़र रहा था, स्त्री ने नज़र

मैं जरूर रोऊँगी !

उठा कर उसकी ओर देखा । उसने कुछ भौंप कर आईना देवेन्द्र के सामने कर दिया और कहने लगी—“देखो तो कैसे सुन्दर हो । यह ऐना अपनी सूरत के लिये मैंने अपने सामने नहीं रक्खा । यह तुम जैसे हसीनों के लिए है ”

देवेन्द्र के शरीर में एक कँपकँपी-सी पैदा हो गई । वह जल्दी से आगे बढ़ गया । वह पीछे से चिल्लाती रही —“ऐना देखो; हा, हा, ऐना देखो ”

देवेन्द्र की जल्दी और ररडी के आवाज़ों कमने पर इधर-उधर के लोगों ने ठहाके मारे और खुश होकर टोपियों हवा में उछालीं ।

सबह जब देवेन्द्र की आँख खुली तो उसने देखा कि बलदेव चाय पी रहा है । उसने भी बिस्तर ही में बैठ कर चाय पी ।

फिर वह काशमीरी चादर लपेटे उठा और बगल वाले दरवाज़े के सामने जा खड़ा हुआ । आसमान पर बादलों का नामो-निशान तक न था । तेज़ और चमकीली धूप में पहाड़ों की बर्फ़ से ढँकी चोटियों बर्फ़ से लदे हुए सफेद वृक्ष, बर्फ़ से ढँकी हुई छतें चमक रही थीं । दूर ढालों पर पशुओं के झुण्ड घास की खोज में इधर-उधर घूम रहे थे । रिकशा के अड्डे पर कुली बगलों में हाथ दबाये, ठिठुरे खड़े थे ।

देवेन्द्र ने यह सुन्दर दृश्य देखकर पाँव फैलाये और हाथ ऊपर को उठा कर एक लम्बी जम्हाई ली । फिर उसे धीरे-धीरे रात की घटनायें याद आने लगीं । उसके मन में ऐसी कशमकश शुरू हो गई, मानो वह किसी भूले-भटके स्वप्न को याद करने की चेष्टा कर रहा हो । चाय पी लेने के बाद भी वह शराब का स्वाद अपने मुँह में अनुभव कर रहा था ।

बलदेव ने नोटबुक खोली और मुस्कराकर देवेन्द्र की ओर देखा और कहा—“देवेन्द्र ! तुमने कल कमाल कर दिया । सुरू में आकर तुमने वह-वह बातें कहीं कि बस ! वेश्या पर तुम्हारे विचार मैंने नोट

वेश्या

कर लिये हैं। जितनी बार मैं इसको पढ़ता हूँ, सिर धुनता हूँ। ज़रा मुनो—

हे देवी !

हे संयम की मूर्ति !!

मुझको अपने पाँव छू लेने दे।

इन्हें पीछे मत हटा।

तू वह धाव है

जिसे सदैव बनाये रखने के हम इच्छुक हैं, और—

जिसे ताजा रखने के लिये हम अपनी काली और शान्तिपूर्ण रातों की नींद हराम कर डालते हैं।”

देवेन्द्र का मस्तिष्क कुछ-कुछ साफ होने लगा। उसने गरदन बढ़ाकर, नीचे की ओर भाँक कर देखा। सामने ‘वह’ बैठी सिगरेट पी रही थी। उसकी हालत खराब थी। बाल उलझे हुए, कपड़े अस्त-व्यस्त, काजल आँखों के गिर्द फैला हुआ, फिर भी वह अत्यधिक सुन्दर दिखाई पड़ती थी। हाँ, उसकी छितियाँ लज्जाजनक ढंग से उभरी हुई थीं।

इतने में वेश्या की नज़र उसकी ओर उठी। उसने चित्ताकर्षक ढंग से मुस्कराकर उसकी ओर देखा और आँख मारकर बड़े नाज़ के साथ सिगरेट का एक लम्बा करा खींचा और मुँह उठाकर धुआँ नाक के रास्ते उड़ा दिया।

रक़ीब

जब पिता जी का तबादला चूहड़काने से अमृतसर हो गया तो हमारे सारे घर को अतीव प्रसन्नता हुई ।

चूहड़काना छोटा-सा क़स्बा था । वहाँ दिलचस्पी का कोई सामान न था । पिता जी सरकारी हस्पताल के डाक्टर इन्चार्ज थे, इस लिये घर के सब लोग भी उनके साथ बँधे थे । मैं तो पहले ही अमृतसर में पढ़ता था । मौज उड़ाता था । केवल खाने का कष्ट था । मेरे भाई और बहनें मेरे सौभाग्य पर ईर्ष्या करते थे कि मैं अमृतसर जैसे बड़े नगर में रहता हूँ । अमृतसर मुझे भी पसन्द था । किन्तु अच्छा भोजन न मिलने के कारण मेरे पेट में अक्सर गड़बड़ रहती...मुझे भी अत्यधिक प्रसन्नता हुई जब मैंने सुना कि पिता जी की बदली अमृतसर में हो गई है ।

कुईन्स रोड पर हमें एक शानदार कोठी का आधा भाग मिल गया। आधे में मकान मालिक रहते थे, शेष आधे में हम। कहने को तो हमारे हिस्से में आधी कोठी ही आती थी लेकिन हमारे जैसे दो कुटुम्ब उसमें बड़े मजे में रह सकते थे। कोठी के इर्द-गिर्द खुले दालान, हरी-भरी बाड़, सुन्दर क्यारियाँ, पेड़ों और गुलाब के पौदों के झुंड खड़े अजब बहार दिखाते थे।

जब प्रारम्भिक कठिनाइयाँ हल हो गईं और हमारे पाँव जम गये नां मेंने आते-जाते इधर-उधर निगाह दौड़ानी शुरू कर दी और दो-तीन दिन के बाद ही सामने की कोठी में रहने वाली लड़की से आँखें लड़ गईं। पहले तो केवल उच्यती-सी दृष्टि उधर डाल लेने तक ही इस प्रेम को सीमित रखा गया, किन्तु जब धीरे-धीरे संकोच दूर होने लगा तब एक दिन बड़ी बहन से खुल कर यह कहना पड़ा—“आपा, आप चुपचाप घर में पड़ी रहती हैं। इधर-उधर किसी से दोस्ती गाँठिये, किसी को सहेली बनाइये।”

परन्तु आपा आवश्यकता से अधिक समझदार थीं। खैर, यहाँ तक तो मुझे भी कोई आपत्ति नहीं थी। किन्तु इसके साथ ही उनकी स्पष्टवादिता मुझे बिलकुल पसन्द नहीं थी। बोलीं—“क्यों, किसी से आँख लड़ गई है क्या तुम्हारी?”

“लीजिये, और सुनिये! मैं क्या कह रहा हूँ और आप क्या नतीजा निकाल रही हैं। न जाने आप मुझे क्या समझे बैठी हैं? आप ही के भले की बात कह दी तो आप लगीं...”

“अरे मेरे भोले भैया!” वे मुझे चुमकारने लगीं—“ना भई, हमसे भूल हुई। हाँ, तो वह क्या बात थी जो तुम मेरे भले के लिये कह रहे थे?”

उनकी बातों से नटखटता साफ़ ज़ाहिर थी। पर मैं ऐसा शर्माने वाला नहीं था कि मुँह में आई बात न कहूँ। बोला—“मैं तो कह रहा था कि आप अकेली घर पर पड़ी रहती हैं। हमारा क्या है, हम सारे दिन

मैं जरूर रोऊँगी !

कालेज में रहते हैं, शाम को सैर करते हैं, हर तरह के बन्धनों से आजाद हैं। जहाँ जी चाहे जायें। सिर्फ आपकी हालत देख कर तरस आता है और इसीलिये आप को यह सलाह दी थी कि कोई न कोई सहेली बना डालिये।”

“कहाँ भैया, इस उजाड़ में तो किसी की सूरत तक दिखाई नहीं देती, सहेली किसे बनायें ?” आपा ने बन कर जवाब दिया।

“आपा, गलती आप ही की है। अगर कभी कोठी से बाहर निकलिये तो देखिये, कैसी-कैसी लड़कियाँ मौजूद हैं यहाँ पर।”

“यह कैसी-कैसी से क्या मतलब है तुम्हारा ?”

“यही कि पढ़ी-लिखी, समझदार, लायक।”

“भई, हमें तो आज तक ऐसी कोई लड़की दिखाई ही नहीं दी।”

मैंने भाँप लिया कि आपा मुझे घेर-घार कर मेरे मुँह से मेरी पसन्द की लड़की का नाम सुनना चाहती हैं। जब उन्हें बता दिया तब उन्होंने खूब उल्लू बनाया...लेकिन आखिर बड़ी बहन थीं। मेरी खातिर आशा से बहनापा गौंठ लिया। और आशा तो जैसे इशारे की राह देख रही थी। दिन में कई-कई फेरे करने लगी। मेरा कमरा भी अलग और बाहर की ओर था। हर आने-जाने वाले को मेरी खिड़की के पास से होकर गुजरना पड़ता था। आशा भी जितनी बार आती, मैं उसके दर्शन करता। इशारों के बाद बात-चीत और बात-चीत के बाद छेड़-छाड़ तक नौबत जा पहुँची।

आशा बड़ी चंचल और निर्भीक लड़की थी...और यां तो प्रत्येक व्यक्ति को अपने रूप के बारे में कुछ न कुछ गलत फ़हमी होती है और सम्भव है, मुझे भी हो, किन्तु इन सब बातों के बावजूद मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मैं उस समय काफ़ी सुन्दर समझा जाता था और इसी कारण लड़कियों से मेल-जोल बढ़ाने में मुझे बहुत कम संकोच होता था, और मुझे अपने आप पर बड़ा भरोसा था।

हम दोनों के प्रेम ने बहुत शीघ्र प्रारम्भिक मंजिलें तय कर लीं और अन्त में हम अन्तिम मंजिल तक जा पहुँचे ...।

बड़ी बहन मेरी सब बातों से परिचित अवश्य थीं, किन्तु उन्हें इस बात का पता नहीं था कि हम सप्ताह में एक आध बार आशा की कोठी के गैरेज में भी मिलते हैं। इस चोरी पर कभी-कभी मेरी आत्मा मुझे धिक्कारती किन्तु कौन मुनता है इन बातों को। मैंने बहुत जल्द इस पर काबू पा लिया और चैन से गुज़रने लगी।

उन्हीं दिनों जयन्त से भेंट हुई। जयन्त हमारे मालिक मकान का लड़का था। मैं बी० ए० आनर्स की तैयारी कर रहा था और वह मनो-विज्ञान का विषय बहुत पसन्द करता था और इस विषय का बहुत अच्छा विद्यार्थी समझा जाता था। न जाने इस प्रकार के विषयों से दिलचस्पी रखने वालों की सूरतें ही ऐसी होती हैं या वह यों ही रूप बनाये रहते हैं। उसके चेहरे से मनहूसियत टपकती थी। मिर बहुत बड़ा था किन्तु उस पर उगे हुए बाल बहुत कम और बहुत महीन थे उसके बालों की बनावट ऐसी थी कि उन्हें किसी प्रकार भी समेक नहीं जा सकता था। कुछ बाल खड़े हैं कुछ पड़े हैं, कुछ एक ओर को झुके हुये हैं, कुछ माथे पर गिरे हुए हैं। लगभग बिना बाल की भवों के नीचे उसकी पीली आँखें सामने बैठे व्यक्ति को इस प्रकार देखती थीं कि हृदय बैठ जाय। नाक ऊँची और मुँह का दहाना चौड़ा, जो खड़ की तरह खिंचकर कानों से नीचे की ओर झुक गया था। उसके कपड़े न केवल अच्छी तरह धुले नहीं होते थे बल्कि उसे उन्हें पहिनने तक का दंग नहीं आता था। बड़े बूढ़ों की तरह उसके हाथ में बड़ी न सही छोटी सी छड़ी अवश्य होती थी जिसे वह हर दम हाथ में या बगल में दबाये रखता। वैसे तो मेरा शरीर भी उस समय इकहरा था, किन्तु वह मुझसे भी अधिक दुबला पतला था। क्रद मेरी तरह लम्बा बल्कि मुझसे भी कुछ निकलता हुआ। जब वह बेदगोपन से क्रदम उठाता हुआ चलता तो देखने वाले को

मैं जरूर रोऊँगा !

यही शका होती कि बस गिरा, बस गिरा। पहले दिन जब मैंने उसे फाटक में प्रवेश करते और अपने कमरे की ओर इस अन्दाज़ से आते देखा, मानो हवा के झोंके उसे उड़ाये ला रहे हों, तो आश्चर्य हुआ कि यह कौन है, शायद पिता जी का कोई दोस्त है...किन्तु जब वह मेरे कमरे के सामने पहुँच कर रुक गया, तो मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया। और जब उसे इधर-उधर बेमानी दृष्टि से देखते पाया तो पूछा —“कहिये, आप किससे मिलना चाहते हैं ?”

उसने घूम कर मेरी ओर देखा फिर ऐनक थाम कर और भी ध्यान से मेरा निरीक्षण किया और अन्त में मुस्कुराने लगा। भाव हीन चेहरे पर जीवन के लक्षण दिखाई पड़े। वह बोला—“मैं आप ही से मिलने आया हूँ।” यह कह कर वह चुप हो गया। मैं राह देख रहा था कि वह कुछ और कहे किन्तु उसने मानो पहली सुना कर आँखों में यह कह डाला —‘अब बूझो तो जानें।’

ऊब कर मैंने कहा—“अन्दर आ जाइये न।”

वह कुछ कहे बिना मेरे कमरे में चला आया। कुर्सी पर बैठते ही बोला - “यह हो सकता है कि मैं कुछ देर तक इसी जगह बैठा रहूँ, लेकिन मैं महसूस करता हूँ कि पहले मैं यहाँ आने का मक़सद बताऊँ।”

यह कहकर फिर चुप ! कौन कहता है कि फ़िलाफ़ूर आधे पागल होते हैं ? मैंने मन ही मन कहा—‘नहीं, जनाब, अभी मतलब ज़ाहिर करने की जल्दी भी क्या है ?’

उसकी निगाहें चारों ओर घूम-घूम कर हर चीज़ की ओर सुस्त और रहस्यपूर्ण ढंग से देखती रहीं। अन्त में कहने लगा—“आप कल शाम मेरे घर पर चाय पीजियेगा। यह मेरी दरखास्त है, हुक्म नहीं। आशा है आप को यह तजवीज़ पसन्द आयेगी, हालाँकि पसन्द करने की कोई वजह है ही नहीं। फिर भी आपको इस पर कोई एतराज़ भी नहीं होना चाहिये, और आपको एतराज़ हो भी क्या सकता है। लेकिन इस

से मेरा यह मतलब हरगिज़ नहीं कि मैं आपकी आज़ाद राय में दखल दूँ। हो सकता है कि इस बात पर आपको रूसो का वह कथन याद आ जाय कि आदमी आज़ाद पैदा हुआ है लेकिन उसके पैर में ज़ख़ीर नज़र आती है। हालाँकि मेरा इस कथन पर विश्वास नहीं। सच मानिये, इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं कि मैं फ़ैसिस्ट हूँ। हाँ, इसके बारे में इतना...”

मैंने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया “जनाब मुझे मंज़ूर है।”

“क्या मंज़ूर है आपको?”

“वह जो आप चाय के लिए कह रहे थे।”

“कौन सी चाय?”

“आपने मुझे चाय की दावत दे है न घर पर।”

“ओह...यस यस...ख़ूब याद आया...हाँ, तो चाय...जी हाँ, तो आप पीने के लिए आइयेगा न?”

“ज़रूर!”

उसने अपने सिर पर हाथ फेरा और कुछ क्षणों तक मुस्कराता रहा। सम्भवतः कोई और बात सोचने लगा होगा। फिर बोला — “मैं साइकालोजी में एम० ए० का इम्तहान दे रहा हूँ।”

“अच्छा!” यद्यपि मैं यह भी कहने को था कि, जनाब, यह जताने की ज़रूरत ही क्या है, यह तो...”

“शायद आप भी पढ़ रहे हैं।”

“जी!”

“आप को फ़िलास्फी या साइकालोजी से कुछ दिलचस्पी है?”

“जी नहीं, अगर मुझे फ़िलास्फी से इतनी दिलचस्पी होती तो मैं इतनी जल्दी आपकी दावत मंज़ूर न कर लेता बल्कि कम से कम आपसे पूछता कि आप कौन हैं, कहाँ से तशरीफ़ लाए हैं, मुझे किस सिलसिले में चाय पर बुला रहे हैं और आपका घर कहाँ है?”

मैं जरूर रोजूँगी !

इस बात पर उस रोनी सूरत पर भी सचमुच हँसी आ गई । बोला — “हम लोग पड़ोसी हैं । आप हमारे मकान में रहते हैं इसी लिये वजह बयान करने की ज़रूरत नहीं समझी । और फिर शेख सादी ने फ़रमाया है...”

मैंने घबरा कर कहा — “माफ़ कीजिये । मुझे ज़रा अन्दर बुला रहे हैं । मेरी बहन इशारे कर रही हैं । आप दस पन्दरह मिनट इन्तज़ार कीजिये । मैं अभी वापस आता हूँ । अगर पन्दरह मिनट की जगह आध घन्टा या शायद एक घन्टा ही लग जाय तो आप बुरा न मानियेगा । आखिर हम पड़ोसी ही हैं और यह घर है भी आप ही का ।” यह दार्शनिक बात उसकी समझ में आ गई, बोला — “नहीं, मैं अब जाता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि कल आप जरूर आएँगे ।”

“जरूर, लेकिन कहीं आप यह न भूल जाइयेगा कि आप ने एक शरीफ़ आदमी को चाय पर बुला रक्खा है ।”

“ओह नो ! मैं अपनी अम्मा से जाते ही कह दूँगा । वह कल खुद ही याद करा देंगी...अच्छा, गुड ईवनिंग ।”

दूसरे दिन मैं उनके यहाँ चाय पर गया । घर के सब लोग बड़े प्रेम से मिले । उस दिन से न केवल हमारे घरानों का मेल-जोल बढ़ गया बल्कि हम दोनों के सम्बन्ध भी गहरे हो गए । जयन्त की बहनें, तो थीं किन्तु कोई भाई नहीं था । उसकी दर्शन के प्रति ही अधिक रुचि थी, इस लिये उसे कई प्रतिबन्धों से मुक्त कर दिया गया था । सोए हैं, कोई जगाने वाला नहीं । यदि टहलने पर गए तो टहलते चले गये । मौन हुए तो फिर किसी बात का जवाब हाँ नहीं और बकने को जी चाहा तो नौकरों से ही बहस शुरू कर दी चाहे घर के काम रुके पड़े रहें ।

पहले पहल मुझे कुछ उलझन सी महसूस हुई किन्तु, धीरे-धीरे हम में घनिष्टता हो गई । इसका एक कारण तो यह था कि जयन्त मेरी दोस्ती का इच्छुक था, मेरी उपेक्षा की कभी शिकायत ही नहीं करता था,

और यदि कभी मैं उसकी फ़िलास्फी की हँसी भी उड़ाता तो वह बुरा न मानता था । मुझे फ़िलास्फी से दिलचस्पी हो या न हो, किन्तु दूसरों की भौँति मुझ पर भी उसका रोव छा गया था । जब मैंने हर पहलू पर विचार कर लिया तो यह नतीजा निकाला कि जयन्त का व्यक्तित्व सत्रमुच कदर करने योग्य है, अतएव मैंने अनजाने ही उसे अपना दोस्त मान लिया ।

मित्रों में परस्पर समानता ही का व्यवहार किया जाता है किन्तु जयन्त की मुझ पर विशेष कृपाएँ थीं । होटलों में भोजन कराता, चाय पिलाता, सिनेमा के टिकट बड़े आग्रह से स्वयं पैसे खर्च करके खरीदता और फिर मेरी ही भौँति वह भी पक्का सैलानी था । यदि कोई बात कष्टप्रद थी तो वह उसका दार्शनिक मूड था, जो उस पर प्रायः हर समय छाया रहता...कभी-कभी मैं सोचता कि यह मुझ पर इतनी कृपाएँ क्यों करता है । लाख सिर मारने पर भी कोई कारण समझ में न आता, यही प्रकट होता था कि वह मुझे अपना बहुत ही प्रिय मित्र समझता है और मित्रों में खाना-पिलाना कारबारी ढंग से तो होना ही नहीं चाहिए । विशेष कर जयन्त को तो इस बात से बड़ी चिढ़ थी ।

उसके दार्शनिक स्वभाव और रहन-सहन को ध्यान में रख मैंने उचित समझा कि उसको खेल-कूद की ओर आकर्षित करके मनोविज्ञान का भूत उसके सिर से उतारा जाय और जब मेने बातों ही बातों में उससे इस बात की चर्चा की तो मुझे यह देख आश्चर्य हुआ कि उसने बड़े उत्साह से मेरे प्रस्ताव का समर्थन किया । हमारे यहाँ काफ़ी जगह थी । हमने बैडमिन्टन कोर्ट तैयार करने की योजना बनाई । अपने हाथों से धरती का टुकड़ा नापा, घास खोद-खोद कर चूने से लाइनें बनाईं, दोनों ओर बाँस गाड़े और उसी सन्ध्या को जयन्त ने भी आस्तीनें चढ़ा कर अपनी दुबली-पतली सूखी बाँहों का प्रदर्शन किया ।

जब हमने नियमित रूप से खेलना आरम्भ किया तो बड़ी बहन,

मैं जरूर रोऊँगी !

का जी भी चाहने लगा । सब आपस ही की लड़कियाँ तो थीं । मेरी बहनें थीं या फिर जयन्त की । बाद में फिर आशा को भी खेलने पर तैयार किया गया । आरम्भ में लड़कियाँ अलग खेलतीं और फिर लड़कियाँ और हम एक साथ ही खेलने लगे ।

एक संध्या को खेल समाप्त होने के बाद और तो चले गये किन्तु मेरी बड़ी बहन और उनकी सहेली मुक्ता लान में बैठी देर तक बातें करती रहीं । मेरी बहन अब बहुत चुस्त दिखाई पड़ने लगी थीं । मेरे मन में आई कि उन्हें बधाई दूँ । कहूँ कि आपा, देखा न खेल-कूद का तन्दुरुस्ती पर कितना अच्छा असर पड़ता है । अगर आप पदों की कायल हैं तो बड़ी खुशी से पदों कीजिये । लेकिन पदों में खेलना-कूदना तो जारी रखिये । देखिये तो फिर तन्दुरुस्ती कैसी शानदार हो जाती है...पर बहन आशा के बारे में कुछ कह रही थीं । मैं चौंका ।

“अरी, यही आशा के बारे में कहती हूँ ।”

“क्यों, कुछ गड़बड़ है क्या ?” मुक्ता ने पूछा

“गड़बड़-ही-गड़बड़ । अब तो आशा के नए आशिक पैदा हो रहे हैं ।”

मेरा हृदय धड़कने लगा...वह सौगन्ध खा-खाकर मुक्ता को विश्वास दिला रही थीं—“नहीं, भगवान कसम सच कह रही हूँ ।”

मैंने चाहा कि पूछूँ क्या बकती हो बहन, पर मुक्ता उनकी ही खुशामद कर रही थी—“अब नाम भी बता दो न ।”

वह रुकी, फिर आँखें नचाकर बोलीं—“यही हमारे फ़िलास्फ़र मिस्टर जयन्त !”

मन में आई कि बहन की इस खोज पर ज़ोर का ठहाका लगा दूँ... आशा और जयन्त ?

“तुम्हें वहम हो गया है ।” मुक्ता ने बहन से कहा—“कहाँ बेचारा फ़िलास्फ़र और कहाँ इश्क के ये भ्रंशद, दोनों में कोई जोड़ भी है ?”

वह बोलीं—“तो फ़िलास्फ़रां के पहलू में दिल नहीं होता क्या ? सिर से पाँव तक दिमाग ही दिमाग होता है क्या ?”

मेरे हृदय पर जैसे एकाएकी बिजली गिर पड़ी हो...इतनी हिम्मत न रही कि उनसे पूछूँ कि तुम्हारे पास क्या सबूत है आशा पर यह इलज़ाम लगाने का ।

जयन्त के बेढंगे क्रदम सारी रात मेरे दिमाग में धमाके मचाते रहे । रात भर यही सोचता रहा कि देखने में कैसा गम्भीर और भला ...बुद्ध दिखाई देता था, लेकिन बड़ा दिल फेंक निकला कमबख्त ।

मन में आई किसी बहाने शहर से बाहर ले जाकर कत्ल कर दूँ उसे । किसी को कानां कान खबर तक न होगी । मैंने कत्ल करने की विस्तृत योजना पर विचार किया । मेरी उँगलियों की पकड़ में आई हुई उसकी पतली गरदन वह बेचारा प्राण निकलने के समय बेब्रसी में हाथ पाँव मारने लगेगा । अन्त में वह बिलकुल ठंडा पड़ जायगा । मैं उसे किसी गढ़े में फेंककर उसके उपर पत्तियाँ बिखेर दूँगा.. आवेश में इसी प्रकार की कई और बेकार बातें सोचता रहा । लेकिन जल्द ही मुझे इस बात का अनुभव हो गया कि यह सब कुछ बेमानी है । अब मुझे उससे साफ़-साफ़ बात करनी चाहिये ।

छुट्टियाँ के दिन तो थे ही । दोपहर को भोजन के बाद मैंने उसे बुलवा भेजा । कुछ देर बाद देखा कि दूर ही से वह अपने खास अन्दाज़ में लहराता चला आ रहा है । सचमुच ही उसके चेहरे से मनहूसियत बरसती थी । हाँ, पिछले दिनों में वह मुझे अच्छा लगने लगा था । पर उस कमबख्त के मन में मैल जो भरा था । आखिर उसे प्रकट होना ही था । और वह उसके व्यवहार से प्रकट हो गया ।

वह सदैव की भाँति रोनी सूरत बनाए बड़ी बेतकलुफी से आराम कुरसी में धँस गया । फिर मोटा-सा सिगार सुलगा कर बोला—“कहो भई, कुछ खास काम है या यों ही बुलाया ।” यह कहकर उसने तीव्र

मैं जरूर रोऊँगी !

गंध का एक भभका छोड़ा। मुझे सिगार से नफ़रत है, किन्तु सिगरेट सुलगाने में कोई हर्ज नहीं समझता। मैंने जीभ पर लगे तम्बाकू के कणों को जोर से बाहर की ओर धूकते हुए कहा—“हाँ, खास काम से बुलाया है।”

उसने टाँगें उठा कर पाँव सामने की कुरसी पर जमा दिये। बोला—
“हूँ, तो फिर कहो।”

मैंने उस पर बहुत तीव्र आक्रमण करने की ठान रखी थी। रूखे स्वर में बोला—“जयन्त मैं बहुत मुँहफट आदमी हूँ। तुम्हारी तरह लाग-लपेट करना नहीं जानता। तुम्हें शायद यह याद हो, दोस्ती तुमने ही पहले की थी। जब मैंने दास्त की हैसियत से तुमको स्वीकार कर लिया, तो तुमने दास्ती के परदे में बड़ी नीचता का सबूत दिया। तुम फ़िलास्फ़र बनते हो। दुनिया भर के सवालियों पर राजनीतिज्ञों की तरह स्पीचें भाड़ते हो, लेकिन दर असल तुम बहुत घटिया दर्जे के आदमी हो। तुम्हें मालूम था कि मैं आशा से प्रेम करता हूँ और अब तुमने उस पर डोरे डालने शुरू कर दिये हैं। क्या तुम्हें अपने इस कमीने-पन पर शर्म नहीं महसूस होती?”

मैं चुप हुआ तो उसने थोड़ा रुक कर कहा—“तुम्हें कुछ और भी कहना है या सब गालियाँ दे चुके?”

मैंने मुँह से भाग उड़ते हुए कहा—“क्या मैं जान सकता हूँ, कि तुम आशा को मुहब्बत की नजरों से क्यों देखते हो?”

“हाँ, तुम जान सकते हो।” यह कह कर उसने घुमाकर कुरसी का रुख मेरी ओर कर लिया और फिर टाँगें फैलाकर सिगार के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। धुँआ छोड़ते समय जब वह होठ बढ़ा कर अपने लम्बोतरे मुँह को और भी लम्बोतरा बनाता था तब उसके गालों की हड्डियाँ और भी स्पष्ट हो जातीं, उनके नीचे की रेखाएँ और गहरी हो जातीं। दो-चार बार कश लगाने के बाद उसने इतमीनान से मेरी

आँखों से आँखें मिलाईं और कहा—“अब मैं तुमसे कुछ सवाल पूछूँगा। अगर तुम्हें दोस्ती का दावा है, तो सीधे-सादे जवाब देते चले जाओ।”

फिर उसने सिगार का गुल भाड़ा और बोला—“क्या प्रेम करने का हक सिर्फ तुमको ही हासिल है?”

मैं इसके उत्तर में एक लम्बा भाषण आरम्भ करने लगा था, परन्तु उसने इशारे से रोक दिया। बड़ी गम्भीरता से बोला—“देखो, तुम पहले ही स्वीकार कर चुके हो कि तुम्हें जो कुछ कहना था कह चुके, मैं थोड़े में जवाब चाहता हूँ, मेरा सवाल है, क्या प्रेम करने का सिर्फ तुमको ही हक है?”

“नहीं?”

“लड़कियों से प्रेम करने का कोई लाइसेन्स है, जो तुम्हारे पास है और मेरे पास नहीं? क्या तुम्हीं एक आदमी हो, जितने यह भावना विरासन में मिली है?”

“नहीं!”

“क्या आशा से तुम्हारा प्रेम सामयिक नहीं? क्या तुम उससे शादी करोगे? क्या अपने माँ-बाप की तरफ से तुम्हें इस बात की इजाजत मिल गई है?”

“नहीं, लेकिन...”

“नहीं लेकिन क्या...पहले मैंने उससे प्रेम शुरू किया। तुम्हारा फर्ज था कि तुम उसकी तरफ आँख उठा कर भी न देखते। तुम्हें यहाँ आये तो मुश्किल से जुमा-जुमा आठ दिन हुए हैं, और मैं बरसों से आशा की मुहब्बत में गिरफ्तार हूँ। और फिर तुम्हारे पास इस बात का क्या सबूत है कि तुम्हारे आने से पहले मुझे उससे मुहब्बत नहीं थी? क्या तुम यह समझ बैठे थे कि पड़ोस में रहने वाली ऐसी खूबसूरत लड़की को मैंने देखा भी न होगा?”

मैं जरूर रोऊँगी !

“हो सकता है कि फ़िलास्फी की धुन में...”

“चलो, तुम्हें यह ग़लत फ़हमी हुई कि फ़िलास्फी की धुन में मुझे उसका खयाल न आया होगा । लेकिन अब मैं तुम्हें साफ़-साफ़ बता देना चाहता हूँ कि मुझे उससे कई बरस से प्रेम है । अगर तुम सचमुच इस बात के कायल हो कि जो पहले प्रेम करना शुरू करे सिर्फ़ उसी को मुहब्बत जारी रखने का हक़ है तो फिर तुम्हें इस मुहब्बत से हाथ उठाना पड़ेगा ।”

आशा का प्रेम त्यागने के खयाल से मेरा हृदय बोझिल हो गया फिर भी मैंने अपेक्षाकृत कम जोशीली आवाज़ में कहा—“तो फिर तुमने मुझे पहले ही बता दिया होता ।”

“लेकिन दोस्त, मैं ऐसा क्यों करता ? मुझे तुमसे कोई जलन नहीं है । मैं तुम्हारी राह का कौंटा नहीं बनना चाहता था...”

“अब कौंटा ही तो बन रहे हो ।”

“बेवकूफ़ हो तुम ! भई, इतना तो सोचो मैं इतनी गहरी मुहब्बत को दिल से नोचकर परे क्यों कर फेंक सकता हूँ...यार, अफ़सोस की बात है कि आशिक़ बने फिरते हो पर इश्क़ के ए. बी. सी. से भी वाकिफ़ नहीं हो ।”

“लेकिन एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं ।”

“उँह ! यह पुरानी, पिटी हुई कहावत कहाँ से निकाल लाए । कौन कहता है कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं । मैं कहता हूँ कि एक म्यान में एक छोड़ चार तलवारें समा सकती हैं ।”

“वह कैसे ?”

“वह ऐसे कि हम अपनी निगाहों में ज़रा उदारता ले आएँ । देखो, मैंने तुम्हारी मुहब्बत की शुरुआत और फिर उसे फलते फूलते देखा, लेकिन मेरे मन में कोई मैल न था और चाहता तो उसे शुरू में ही रुकवा देता...इसे धमकी मत समझना...मुझे तुम्हारी वह गैरेज वाली

बात भी मालूम है, लेकिन मैंने तुम्हारा या आशा की इज्जत पर धब्बा नहीं लगने दिया। अगर गौर से देखो तो मेरा प्रेम तुम्हारे प्रेम से कहीं मजबूत और ऊँचा है।”

अब मैं उसके मनहूस चेहरे की ओर एक एक देख रहा था और वह इतमीनान से सिगार पी रहा था। “लेकिन जयन्त उसे तुमसे ज़रा भी प्रेम नहीं है। फिर इन बातों से क्या फ़ायदा?”

“उसे मुझसे प्रेम नहीं, पर मुझे तो है न उससे सच्चा प्रेम! और वह मेरे दिल की जलन को नहीं समझती, लेकिन तुम तो समझते हो। तुम्हें न मेरी दास्ती पर शक है, न मेरे प्रेम पर। इस लिये तुम पर जो जिम्मेदारी आती है उसका ध्यान रखो।”

मैंने हकलाकर कहा—“मैं...मैं...मैं क्या कर सकता हूँ?”

गैरेज के अंधेरे में तुम मुझे अन्दर भेज सकते हो। इतने अंधेरे में उसे क्या पता चलेगा कि कौन है। देखो भाई, मैं तुम्हारा सच्चा दोस्त हूँ। और इस दावे पर तो तुम्हें भी कोई शिकायत नहीं...तुमने मेरी प्रेमिका पर मेरे देखते-देखते डारे डाले, पर मैंने उफ़ तक नहीं की...अब आगे तुम खुद समझदार हो। मैं तो हमेशा सचाई को सामने रखकर कदम उठाता हूँ...।”

मैं चुप रहा। बुद्धि काम नहीं करती थी। उसने मुझे चुप देखकर भेद भरे स्वर में कहा—“आज गैरेज वाला प्रोग्राम है न तुम्हारा?”

मेरे मस्तिष्क में धुंध सी छाई हुई थी। न कुछ सोच सकता था, न बोल सकता था।

जयन्त ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—“यह दरखास्त है, हुकम नहीं। उम्मीद है कि तुम्हें यह सुभाव पसन्द आयेगा। हालाँकि पसन्द करने की कोई खास बात भी नहीं है। फिर भी तुम्हें एतराज़ भी क्या हो सकता है? लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं कि मैं तुम्हारी आज़ाद राय में नाजायज़ हद तक दखल देना चाहता हूँ। हो सकता है

मे जरूर रोज़ेंगी !

कि इससे तुम्हें रूसो का वह कथन याद आ जाय कि आदमी आजाद पैदा हुआ है लेकिन बंधनों में जकड़ा नज़र आता है । हालाँकि मैं इसका कायल नहीं हूँ...और इसका यह मतलब भी नहीं कि मैं फ़ासिस्ट हूँ । हाँ, इस कथन के बारे में इतना...”

×

×

×

उस रात हम गैरेज से कुछ दूर खड़े थे । आशा गैरेज में घुसा, तो जयन्त ने मेरे हाथ में सिगरेटों का डिब्बा थमाते हुए कहा—“थैंक्यू ! लो यह फ़ाइव-फ़ाइव-फ़ाइव का डिब्बा है, तुम्हारे लिये...इसमें से मैंने सिर्फ़ दो सिगरेट पिये हैं ।”

यह कहकर उसने बचे हुए सिगरेट का टुकड़ा मुँह से निकाल कर फेंक दिया और अपनी प्रेमिका से मिलने के लिये, जिसने उसे बरसा से मुँह न लगाया था, बेदंगे कदम नापता हुआ आगे बढ़ा और फिर चुपके से गैरेज के अन्दर घुस गया ।

जब कुछ देर तक कोई आवाज़—कोई शोर सुनाई न दिया तो मैंने समझ लिया कि सारा मामला ‘आ के’ है । फिर मैंने फ़ाइव-फ़ाइव-फ़ाइव का एक सिगरेट निकाला और उसे जीभ से तर करने लगा जिसमें एक अधिक से अधिक देर तक मुलगता रह सके ।

मैं जरूर रोऊँगी !

पुराने सोफे में धँसे-धँसे उसने सिगरेट का एक लम्बा कश लेने के बाद मुँह खोला तो गहरे सुरमई रंग के धुएँ का कुलबुलाता और बल खाता हुआ बादल बाहर निकल वायुमंडल में फैलने लगा । धीरे-धीरे उसकी मुँदी हुई आँखों के आगे से पर्दा हट गया और उसे दीवार पर लटकी हुई बड़े साइज़ और पुराने ढंग की रङ्गीन तस्वीर साफ़-साफ़ नज़र आने लगी ।

आजकल इस तरह की तस्वीरों का रिवाज नहीं था । लेकिन लाला जी के गुमनाम होटल के सुनसान कमरे में और किस चीज़ की आशा की जा सकती थी ? तस्वीर में पुराने जमाने के किसी राजा के रंगमहल

मैं जरूर रोऊँगी !

का आंतरांगिक दृश्य दिखाया गया था : नौजवान महारानी अन्य स्त्रियों के साथ नीले पानी के तालाब के किनारे खड़ी थी ।

हाय, कितना मनोहर दृश्य था यह !

यह सुन्दरी रानी जिस पर भूले से निगाह डालने वाले पुरुष की आँखें निकलवा दी जाती होंगी—और फिर उस दिलरुबा के महल का यह विशेष भाग, जहाँ बिना आज्ञा शायद कोई परिन्दा भी पर मारने का साहस नहीं करता होगा—और इन सबसे बढ़कर मज़ा यह कि ठीक स्नान का दृश्य...एक से एक बढ़कर सुन्दरी...उनमें से पूर्ण रूप से नग्न कोई भी न थी । कपड़े उतारने की सारी मंजिलें अभी तय नहीं होने पाई थी ।

आ गई ?

वह चौंका—नहीं, या ही खटका हुआ था ।

कोई नहीं, कोई नहीं—दिलेज़ार ! अब यहाँ कोई नहीं आएगा ।

साफ़ चादनी गत थी—उन्हें इस वक्त तक पहुँच आना चाहिये था ।

—खैर ! शराब का खुमार अभी तक बाकी था, इसलिए वह मन को बेखयाली की हाव में डगमगाने की आज्ञा दे सकता था ।

तस्वीर वाले तालाब में गहरे हरे रङ्ग की काँई के टुकड़े पानी में हचकोले ले रहे थे । उन टुकड़ों में से गुज़रते हुए हंस इधर-उधर तैरते फिर रहे थे । गिरोह की युवतियों चिकने और नमदार फर्श पर इस अन्दाज़ से खड़ी थी मानो ज़ण भर में वे अपने बचे खुचे वस्त्रों को परे उतार फेंकेंगी और फिर स्वच्छ नीले जल की तहों में से उनके जग-मगाते शरीर क्या ही सुन्दर समों पैदा करेंगे ।

“आ गई ?”

उसने फिर धूमकर देखा !

“जी हाँ !”

मैं जरूर रोऊँगी !

नौकर के मुँह से यह उत्तर सुन उसने विशेष उत्सुकता प्रकट नहीं की । हाँ, सिगरेट का कश लेते हुए उसने निगाह दरवाजे पर गड़ा दी ।

लड़की अन्दर दाखिल हुई । उसका लिवास भडकदार जरूर था, लेकिन उसमें कोई आकर्षण नहीं था । लड़की का रंग साँवला, नख-शिख साधारण, लेकिन सब मिला कर गूरत दिलकश और शरीर जवान और जवानी की महक से सुगंधित था ।

आने वाली भावनाहीन लड़की इस अन्दाज़ में खड़ी हो गई कि वह उसे मिर में पाँव तक देख सके ! उसने प्रकट में अधखुली आँखों, किन्तु वास्तव में जिज्ञासु दृष्टि से लड़की को देखा । सँवलाए हुए रंग पर जवान रक्त ने अजब निखार पैदा कर दिया था । उसके हाथों की समतल और तनी हुई त्वचा देख कर वह भली भौति अनुमान कर सकता था कि वह अन्दर से कैसी होगी ।

आखिर उसने लड़की से निगाह हटाकर उसके साथ खड़े हुये मर्द से भी निगाहें फेर लीं और लिड़की में से दिखाई पड़ने वाले आकाश में रुई के गालों के समान बादलों की टुकड़ियों पर नजर जमा दी । वे टुकड़ियाँ ऐसी दिखाई पड़ती थीं जैसे विशाल किन्तु शान्त सागर में बर्फ के टेर अटखेलियाँ कर रहे हों ।

थोड़ा रुक कर उसने सिगरेट की राख झाड़ा और लड़की के साथी को सम्बोधित करने हुए कहा — “रात भर रहना होगा ।”

लड़की के साथी की मूँछें घूमकर उसके भिंचे हुए होठों में घुसी हुई थीं । उसने बात का जवाब देने के लिए मुँह खोला तो मूँछें हवा के जोर से हिलने लगीं जैसे कनखजूरा रेंगने को हो । लेकिन गाहक ने यह तमाशा नहीं देखा । उसकी नज़रें तो आसमान पर जमी हुई थीं ।

स्वीकारात्मक उत्तर पाकर उसने गर्दन घुमाए बिना पूछा — “क्या रेट है ?”

“रेट तो—खैर पचास पर मामला तय हो सकता है ।”

मैं जरूर रोजूँगा !

“पचीस’!”

पुरुष ने कुछ रुक कर कहा—“यह बहुत कम है...”

“नहीं—बस ठीक है । तुम ज्यादा माँग रहे हो ।”

“अजी वाह...लोग रात का दो-दो सौ भी खर्च कर डालते हैं ।”

“माल-माल की कीमत है ।”

लड़की कुछ निढाल सी हो गई—उसने लड़खड़ा कर दीवार का सहाग लिया । उसके साथी ने कहा—“तुम बैठ जाओ ।”

“...तुम...तुम जा सकती हो ।” गाहक ने कुछ रूखे स्वर में कहा ।

लड़की के चेहरे पर किसी भाव के चिह्न न दिखाई पड़ते थे । वह कुरसी पर बैठ चुकी थी, किन्तु उठने के लिए अपने को तैयार रही थी...

उसका साथी अजब सोच-विचार में पड़ गया था । कुछ देर तक बड़ी भोंड़ी सी खामोशी छाई रही । आखिर लड़की के साथी ने अटढ़ आवाज में कहा—“आप हमें कुछ ज्यादा दे दीजिये । हम लोग शरीफ हैं, लेकिन शरणाथी हैं...क्या करें ?”

“मैं भी शरणार्थी हूँ ।”

अब वह मर्द स्तब्ध-सा होकर रह गया ।

इधर तेजी से सिगरेट के दो-चार कश लगाए गए । फिर उसकी बची हुई दुमची फेंक दी गई ! आवाज गूँजी—“तीस दे सकूँगा । बस, अब तुम अकेले या दोनों जा सकते हो ।”

मर्द ने लड़की की ओर देखा । दोनों की आँखें नहीं मिल सकीं क्योंकि लड़की का चेहरा, बल्कि सारा शरीर निश्चेष्ट था । उसके पपोटे झुके हुए थे । ऐसा लगता था जैसे वह अपनी छोटी-छोटी छितियों के उभार की ओर अजीब नज़रों से देख रही है ।

अन्त में लड़की के साथी ने शुष्क स्वर में कहा—“अच्छा, मैं ही चला जाता हूँ ।”

मैं जरूर रोऊँगी !

दस-दस के तीन नोट उसके हाथ में थमा दिए गए और वह दरवाजे को भेड़ता हुआ मुस्त कदमों से लौट गया ।

अब उसने एक नया सिगरेट मुलगाया और लड़की से कुछ कहे बिना बड़ी तन्मयता से कश पर कश लगाने लगा । इन मामलों में मौदाबाजी करने से उसे सख्त कोफ्त होती थी । वह चाहता था कि इस कोफ्त का गुबार दिल से दूर हो जाए तो वह लड़की की ओर ध्यान दे ।

कमरे में पूर्ण सन्नाय था ।

एकाएक अजीब सा शोर हुआ—निस्तब्धता भंग हो गई और कुछ क्षणों के बाद उसे ज्ञात हुआ कि लड़की ने फूट-फूट कर रोना शुरू कर दिया है । मालूम होता था कि इस समय तक वह किसी न दर्ब सकने वाले दर्द को जोर से दबाए बैठी थी । लेकिन आखिर लावा बह निकला ।

लौंडिया की इस हरकत से उसे सख्त कोफ्त हुई लेकिन वह मुँह से कुछ बोला नहीं । और न अपनी जगह से उठने की कोशिश की, बल्कि वह बड़े इतमीनान से सिगरेट पीता रहा । एक खत्म होता तो दूसरा मुलगा लेता ।

छोकरी फूट-फूटकर रोती रही, माना वह अपना कलेजा पिबलाकर आँसुओं के जगिये बहा देगी—और वह पूरे धैर्य और हड़ता के साथ सिगरेट पीने में लीन रहा । रोने की तेजी में कमी हो गई...धीरे-धीरे रोना-धोना खत्म हो गया, अब केवल हिचकियाँ बाकी रह गई थीं ।

वह कुरसी से उठा...लड़की अब तक कोने में खड़ी थी, अपनी हिचकियाँ में मग्न । वह टॉंगे लटकाकर ऊँचे पल्लंग पर लेट-सा गया । सिर के नीचे परों वाला तकिया रख लिया । धुवों पहले मुँह से, फिर नाकों से,—फिर मुँह से और फिर नथुनों से निकालता रहा और स्वप्निल नेत्रों से सौवली सलोनी लौंडिया को देखता रहा । अब वह थोड़ी-थोड़ी देर रुक-रुक कर हिचकियाँ लेती थी । लेकिन इतनी गहरी

मैं जरूर रोज़गी !

और झंझोड़ देने वाली कि हर हिचकी पर वह सिर से पाँव तक काँप जाती थी ।

उसने लौंडिया की धुली-धुलाई आँखों, नमी से बोझिल पलकों और लव देते हुए हाँठों की ओर देखा । उन दोनों को महसूस हुआ कि इस मौन में बातें किये बिना भी वह एक दूसरे से परिचित और घनिष्ठ हो गए हैं...लेकिन लड़की के गालों पर आँसुओं की चौड़ी और भद्दी लकीरें उसे बिल्कुल पसन्द नहीं आईं— और आँसू भी टप-टप करके उसके कपड़ों पर गिरते जा रहे थे.. उसने विस्तर पर पड़े-पड़े एक तौलिये की मदद बना कर लड़की की आँखों की आँखों भावहीन स्वर में कहा—“लो आँसू पालू डालो...लियास भी खराब कर लिया है तुमने... गालों पर फैले हुए आँसुओं को तौलिये से थपथपाकर मुखा डालो । पाउडर की तह माफ न हो जाए...मुझे यह देख कर सचमुच बड़ी खुशी हुई है कि तुमने मुँह पर पाउडर थोपने की काशिश नहीं की । इस हलकी सी तह से तुम्हारी मुरचि का पता चलता है ।”

हालाँकि उसकी आवाज़ बिल्कुल भावनाहीन थी, लेकिन न जाने उस आवाज़ में क्या चीज़ थी कि लड़की ने चुपचाप उसकी हिदायतों के अनुसार मुँह माफ कर डाला ।

आँसू पालू लेने के बाद लड़की ने पुरुष की ओर देखा, मानो जानना चाहती हो कि अब वह कैसी दिवाई देती है । पुरुष निश्चेष्ट उसकी ओर देखता रहा । भड़कदार बेहूश लियास के बावजूद उसके शरीर की सुन्दरता प्रकट थी । हाथ पाँव मजबूत थे । लम्बा कद लचकदार गरदन और फिर साँवला रंग अजब बहार दिवा रहा था ।

“तुम्हारी उम्र क्या है ?”

“सत्रह बरस ।”

“क्या तुम गाँव की रहने वाली हो ?”

“जी हाँ...लेकिन मैं शहर में पढ़ती हूँ ।”

मैं जरूर रोऊँगी !

“ओफफोह, तुम पढ़ी लिखी भी हो ?”

“जी !”

“कहाँ तक ?”

“दसवीं क्लास में पढ़ती थी कि...”

“दंगे शुरू हो गए ।”

“नहीं ।”

“फिर ?”

“शादी हो गई ।”

“अच्छा .. और फिर तुम अपने पति के साथ रहने लगी ?”

“यही तीन चार महीने... फिर दंगे शुरू हो गये ।”

“और तुम्हारे पति ?”

“मारे गए ।”

“तुम ?”

‘मैं... अब गई । बचा ला गई । मेरी इज्जत बहुत बार खराब हुई ।
आखिर इधर लाई गई । लेकिन मेरा कोई नहीं था... फिर वे मुझसे पेशा
कराने लगे ।’

कुछ देर चुप रह कर पुरुष ने कहना शुरू किया—“मेरी ऊम्र तीस
बरस की है । बँटवारे से पहले मैं सियालकोट में कारबार करता था । मैं
कोई खानदानी रईस नहीं था लेकिन अच्छा खाना-पीता आदमी था ।
बीवी और दो बच्चे भी थे । अब कोई नहीं है । आमदनी का कोई
माकूल जरिया नहीं है । जब कभी मुश्किल से बीस तीस जमा हो
जाते हैं तो औरत की सूरत देखना नसीब होती है । मेरी सूरत के बारे
में तुम्हारा क्या खयाल है ?... मेरे बाल बहुत मुलायम हैं, लेकिन जब
सुबह ब्रश करता हूँ तो कनपटियों से चन्द बाल निकल आते हैं । मेरा
रङ्ग साफ था लेकिन अब सुरमई गुबार-सा नज़र आता है । चेहरे पर...
आँखें बड़ी नहीं थी लेकिन इनमें वह चमक भी बाकी नहीं रही । तुम

मैं जरूर रोज़गी !

जानती ही हो, चिंताओं और अव्यक्त रहन-सहन से इन्सान की तन्दु-
रस्ती पर बुरा असर पड़ता है... '

“लेकिन आप अच्छे आदमी हैं ।” लड़की ने बच्चा के से स्वर में
कहा ।

“अच्छा आदमी ? ..बस ? कुल ? दूसरी औरतें तो मेरी बहुत
तारीफ़ करती हैं । और तुम सिर्फ़ अच्छा आदमी कहकर रह गई...?”

पुरुष को लड़की उस वक्त बहुत भली मालूम हुई जब वह उसके
सवाल के जवाब में उसकी ओर देखे बिना दिलकश अन्दाज़ में हँसते
हुये सिर हिला कर सिर्फ़ लम्बी सी “हूँ” करके रह गई ।

पुरुष ने लेटे-लेटे पूछा—“यह धन्धा कब से कर रही हो...तुमसे
करवाया जा रहा है...मेरा मतलब है ?”

इस पर उसका मुँह फिर फूलने लगा, फिर उसके रो देने की संभा-
वना पैदा हो गई...बोली—“एक महीने से...” और फिर जैसे उसकी
आवाज भर गई ।

पुरुष ने जल्दी से कहा—“देखां भई, हालाँकि तुम यहाँ धन्धे के
सिलसिले में आई हो या लाई गई हो...और मैं पाशविक भावना के
अन्तर्गत आया हूँ या लाया गया हूँ...फिर भी हमें यह कभी नहीं भूलना
चाहिए कि हम लोग भले हैं...”

ऐसा लगता था कि अब हँसी लड़की के होठों से सदा के लिए बिदा
हो गई है । वह झुंझला कर बोली—“लेकिन अब मैं बेहद तंग आ गई
हूँ । हर रोज़ जब मेरे बारे में सौदेबाजी होती है...तो मैं फूट-फूट कर रोने
लगती हूँ । मैं जानती हूँ कि मैं इतने गहरे गार में गिर चुकी हूँ या गिराई
जा चुकी हूँ कि अब मेरा यहाँ से निकलना नामुमकिन है...आप...आप
फिर भी भले आदमी हैं । लेकिन औरत की हैसियत से...”

“नहीं...क्या नाम है तुम्हारा . मैं तुमसे ज्यादा भला नहीं हूँ ।

में जरूर रोज़गार !

अगर होता तो तुम्हें और तुम ऐसा हजारों लड़कियों को यह पेशा न अपनाना पड़ता...

पुरुष ने उठकर कमरे में इधर-उधर दहलना शुरू कर दिया और लड़की कुरसी पर बैठ गई।

पुरुष दहलता रहा—तीन चार मिनट के बाद उसने फिर लड़की की ओर रुख किया। देखा कि उसने निगाहें फर्श पर गाड़ रखी हैं। कुछ देर पहले जो मुस्कराहट उसके होठों पर पैदा हुई थी वह भी खत्म हो चुकी है और वह गहरी सोच में डूबी हुई है।

“तुम क्या सोच रहा हो ?”

वह चुप रही।

“तुम चुप क्यों हो ?”

“कुछ नहीं”, लड़की ने नरम स्वर में जवाब दिया —“यां ही बीते दिनों की याद कर रही हूँ। अपना ज़िन्दगी की वह शुरुआत और यह अन्त देखकर दिल डूबा जाता है।”

“और शायद तुम सोच रही हो कि यह सब मार काट और बरबादी इसलिए हुई कि सब पर शैतानी छाई थी।”

“जी हाँ !”

“लेकिन यह गलत है !”

लड़की ने कुछ चकित होकर उभरी और देखा।

कुछ रुक कर उस आदमी ने कहना शुरू किया—“दर असल यह सब कुछ नेकी की राह में पेश आया है। मरने वाले नेकी की राह में मरे हैं और मारने वालों ने ‘अल्ला हा अकबर’ ‘हर हर महादेव और ‘सतसिरी अकाल’ के नारों के शोर में क़त्ल किए हैं। मुझे तो इसमें आप की ज़रूरत सी झलक तक नहीं दिखाई देती। क़त्ल होते वक्त मरने वालों को तकलीफ़ जरूर हुई होगी लेकिन अब तो वे स्वर्ग या जन्नत में गोकुल के कन्हैया की बंसरी की लय पर खुश और प्रसन्न होते होंगे या दूर और गिलमा से

मैं जरूर रोऊँगी !

दिल बहलाते होंगे या उनकी आत्माएँ नन्हे-मुन्ने और रंगीन पक्षियों के रूप में स्वर्ग के हरे-भरे लहलहाते पेड़ों की पानी के चश्मों पर झुकी हुई नाजुक दहनियों पर झूले झूलती होंगी...समझीं !”

लड़की ने इनकार में सर हिलाया

पुरुष ने फिर थोड़ा रुककर कहा—“बात सीधी सादी है। कातिलों और लुटेरों की नीयतें साफ़ थीं। दोनों तरफ़ वालों ने एक दूसरे को पूरा शैतान समझ कर मारा, काया और बरबाद किया है। यानी किसी मुसलमान ने किसी भी हिन्दू या सिख को खुदा का नेक वन्दन समझ कर कत्ल नहीं किया क्योंकि खुदा के किसी भी वन्दे को कत्ल करने के लिए बुरा से बुरा मुसलमान भी तैयार नहीं हो सकता। और यही बात इधर भी सच्ची बैठती है...तुमको यह बात समझ लेनी चाहिए कि हम...यानी हिन्दू, मुसलमान और सिख वदशी नहीं हैं। हम सब बहुत नेक हैं, आदि काल से ही सच्चाई के पुजारी हैं, बल्कि नेकी और बरी के मामले में तो हमारी मासूमियत का यह हाल है कि हम बड़े इतमीनान से करोड़ों इन्सानों को बेभिकक कत्ल कर सकते हैं। भोली और नादान लड़की ! समझ ले और मत भूल कि नेकी की राहें बेहद दुश्वार हैं...”

“मैं खाक नहीं समझी।”

पुरुष फिर पलंग पर बैठ गया। वे एक दूसरे की ओर मौन दृष्टि से देखते रहे। फिर लड़की बोली—“इसका मतलब यह हुआ कि मैं भी एक नेकी की राह में...”

“हाँ !” पुरुष स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाते हुए मुस्कराया।

लड़की लाचार होकर दोनों हाथों से दुखते हुए सिर को दबाने लगी।

पुरुष ने उसकी दिली कैफियत को भाँपते हुए कहा—“लेकिन तुम यह भी तो खयाल करो कि अब तुम एक घरेलू औरत की ज़िन्दगी कैसे बिता सकती हो...?”

एकाएक उसे वे अजनबी मर्द याद आ गए जिन्होंने दंगों के दिनों

मैं जरूर रोऊँगी !

मैं उसकी बार-बार इज्जत लूटी थी । और अपनी जाति के पुरुषों का कारवाँ आँखों तले से गुजरने लगा जिन्होंने उसके वापस लाए जाने के बाद उससे व्यभिचार किया था . और एक बार फिर वह रो पड़ी... फूट पड़ी...

“यह बात मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है...।” पुरुष ने नम्र स्वर में विरोध करते हुए कहना शुरू किया—“तुम पढ़ी-लिखी समझदार और नेक लड़की हो । जरा इस बात का भी तो खयाल करो कि मैंने तीस रुपए इसलिए नहीं दिए हैं कि तुम रात भर बैठी रोती रहो ।”

इस पर लड़की तुरन्त चुप हो गई । उसकी आँखों के कोनों में जो आँसू उबल आए थे वे भी बूँदें बन कर टपक नहीं सके, बल्कि वहीं कोंप कर रह गए ।

पुरुष ने उसी स्वर में कहना शुरू किया—“तुम आजाद और विलासमय जीवन की आगी हो गई हो । कहाँ वह ऐश इशरत, कहाँ गरीब के भोंपड़े की सीमित चहारदीवारी...कहाँ यह रंगीन भड़कदार लिवास...”

फिर उसकी नज़रें लड़की की नज़रों से मिलीं तो उसने देखा कि वह जंगली बिल्ली की भाँति विफरी बैठी है, उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही हैं...वह चुप हो गया । लड़की के दोनों हाथ उठे और उसने पागलों की तरह गरेबान फाड़ डाला, कमीज़ तार-तार कर डाली...और फिर शायद उसे रोना आने लगा लेकिन वह हठधर्मी से सिर को हिला कर और आँसू पीकर दूसरी ओर देखने लगी ।

उसके शरीर का ऊपरी भाग नग्न हो चुका था । उसने अंगिया नहीं पहन रखी थी । शायद उसकी छातियों को अंगिया की जरूरत ही न थी, बल्कि जो ढीला कपड़ा उसने उनपर बाँध रखा था वह छातियों के सहारे पर ढलका हुआ था ।

पुरुष ने उठकर उसके चिथड़ों से ही उसके शरीर को ढाँप दिया

मैं जरूर रोऊँगी !

और जरा परे हट कर धीरे से पूछा—“क्या अब मैं तुमको चूम सकता हूँ ?”

“क्यों नहीं !” लड़की ने कठोर स्वर में जवाब दिया ।

वह उसके पास पहुँचा । उसने उसके बिखरे बालों को सँवारा और धीरे-धीरे मित्रतापूर्ण ढंग से उसके गर्म गालों, घने बालों को सहलाता रहा । इस बात का लड़की के मन पर सुखद प्रभाव पड़ा । करीब की तिपाई पर धरे हुए आइने में दोनों की निगाहें मिलीं । लड़की ने धीरे से कहा—“भेरी इस माँग में सँदूर पड़ चुका है एक बार ।”

“शायद फिर पड़े ।” युवक ने भावनाहीन स्वर में कहा ।

इस बात का लड़की के मन पर और भी सुखद प्रभाव पड़ा । उसके चेहरे से क्रोध के चिह्न दूर हुए तब पुरुष ने उसके बाल परे हटा कर कन्धे की ओर गरदन के निचले भाग पर सबसे अधिक फड़कती हुई रग पर हाँट रख दिए ।

लड़की आनन्द और गुदगुदी के अनुभव से कसमसा कर रह गई ।

“मैं जरा दरवाजा बन्द कर दूँ ।” पुरुष यह कहकर दरवाजे की ओर बढ़ा तो लड़की ने उसकी ओर देखे बिना प्रसन्न स्वर में कहा—“आज जिस जगह को आपने चूमा है उसे पहले कभी किसी ने नहीं चूमा...मैं आपको यक़ीन दिलाती हूँ कि मेरे वदन का यह हिस्सा बिलकुल कैवारा है, बेऐब और पवित्र है...!”

आवाज़ आई—“शायद अब तुम्हारे वदन के किसी भी हिस्से को कोई और पुरुष नहीं छू सकेगा ।” अबकी आवाज़ जरा डगमगा गई थी ।

लड़की ने एकाएक घूम कर पुरुष की ओर देखा । इस समय वह चटकनी चढ़ा रहा था । उसके सिर के बाल कुछ बढ़े हुए थे और उन्होंने उसके बिखरे रंग की गरदन के कुछ हिस्से को ढाँप रखा था । वह चाहती थी कि वह तुरन्त लौट आए दरवाजा बंद करके...लेकिन न जाने क्यों पुरुष ने देरी लगाई । वह ऐसा अनुभव कर रही थी कि उसके

में जरूर रोऊँगी !

शरीर की शक्ति कम हो चुकी है और वह कुरसी से उठ नहीं सकती... लेकिन उसने बड़े ही स्नेह से पुरुष के सिर के पिछले हिस्से को देखा और उसके हृदय ने प्रश्न किया—‘क्या इन सब बदमाशियों के बावजूद जो मुझसे की जा चुकी हैं, क्या उस सारी गन्दगी और सड़ोंद के बावजूद जो मेरे शरीर में प्रवेश कर चुकी है, क्या इस...?’

अब पुरुष ने सिर घुमाया और उसने लड़की की आँखों में आँखें डाल कर उसे भरपूर नज़रों से देखा । उसके होठों पर मनाहर मुस्कान फैलने लगी, मानों वह अपने खास अन्दाज़ में कह रहा हो—‘ए भोली और नादान लड़की ! समझ ले और मत भूल कि इन सारी ‘ज्यादतियों’, ‘गन्दगियों’ और ‘बदमाशियों’ से तेरी अबोधता और निखर आई है...’

फिर वह उसकी ओर एक-एक कदम बढ़ने लगा । अब लड़की अपने आँसू नहीं रोक सकी । वह फिर ज़ार-ज़ोर से रोने लगी । पुरुष ने उसे चुप कराने की कोशिश की लेकिन वह ज़ज्बात की तीव्रता से काँपते हुए होठ हिलाकर ऊँची आवाज़ में रोते हुए चिल्लाई—“नहीं मैं जरूर रोऊँगी !”

पुरुष चुपके से आकर पलंग पर लेट गया । उसने फिर एक सिगरेट सुलगाया और बड़े इतमीनान से हलके-हलके कश लेने लगा ।

आकाश में अब भी बादलों की ठुकड़ियाँ मन्द गति से तैर रही थीं ।

लड़की पहले की तरह रो रही थी—किन्तु पुरुष को उसके रोने से कोफ्त नहीं हो रही थी क्योंकि अब वह इस चीज़ को बिलकुल घरेलू दृष्टिकोण से देख रहा था ।

कसक

दस वर्ष डाकखाने की नौकरी करने के बाद तंग आकर, उसने नौकरी को तिलांजलि दे दी। उसे उन दिनों एक स्वप्न दिखाई दिया, कि वह किसी तरफ चला जा रहा है। चलते-चलते उसकी नज़र अपने बूटों पर जा पड़ी। देखता क्या है, कि उसके बूटों पर लगी हुई कीचड़ आप-ही-आप परे जा गिरती है, और उसके बूट खूब चमकने लगते हैं। उसने इसे अच्छा शकुन समझा। और फिर परमात्मा की मर्जी देखिए, कि इस घटना के बाद तीन साल के अन्दर-अन्दर उसकी आर्थिक स्थिति दृढ़ हो गई। पहले वह शहर में रहता था, वहाँ उसका पैतृक घर था, लेकिन न वह मकान अच्छा था, न वह मुहल्ला ही उसे पसन्द-

था। अब चूँकि वह पहले की अपेक्षा अधिक खर्च कर सकता था, उसने सोचा, कि पैतृक घर का किराया पर उठा दे। अपने मकान के किराये में अपनी जेब से कुछ रुपया भिजा कर, इतनी रकम हो सकती थी, कि वह सिविल लाइन्स में एक अच्छा मकान ले सके।

जब परमात्मा काम सँवारने पर आये, तो फिर इधर आदमी कोई स्कीम सोचता है, और उधर उसका काम बनने लगता है। इन्हीं दिनों उसे एक छोटा-सा बँगला भी मिल गया। यद्यपि यह सिविल लाइन्स के सिरे पर था, लेकिन रहने के लिए अच्छा और सुन्दर था।

अब वह जीवन की इस प्रकार की छोटी-मोटी सुविधायें प्राप्त करने के योग्य हो गया था। यह ठीक है, कि वह अब तक रुपया जमा न कर पाया था, लेकिन पहले की अपेक्षा अब आराम से कट रही थी। रहने के लिए अच्छी जगह मिल गई थी, और रुपया कमाने के लिए पहले की तरह कोल्हू का बैल बन कर सुबह से शाम तक कलम बिसने की और अफसरों की झिड़कियों सहने की आवश्यकता न रही थी।

उसका बँगला छोटा सही, लेकिन सुन्दर जरूर था। नया-नया ही बना था। बँगले के चारों ओर चहारदीवारी थी, और यूकलिप्टस के पेड़ थे। बँगले में वह अपनी पत्नी और चार बच्चों के साथ ज़िन्दगी के दिन आराम से बिता रहा था। वैसे तो मनुष्य के लोभ और आकाँक्षायों की कोई सीमा ही नहीं, लेकिन जाहिर में कोई ऐसी बात न थी, जो उसके लिए परेशान करने वाली साबित होती।

अठ्ठाइस वर्ष की आयु में उसने नौकरी छोड़ दी। चार वर्ष ऊपर हो गये थे। उसकी शादी सोलह वर्ष की अवस्था ही में हो गई थी। पत्नी दो-ढाई वर्ष छोटी थी। उस समय उसे स्त्री की सुन्दरता और प्रेम आदि का विचार न था। बस स्त्री थी, यही बात उसके लिए काफी थी। जैसे ही उसने होश सँभाला, उसे एक स्त्री मिल गई। वह उसकी पत्नी थी। यद्यपि वह सुन्दर थी, लेकिन उसने कभी यह जानने की कोशिश

मैं जरूर रोऊँगी !

नहीं की, कि वह सुन्दर थी या कुरूप । उसके लिए केवल एक ही महत्व की बात थी, कि वह जवान था, और उसकी पत्नी एक स्त्री थी ।

पत्नी ने बच्चे देने शुरू किये । कोई जीवित रहता, कोई मर जाता । उसे इस बात की कोई चिन्ता न थी । बच्चा मरता है, तो मरे, जीता है, तो जिये; लेकिन उसकी पत्नी सलामत रहनी चाहिये । अब तो खैर उसे अपने बच्चों से प्रेम हो गया था, लेकिन उन दिनों उसे ये बच्चे विचित्र जीव जान पड़ते थे । वह सोचा करता था, कि न जाने ये नीले-पीले, लिजलिजे बच्चे कहाँ से टपक पड़ते हैं ? इसके अतिरिक्त उसे अपनी पत्नी की उपज पर गुस्सा आता था । हर साल एक बच्चा ! कभी-कभी वह किसी घनिष्ठ मित्र से कहता, 'यार, विधाता के लिये यह बात असम्भव तो नहीं थी कि स्त्रियाँ भी बच्चों के बजाय अंडे देने लगतीं । सोचो, उस्ताद होती न मजे की बात ? एक स्त्री मजे से एक अंडा दे देती । यह व्यर्थ की बच्चों की मुसीबत से तो पति-पत्नी बचे रहते ।'

देखने में वह दुबला-पतला आदमी था, लेकिन स्त्री की भूख इतनी ज्यादा थी, कि मिटाये न मिटती थी । वह कवियों की भाँति स्त्री की कोमलता और खूबसूरती का कायल नहीं था । उसके निकट स्त्री एक ठोस वस्तु थी । वह ऐसी स्त्री चाहता था, जिसके शरीर पर मजबूत और ठोस माँस हो । उसे भेपती, शर्माती, बल खाती, कोमलांगी स्त्रियाँ पसन्द नहीं थीं ।

उसने कभी अपना मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया था । लेकिन ये बातें वह महसूस जरूर करता था । अब जैसे-जैसे उसका जीवन आनन्द-प्रद होता जा रहा था, वैसे-वैसे उसका यह अनुभव स्पष्ट होता जा रहा था । वह जिस तरह प्यास का अनुभव करता था, जिस तरह उसके पेट को रोये की भूख होती थी, या जिस तरह और प्राकृतिक वस्तुओं की चाह मनुष्य को होती है उसी तरह उसे औरत की भूख थी । वह हैरान

था कि अब तक अपने दाम्पत्य-जीवन में भी वह अधिक सावधान न रहा था, फिर भी उसकी यह भूल पहले ही दिन के समान थी।

यद्यपि उसने अपनी पत्नी के शरीर से काफी लाभ उठाया था, फिर भी जिस तरह बर्फ का पानी चाहे कितना भी क्यों न पिया जाय प्यास नहीं बुझती, इसी तरह वह अज्ञात रूप से बेचैन-सा रहता था। उसका शरीर सिर से पाँव तक जला करता था। वह अपने आपको आग की लपकती हुई लपटों के हवाले कर देना चाहता था, जिसमें कि आग में आग मिल जाय।

बँगले का एक कमरा उसने खास तौर से अपने कब्जे में रक्खा था। यह कमरा एक किनारे पर था। सजावट का कोई खास सामान उसके अंदर मौजूद न था। लेकिन यह सब होते हुए भी कमरे की अपनी कुछ विशेषतायें भी थीं। एक तो वह बहुत बड़ा था और फिर हवादार था। सोफों का एक सेट, एक कोने में मेज़, दूसरे कोने में किताबों की दो आलमारियाँ, फर्श पर दरी, बड़ी-बड़ी खिड़कियों के शीशों पर हल्के हरे रङ्ग की जाली। बस, इसके अतिरिक्त वहाँ कुछ न था। कमरे के आगे घास का एक प्लाट था। उसके आगे बाग और यूकलिप्टस के पेड़-वाड़े के आगे से एक सड़क गुजरती थी, जो चक्कर खा कर सिविल लाइन्स की घनी आबादी में दाखिल हो जाती थी। सड़क के आगे मैदान था। मैदान के परती ओर जमीन में लम्बे-चौड़े गड्ढे खुदे हुए थे। वहाँ कुम्हार मिट्टी लेने के लिए जाया करते थे। इन गड्ढों से आगे खेतों का सिलसिला शुरू हो जाता था।

दोप र के समय वह आरामकुर्सी पर पाँव फैला कर लेट-सा जाता और सिगरेट का धुआँ उड़ते हुए अधखुले नेत्रों से मैदान की ओर देखा करता, जहाँ चिलचिलाती धूप में भुनगे-से उड़ते दिखाई दिया करते थे। अन्दर के कमरों से बच्चों का शोर और उसकी पत्नी के झिड़कने

मैं जरूर रोऊँगी !:

की आवाजें सुनाई देती थीं। एक बजे का समय होता, तो रेडियो पर रिकार्ड बजने लगते।

इसी तरह एक दिन दोपहर के समय वह लेटा हुआ खिड़की से चिलाचिलानी धूप में क्षितिज को आंर देख रहा था, जहाँ क्षितिज की रेखा पानी की सतह की तरह गनिशील-सी दिखाई पड़ती थी। इतने में उसकी पत्नी ने कमरे में प्रवेश किया और बोली—“अजी !... अजी, कहाँ हो ?”

उसने सिर घुमा कर उसकी ओर देखा। पत्नी ने दूर ही से हाथ से पास आने का इशारा करते हुए कहा—“इधर आइए जी... आपको एक चीज दिखायें।” उस समय उसकी पत्नी पाँच वर्ष की बालिका के समान भोली और मासूम दिखाई पड़ती थी। उसकी आँखों में जिज्ञासा और होठों पर बचपन की शोखी झलकती थी।

उसने उठ कर पूछा—“क्या दिखाइएगा ?”

उसकी पत्नी उसे ‘एक चीज’ दिखाने के लिए बुला कर ले गई। और वह ‘एक चीज’ क्या थी ? एक कुत्ता ! कोई मेहतर लाया था। छोटा-सा फाक्स टेरियर नस्ल का वह सुन्दर कुत्ता देख कर उसके बच्चे मचल गये। पत्नी कहती थी कि पति रात को घर आते हैं। बँगला अकेला रहता है। कुत्ता रहेगा तो उसका जी बहला रहेगा। और बँगले की रखवाली भी करेगा।

वह उकड़ूँ बैठकर कुत्ते को गौर से देखने लगा। यह छोटा-सा कुत्ता, जिसकी चार अँगुल लम्बी ज़बान मुँह से बाहर लटक रही थी, घर की क्या रखवाली करेगा ? वह मेहतर न जाने उसे कहाँ से उड़ा लाया था। बहुत अधिक दाम माँगता था, लेकिन जब ‘मियाँ-बीबी राजी, तो क्या करेगा काजी !’ यह फिजूलखर्ची भी एक मत से स्वीकार कर ली गई। वह जानता था कि चूँकि उसके दोस्त रामचन्द्र के यहाँ कुत्ता है, इसलिए उसकी पत्नी भी अपनी अमीरी का प्रदर्शन करना चाहती थी।

यही वह कुत्ता था, जिसे अपने साथ लेकर वह खेतों की ओर निकल जाया करता था। एक बार जब वह रोज की तरह शाम के वक्त सैर को गया, तो बाड़ फाँदते हुए उसके पतलून की मोरी काँटों में फँस गई। वह उसे छुड़ाने लगा और कुत्ता पास खड़ा दुम हिला-हिला कर भूँकने लगा। जब उसने मोरी को काँटों से छुड़ा लिया, तो देखा कि सड़क पर एक स्त्री खड़ी है।

वह उसके कुत्ते की ओर देख रही थी। शायद उसे यह कुत्ता पसन्द था। उसने पूछा—“यह कुत्ता आपका है?”

“जी, हाँ!”

उसने स्त्री की ओर नज़र भर कर देखा। वह कालिज की चंचल लड़की नहीं थी। न वह कामलौंगी और कृत्रिमता लिए हुए अपने को सुन्दर बनाये थी। न वह शर्माँली थी और न उसकी निगाहें झुकी-झुकी थीं। न वह बेवह्या थी, और न बेबाक थी। बस, वह एक स्त्री थी, सुलभी हुई। उसकी उम्र पच्चीस-छब्बीस वर्ष के लगभग होगी। आँखें मदभरी। उसके चेहरे पर उसकी पत्नी की तरह सरलता और भोलापन न था।

स्त्री ने उससे आँखें मिला कर कहा—“बड़ा प्यारा कुत्ता है। मैं छू लूँ? काटेगा तो नहीं?”

“जी, नहीं!” उसने हँस कर कहा—“घर में चोर या डाकू आ घुसँ, तो यह उन्हें भी नहीं काट सकता।”

वह हँस पड़ी। यह शर्माँली हँसी न थी, न निःसंकोच हँसी थी।

जब तक वह कुत्ते के शरीर पर अपना खूबसूरत हाथ फेरती रही, वह उसके शरीर को देखता रहा। स्त्री बातें भी करती रही। वह यह जानती थी कि वह उसकी ओर प्रशंसा की ही नहीं, बल्कि भूखी नज़रों से देख रहा था, लेकिन वह बिलकुल परेशान नहीं हुई, न भौंपी, न खफ़ा हुई। और जब वह खड़ी होकर पीछे की ओर सिर घुमा कर दुपट्टे के धूल लगे कोने को झाड़ने लगी, तो उसकी कमर में एक आकर्षक

मैं जरूर रोऊँगी !

भुकाव पैदा हो गया था । वह सीधी खड़ी हो गई । उसने दुपट्टे को मामूली तौर पर सँवारा और हँसते हुए बोली—“अच्छा, धन्यवाद !”

स्त्री चल दी और वह खड़ा हुआ उसे देखता रहा । क्षितिज में सूर्य अस्त होता हुआ दिखाई दे रहा था । दाईं ओर पैले हुए खेत पीले रंग में रंग गये । वह स्त्री करीब-करीब उस मुनसान-सी सड़क पर चली जा रही थी । कभी-कभी बायें हाथ को बनी हुई कोठियों में से कुत्ते बाहर निकल कर यों ही बिना मतलब भूँकने लगते । सूर्य की मद्धिम रोशनी में उसकी केसरिया-रंग की घुटनों तक लटकती हुई कमीज़ और भड़कीला दुपट्टा जगमगा उठा । दूर से वह एक लपकते हुए शाले के समान नज़र आ रही थी ।

उसके दिल में हलचल मच गई । उस दिन वह बहुत दूर तक सँर करता हुआ चला गया ।

जीवन में यह एक नया अनुभव था । नया खयाल और नया ही नशा था । आज तक उसने कभी किसी परनारी की ओर आँख भर कर देखने का साहस न किया था । लेकिन आज उसने उस स्त्री को जी भर कर देखा था । लेकिन उसका यह मतलब न था कि उसका जी भर गया था । अब तो उसके मन में एक शून्य उत्पन्न हो गया था । हृदय पीड़ा और आनन्द की मिली-जुली भावनाओं से उथल-पुथल का केन्द्र बन गया था । उसके मन में उस स्त्री के लिए असीम प्रेम उत्पन्न हो गया था । जैसे वह उस स्त्री से अज्ञात रूप से आदि काल से ही प्रेम करता चला आ रहा था, और अनन्तकाल तक करता चला जायगा । एक नया सूर्य उदय होने को था । उमंगों और तरङ्गों के नव-प्रभात का प्रकाश दिखाई दे रहा था ।

वह घर आया, तो बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ रहा था । पत्नी भी उसे देख कर चकित हो रही थी कि आखिर आज वह इतना प्रसन्न क्यों है ?

भोजन करने के बाद वह रेडियों के पास बैठा बच्चों से हँसता-खेलता रहा ।

दूसरे दिन इधर-उधर के कामों में उसका मन ही न लगा । वह खिलाड़ी बच्चे की तरह इधर-उधर लापरवाही से घूमता रहा । फिर उसने अपने मन को टोला कि वह क्यों खुश है ? क्या यह सम्भव है कि उस अजनबी स्त्री से राह-रस्म पैदा हो जाय ? क्या वह फिर कभी आयेगी ? इस खयाल से उसका मन उदाम हो गया । इस बात का क्या ठीक कि वह स्त्री आज फिर इधर से गुजरेगी ? फिर भी वह शाम ही से उसकी राह देखने लगा । वह बाड़े के पास कुत्ते को पकड़ कर कुर्सी पर बैठ गया । यहाँ से वह उस स्त्री को दूर ही में देख सकता था । उसकी आँखें सड़क पर चिछी हुई थीं । लेकिन कुम्हारों के गधों के सिवा सड़क पर कोई प्राणी दिखाई न पड़ता था । आशा और निराशा की हालत में वह जिगर थामे बैठा रहा । सहसा उसने उन्हीं कपड़ों की झलक देखी । क्या वह थी ? वही थी । उसका दिल धड़कने लगा । वह कुछ परे हट कर कुत्ते को साथ लिए हुए पहले दिन की तरह ठीक उसी जगह उसके सामने पहुँच गया ।

स्त्री ने फिर कुत्ते की ओर देखा, सीधी बजा कर उसे बुलाया । वह भी पास जा खड़ा हुआ । पहले दिन की तरह वह उसकी ओर देखता रहा । कुत्ता स्त्री के हाथों से खेलता रहा । स्त्री हँसती रही । फिर उसने उसकी ओर देख कर मधुर हँसी हँसते हुए कहा—“आपका यह कुत्ता तो सचमुच बहुत प्यारा जानवर है ।”

“जी, हाँ ! संयोग से हाथ लग गया. नहीं तो आप जानती हैं, अच्छी नस्ल का जानवर बड़ी मुश्किल से हासिल होता है ।”

स्त्री ने अपने बुन्दां को छूकर कहा —“क्या इसके पुरखों का पता आपके पास है ?”

“जी, हाँ ! मुझे पता है । यह खालिश फाक्स टेरियर, दरअसल

में जरूर रोऊँगी !

उसी की किस्म से है । बस, जरा प्यार करने के लिए रख लिया जाता है ।”

स्त्री ने जवाब में इस तरह सिर हिलाया, मानो वह उसकी अपेक्षा इन मामलों को ज्यादा अच्छी तरह समझती हो ।

फिर इधर-उधर की बातों के बाद वह आगे खाना हो गई ।

वह उसे देखता रहा । उसने पहले दिन वाले भड़कीले कपड़े पहन रखे थे । हल्की धूप में उसके कपड़े पहले दिन की तरह ही जगमगा रहे थे । वह आई और चली भी गई । वह उसे देखता रहा । उसका दिल सीने को कैद से आज़ाद हो जाना चाहता था । आज वह कल से भी अधिक आकर्षक दिखाई पड़ रही थी । कुछ स्त्रियों की आँखें सुन्दर होती हैं, कुछ के हाथ, कुछ के हाँठ, कुछ की अदायें । लेकिन उसके लिये उस स्त्री का पूरे का पूरा शरीर सिर से पाँव तक आकर्षक था । वह उस पूर्ण शरीर के स्पर्श का इच्छुक था । उसे वह बिल्कुल ठीक तरह की स्त्री दिखाई दी, जिसके लिए उसका मन हमेशा तड़पा करता था । उसकी भूख इतनी सच्ची और स्वाभाविक थी कि उसे क्षण भर के लिए भी यह खयाल न आया कि वह एक गलत रास्ते पर चल रहा था । वह जानता था कि यह रास्ता कौटों से भरा है । लेकिन वह यह नहीं जानता था कि इस रास्ते पर चलना नैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी बुरा था । उसने इस ओर बिल्कुल ध्यान ही न दिया । यद्यपि अब उसकी आयु बत्तीस वर्ष से ऊपर हो चुकी थी, लेकिन वह स्त्रियों के मामले में सदा शर्मिला ही रहा । केवल उसकी पत्नी ही वह स्त्री थी जिससे वह निःसंकोच रूप से मिलता-जुलता था । परस्त्री के सामने वह आँख न उठा सकता था । यह एक आश्चर्यजनक बात थी, कि जो व्यक्ति अपने हृदय में भड़कती हुई आग लिये फिरता था, उसके सामने जब कभी कोई नौजवान लड़की या स्त्री आ जाती, तो उसके हाथ पाँव फूल जाते । जवान लड़खड़ाने लगती । शायद उसे यह खयाल था कि कहीं कोई स्त्री

के उस मन के भावों को ताड़ न ले और शायद उसे अपने-आप पर भरोसा भी नहीं था। वह समझता था कि उसका राज उसकी सूरत से ही प्रगट हो जायगा। यदि कभी वह स्त्रियों के जमघट में बैठ जाता, तो नई-नवेली दुलहिन की भाँति धरती की ओर ही देखता रहता। वह मन में कई स्त्रियों की कद्र करता था, उन्हें पसन्द करता था। वह उसके सौंदर्य का प्रशंसक था, लेकिन वह यह राज प्रगट करने से डरता था। यह राज जाहिर करने के लिए उसे मुँह खोलने की भी कुछ ज़रूरत न थी। बस, उसकी आँखें और उसके देखने का अंदाज ही काफी था।

यह पहली स्त्री थी, जिसके सामने वह नहीं शर्माया। वह स्त्री इतनी पूर्ण स्त्री थी, उसका स्त्रीपन इतन व्यापक था, वह अपने स्त्री होने से इतने पूर्ण रूप से परिचित थी कि पुरुष का उसके शरीर के दर्शन या स्पर्श से आनंदित होना उसके लिए एक स्वाभाविक बात थी। पुरुष का उस पर न्योछावर होने के लिए अपनी इच्छा प्रगट करना उसके लिए कोई असाधारण बात न थी। वह पुरुष के लिए पैदा हुई थी। उसने पुरुष के हाथ में हाथ देकर चलने के लिए जन्म लिया था।

वह उस स्त्री की महानता का उसी तरह कायल था, जिस प्रकाश में चमकने वाले सूर्य का, जिस तरह आँख-मिचौनी खेलते हुए तारों में मुसकुराने वाले चाँद का, जिस तरह आत्मा को ताज़गी पहुँचाने वाली फर्राटें भरती हुई हवा का, या जिस तरह हर ऊँचे-नीचे टीले, महल और भोपड़े पर बरसने वाली वर्षा का। वही असली स्त्री थी, जो आदि-काल से मस्तानी चाल में चली जा रही थी। वह उसकी पत्नी थी, जिसे वह अपनी गोद में बैठा कर उसके शरीर से असीम आनन्द प्राप्त कर सकता था। वही उसकी माँ थी, जिसकी गोद में मुँह छिपा कर वह फूट-फूट कर रो सकता था। वही उसकी बहन थी, जिसकी उँगलियों के स्पर्श से उसके शरीर के रोम-रोम को असीम शान्ति और सुख का अनुभव होने लगता था। वही उसकी बेटी थी, जिसके माथे को चूम कर

मैं जरूर रोजूँगी !

वह अपना पितृ-प्रेम प्रकट कर सकता था । वह स्त्री उसके लिए सब कुछ थी । मानव अस्तित्व में सिमट कर भी वह सम्पूर्ण सृष्टि में फैली हुई थी । उसे ऐसा अनुभव होता था कि उस स्त्री को पा लेना उसके वश की बात नहीं । जिस प्रकार बिन्दु के लिए समुद्र को अपने में खपा लेना नामुमकिन था । वह कभी भी उस स्त्री को थाम न सकता था । हाँ, वह स्वयं ही उसमें समा सकता था । उसके दिल में ऐसी जलन और दिमाग में ऐसी तपन थी कि वह अपने-आपको मिटा देना चाहता था । उस स्त्री को देख कर वह अपनी भावनाओं का निरीक्षण कर सकता था । क्या वह आँखों में आँसू भर कर उसके चरण छू ले, या उसका हाथ थाम कर वे दोनों इकट्ठे नहर पर चले जायँ, जहाँ वे रेत के विरौंदे बना-बना कर खेलें, या वह उसका माथा चूम कर उसकी पीठ पर हाथ फेरे ।

उसका दिमाग इस मानसिक कशमकश का हल सोचने में बिलकुल असमर्थ था । वह कीचड़ में दबे हुए मेढक की भाँति इतने दिनों तक बिलकुल चुप रहा । लावा अंदर-ही-अंदर उबाल खाता रहा । अब वह निकला । क्या ज्वालामुखी पर्वत के मुँह पर हाथ रख कर उसके अंदर से उबल-उबल कर बाहर आने वाले लावे को रोका जा सकता है ? उस अपरिचित स्त्री ने मानो एक चाकू से उस पके हुए फोड़े को चीर डाला था । वह दर्द के मारे चीख उठा था, लेकिन इसके साथ ही एक अवर्णनीय सुख भी नस-नस में समाता जा रहा था । खिंची और दुखी हुई इन्द्रियों को शान्ति प्राप्त हो रही थी । चाकू के स्पर्श पर वह मारे दर्द के तड़प भी उठता था, लेकिन वह उसकी पहुँच से बाहर भी नहीं रहना चाहता था...उसे इतना सुख और संतोष हो रहा था ।

उसे आज स्पष्ट रूप में पता चल गया था कि वह क्यों इस विस्तृत संसार में खोया-खोया-सा घूमा करता था, वह कौन सी पुकार थी, जो उस शोर-गुल में सुनाई दिया करती थी, वह क्यों प्रत्येक राही के साथ कुछ दूर तक अनायास भागा-भागा चला जाया करता था ? लेकिन यह हालत

बेचैनी और दर्द की थी ! शान्ति ऐसी ही थी, जैसे गर्मियों के दिनों में भुलस देने वाली तीव्र लू में शीतल हवा का कोई झोंका मनुष्य के तपते हुए माथे और कानों को छू कर निकल जाय ।

प्रतिदिन संध्या समय वह दाढ़ी बना कर साफ-मुथरे कपड़े पहन लेता और फिर कुत्ते को साथ लेकर बाहर निकल जाता । कभी सड़क पर घूमता । कभी अपने बाड़े के इसी ओर टहलता । उसकी निगाह सदा उसी तरफ जमी रहती, जिस तरफ से वह स्त्री आया करती थी । वह नित्य नये कपड़े पहनती । एक तो उसे कपड़े पहनने का सलीका आता था और फिर उस पर कपड़े खूब सजते थे । उसके शरीर पर हर तरह का लिबास खिल जाता था । जो लिबास उसके शरीर को छू लेता, उसकी खूबसूरती और आकर्षण दूना हो जाता ।

वह हर रोज उसे देखा करता था । हरबार वह निश्चय करता था कि उससे बात-चीत करेगा । लेकिन जब वह सामने आती, तब वह कुछ न कह पाता था । इसका कारण उसके सौंदर्य का रोब न था, बल्कि कुछ और ही बात थी, जिसे वह स्वयं न समझता । जैसे वह उससे क्या बात कहे ? क्या वह यह कहे कि अगर उसे कुत्ता पसंद हो, तो वह ले ले ? लेकिन इसका कोई कारण होना चाहिए । अखिर एक स्त्री इस तरह बिना किसी सम्बन्ध के कुत्ता लेना क्यों पसंद करेगी । वह न जाने इसे क्या समझ बैठे । उसने सोचा कि स्त्री को कुत्तों से बहुत दिलचस्पी है, इसलिए उसने कुत्तों पर कुछ किताबें पढ़ डालीं, जिसमें कि यदि इस विषय पर बात-चीत हो, तो वह उसे अपने विस्तृत ज्ञान का प्रमाण दे सके । लेकिन फिर कभी इस विषय पर बात ही न हुई ।

वह स्वयं हैरान था कि वह उससे सम्बन्ध स्थापित करने में क्यों असमर्थ था । स्त्री का व्यवहार निराशाजनक न था । इतनी बेकरारी से उसने आज तक किसी स्त्री की ओर न देखा था । लेकिन इसके बावजूद स्त्री के माथे पर कभी कोई बल न दिखाई दिया । यदि वह उससे

मैं जरूर रोऊँगी !

कोई बात कहता, 'तो हँस कर जवाब देती। लेकिन वह अधिक देर तक बात-चीत का सिलसिला जारी न रख सकता था। इन दोनों के बीच एक बेमानी-सी खामोशी छा जाती, और स्त्री चुपचाप आगे बढ़ जाती। वह उसे देखता रह जाता। यहाँ तक कि वह मोड़ पर घूमकर गायब हो जाती।

उसकी पहली तीव्र भावना मिटती जा रही थी। उस स्त्री की ओर देखना, उसके आकर्षक शरीर पर नज़रें दौड़ाना उसे इतना स्वाभाविक लगता था, मानो यह उसका पूरा अधिकार था जिसे स्त्री की नाराज़ी भी नहीं छीन सकती थी। इस स्त्री ने बोतल के प्रेत की भाँति फैलकर उसके विचारों को पर लगा दिये थे। और वह पलक झपकाते में आखिरी ऊँचाई पर पहुँच गया था। शायद यह पहली उड़ान वर्षों के प्रतिबंधों से छुटकारे के अवसर पर इतनी ऊँचाई पर पहुँच पाई थी। और फिर वह आप ही आप भयभीत हो गया, मानो एक बच्चा अपनी धुन में किसी ऊँची मीनार पर चढ़ जाय, और फिर नीचे की ओर देखकर डर के मारे रोने लगे। इस प्रकार वह पीछे हटने लगा। पहले उसने अपने आपको धिक्कारा। इससे उसका आत्माभिमान जाग उठा, लेकिन फिर वह जोश क्षणिक सिद्ध हुआ। वह दिन-पर-दिन कमजोर होता जा रहा था, वह अपनी कमजोरी महसूस कर रहा था। लेकिन उसे अनुभव हुआ कि वह अब पाँव पर खड़ा नहीं रह सकता। इस अनुभव के साथ ही उसकी आत्मा पर बादल-से जमा होने लगे।

उसने स्त्री की ओर देखा कि शायद उसे धोखा हुआ हो। शायद वह वास्तव में वह स्त्री न हो, जिसको वह समझे बैठा था। वह उसे गौर से देखता रहा, सिर से पाँव तक। उसके शरीर का प्रत्येक अंग, उसकी प्रत्येक गति-विधि...लेकिन वह कोई ऐसी बात न ढूँढ़ सका, जिसके कारण उसे अपना पहला खयाल बदलना पड़े।

स्त्री वही थी, उसकी महानता भी वही थी, उसका स्थान भी वही था, लेकिन वह इस योग्य न था। वह स्त्री के योग्य न था—वह केवल

उन्हीं स्त्रियों के योग्य रह गया था, जिन्हें भूल से स्त्रियाँ कहा जाता था... इस विचार के साथ उसके दिल पर और भी गहरा अंधकार छा गया। उसने अपनी पराजय स्वीकार कर ली।

जब वह हार मान चुका, तो स्त्री ने उधर से आना छोड़ दिया।

उसके मन में विचित्र प्रकार की खटक पैदा हुई। उसकी खूराक कम हो गई। दुनिया की चीज़ों से दिलचस्पी न रही। वह खोया-खोया-सा सड़क पर जा खड़ा होता और उस तरफ देखने लगता, जिधर से वह स्त्री आती थी। दूर केले के झुण्ड के पास किसी बँगले के बाड़े के करीब से होकर वह इस तरफ आया करती थी। पग-पग चलती हुई उसके करीब पहुँच जाती, और फिर धीरे-धीरे चलती हुई दूसरी मोड़ से घूमकर गायब हो जाती।

वह कहाँ से आती थी? किधर को जाती थी? कभी कभी उसे उस मोड़ पर एक शोला-सा लपकता हुआ दिखाई देता, जो कुछ क्षणों में गायब हो जाता।

अब उसने सड़क पर जाकर उसका इन्तजार करना छोड़ दिया। वह अपने कमरे के अन्दर पलंग पर पेट के बल लेटे-लेटे खोई-खोई नज़रों से सड़क की तरफ देखा करता।

पत्नी पास बैठी बातें करती। बच्चे शोर मचाते, चीखते और चिल्लाते। रोंडियो सितार और बंसरी की तानें उड़ता। उनके पिछ्छवाड़े वीरान जगह में एक बड़े पेड़ के साथ लटकी हुई चमगादड़ें अंधकार बढ़ते ही आसमान की तरफ उड़ जातीं। जब सूर्योदय होता, तो वे फिर अपनी-अपनी जगह दबक जातीं।

उसके दिल में मीठा-मीठा दर्द कुछ इस तरह बैठ गया था, जैसे पाँव में काँटा चुभकर टूट जाय और वह जगह पक जाय। पीप निकले लेकिन काँटा ज्यों का त्यों रहे... और फिर कभी कोई दुख न दे। शरीर का अंश बन कर रह जाय और कभी-कभी जब खटके, तो बहुत हलका और मीठा-सा दर्द महसूस हो।

प्रतिध्वनि

३ जून सन् १९२३ की शाम को तूफ़ान मेल तपती हुई पटरियों पर अन्धाधुन्ध गुजरात की ओर दौड़ा जा रहा था ।

मुनीर अहमद इन्टर क्लास के डिब्बे में चुपचाप और निश्चेष्ट बैठा था । धूल, कोयले के कणों और लू से बचने के लिये उसने सामने की खिड़की का मोटा शीशा ऊपर को चढ़ा दिया था । शीशे में से पीला आकाश, फैले हुए खेत और दरखतों के झुण्ड घूमते हुए दिखाई दे रहे थे ।

डिब्बे में बहुत कम लोग थे । कुछ लोग बातें कर रहे थे । अधिकाँश धोती के पल्लू या किसी अखबार से पंखा झलते ऊँच रहे थे । उनकी कनपटियों और ठोड़ियों पर पसीने की बूँदे झलक रही थीं ।

मुनीर अहमद एक पतला-दुबला-सा नाटे कद का व्यक्ति था। उसके चेहरे की बनावट छुहारे के समान थी। आँखें छोटी-छोटी और चमक से खाली। हाथ चूहे के पंजों की तरह बिलकुल हलके-फुलके, उंगलियाँ पतली-पतली। हाथों के पीछे भी नसें उभरी हुई। देखने में वह एक सरल स्वभाव और दुर्बल प्रकृति का आदमी लगता था। चेहरे से किसी प्रकार की तीव्र भावनाओं का प्रदर्शन नहीं होता था। जिन्दगी में उसे जो कुछ पेश आ चुका था, वह उससे अब एक तरह का समझौता कर चुका था।

सन् १९१२ में डाक्टरी पास करने के बाद उसने लाहौर में प्रैक्टिस शुरू कर दी थी, लेकिन उसमें उसे ज़रा भी सफलता न मिली। इस व्यवसाय में आदमी के व्यक्तित्व और उसकी चर्च-ज़बानी से ही लोग अधिक प्रभावित होते हैं। लेकिन मुनीर अहमद न केवल अपनी कला में कुछ कच्चा था बल्कि उसकी ज़बान पर भी ताला पड़ा हुआ था। रोगी को देख कर वह घबड़ा जाता था, और रोगी उसकी घबराहट देख कर परेशान हो जाता था... वह रोगी की कलाई हाथ में लेकर इतने मूर्खतापूर्ण ढंग से आँखें झपकाता कि रोगी को विश्वास हो जाता कि डाक्टर को उसके रोग का पता नहीं चला। उसका व्यक्तित्व तो कुछ भी नहीं था। यह भी कैसी विचित्र बात है कि लोग मोटे ताज़े डाक्टर को देखते हैं तो समझते हैं कि वह सचमुच योग्य है; और यदि कहीं मुनीर अहमद जैसे व्यक्ति को देख पायें तो यही समझते हैं कि यह डाक्टर तो आप ही मर रहा है, हमारा इलाज क्या करेगा ?

गाँव में उसके बूढ़े माता-पिता रहते थे, जिन्होंने उम्र भर की कमाई उसकी शिक्षा पर खर्च कर दी थी, और इस पर खुश थे। यद्यपि वे नक़्द रुपया बेटे के शिक्षा पर खर्च कर चुकी थे, लेकिन उनकी कुछ पैतृक सम्पत्ति भी थी। कुछ ज़मीन थी, एक रहट था, कच्ची ईंटों का एक मकान था, फिर उनका लड़का डाक्टर बन कर रुपया भी कमा

मैं जरूर रोऊँगा !

रहा था। यद्यपि मुनीर अहमद की प्रैक्टिस (१००) माहवार से कभी आगे नहीं बढ़ती थी, और लाहौर जैसे शहर में इतनी कम प्रैक्टिस कोई महत्व न रखती थी। लेकिन उसके माता-पिता को कोई शिकायत न थी। वह हर महीने एक दिन के लिये अपने गाँव चला जाता। साठ-सत्तर रुपया अपने बाप के हाथ पर रख देता। उसकी माँ उस दिन फूली न समाती। हँस-हँस कर पड़ोसियों से बातें करती। उसका बाप अपना रुपया लोहे की एक आलमारी में रक्खा करता था। मुनीर चाहता था कि कुल रकम बैंक में जमा रहे, लेकिन उसका बाप पुराने खयाल का आदमी था, इसलिये वह उसका दिल नहीं दुखाना चाहता था। गाँव वाले इस बात से बिलकुल बेखबर थे कि मुनीर अहमद साठ सत्तर रुपया माहवार घर वालों को लाकर देता है। जब कभी मुनीर अहमद गाँव में आता तो कोट पतलून पहने और टाई लगाये होता। उन दिनों हैट और कपड़े कभी कभार ही देखने में आते थे। इसलिये खेतों में काम करने वाले अपरिचित ग्रामीण उसे कोई बड़ा अप्सर समझ कर सलाम भी कर दिया करते थे।

मुनीर अहमद का खर्च बहुत कम था। आटा, घी, शक्कर और सत्तू आदि तो वह घर से ले जाता था। दूसरे खर्चों का जोड़ चालीस रुपये माहवार से अधिक न होता था। हाँ, कोट और पतलून वह जरूर पहनता था। उसका विचार था कि यदि वह अंग्रेज़ी कपड़े पहनना भी छोड़ दे तो लोग उसे बिलकुल ही दुष्टपुंजिया समझने लगेंगे।

सन् १९१४ में लड़ाई शुरू हो गई। सन् १९१५ में वह दोस्तों के कहने सुनने से फ़ौज में नौकर हो गया। डाक्टरी पास नौजवानों की फ़ौज में बड़ी जरूरत थी। और फिर मुनीर अहमद का तीन वर्ष का व्यवहारिक अनुभव भी उसकी योग्यता का एक प्रत्यक्ष प्रमाण था। फ़ौज में नौकर होने के बाद जब वह वर्दी पहन कर गाँव में पहुँचा तो उसका

बाप भौंचक्का-सा रह गया। उसने समझा कि बेटा कोनवाला बन गया। मुनीर अहमद ने हर सम्भव तरीके से बाप को अपना 'रैंक' समझाने की कोशिश की, लेकिन बाप ने उसकी बातों की तरफ़ कुछ ध्यान ही नहीं दिया। उसे विश्वास था कि उसके बेटे के अधिकार अब बहुत बढ़ गये हैं, इसलिए गाँव के लोग उनसे दबकर रहेंगे।

वह फरवरी में भर्ती हुआ और मई में उसे समुन्दर पार जाने का हुक्म मिला। उसकी माँ तो रो-रो कर हलाकान हो गई। यहाँ तक कि उसके चले जाने के बाद जल्दी मर गई। उसकी शादी का भी ज्यादा असर न हुआ था। सन् १९१५ के आखीर में उसे बाप की एक चिट्ठी फ्रांस में मिली कि उसके यहाँ एक लड़की पैदा हुई थी और उसकी पत्नी का देहान्त हो गया।

सूबेदार मेजर मुनीर अहमद चुपचाप बैठा खिड़की के शीशे में से चक्कर खाते हुए खेतों और बिजली के खम्भों पर बैठे गिद्धों की ओर देख रहा था। शाम हो चुकी थी। वज़ीराबाद से आगे गाड़ी निकल आई थी। सहसा उसकी भवें हिलने लगीं। अब गाड़ी ऐसे स्थानों से होकर गुज़र रही थी जिनसे वह खूब परिचित था। वह उन बलखाती हुई नहरों पर नहाने के लिये जाया करता था। किसी पीर साहब का टूटा-फूटा मक़बरा भी नज़र आ रहा था। उसके करीब एक मसजिद भी थी।

गाड़ी मन्डी-डागराँ के स्टेशन पर रुके बिना ही आगे बढ़ गई। उस छोटे-से स्टेशन से उसका गाँव एक मील की दूरी पर था। पहले जब वह लाहौर से आया करता था तो पैसंजर ट्रेन उसे इसी स्टेशन पर उतार देती थी। उस समय भी बबूल के दरख़तों में से मकान का मद्धिम-सा खाका नज़र आ रहा था। स्टेशन से आध मील के फ़ासले पर उनका अपना रहट था। अपने रहट पर निगाह पड़ते ही वह बेचैन-सा हो गया।

मैं जरूर रोऊँगी !

वह दूर ही से उन स्थानों को भली-भाँति देख सकता था। वह अपने रहट को इतनी अच्छी तरह पहचानता था कि गाड़ी में बैठे-बैठे उसे मालूम हो गया कि कौन-सा दरखन कट चुका है, कौन सी दीवार गिरा दी गई है। उस तरफ़ गन्ने पेरने का बेलन था। ज़मीन में गड़े हुए बेलन के पास एक आर को बढ़ी हुई छोटी-सी दीवार थी। उसी दीवार के निकट उसने पहली बार अपनी भावी पत्नी का मुँह चूमा था।

जब वह लाहौर में प्रैक्टिस करता था तो एक बार गाँव में एक रिश्तेदार की शादी के मौके पर उसे अधिक दिनों के लिये दुकान बन्द करके गाँव जाना पड़ा और जब वह घर पहुँचा तो उसने देखा कि उसके घर में एक खूबसूरत जवान लड़की बैठी हुई है। वह उसे पहचान न सका।

उसकी माँ कहने लगी—“अरे बेटा ! तू डाक्टर हो गया है और फिर इसे नहीं पहचानता ?”

मुनीर अहमद को कभी-कभी माँ की बातें बड़ी बेतुकी मालूम होने लगती थीं। उसकी माँ ने इसी पर बस नहीं किया, बल्कि वे बातें बनाती ही चली गईं। यहाँ तक कि वह लड़की हँसने लगी मुनीर पहले ही खिसियाना हो रहा था और फिर उसकी माँ... उसने लड़की की तरफ़ देखा तो उसकी हँसी बन्द हो गई। उसने अपने दोनों हाँठ खूब अच्छी तरह भींच लिये। शायद लड़की पर उसकी टाई का रोब जम गया था।

वह उसके सगे पूका की लड़की बेगमा थी।

बेगमा क्रदावर और मजबूत हाथ-पाँव की लड़की थी। उसका शरीर अच्छे स्वास्थ्य के कारण जरा भारी अवश्य था लेकिन बेडौल और ढीला-ढाला नहीं था। अपने घर का सारा काम-काज वही करती थी। आटा पीसना, चर्खा काटना, रुई धुनकना, गाय भैंस की सानी करना, खेतों पर भाइयों के लिये खाना ले जाना, रहट से पानी की तीन-तीन गागरें एक साथ लेकर आना और इस पर अच्छा खाना और खुली हवा ! फल-स्वरूप

वह शहर की नाजुक बदन, पिचके गाल, सपाट छाती वाली लड़कियों के विपरीत खूब भरे हुए शरीर की स्वस्थ लड़की थी...कम से कम मुनीर अहमद को वह बहुत पसन्द था। लेकिन ऐसी लड़की से मुहब्बत का सवाल पैदा ही नहीं होता था।

पहले दिन बेगमा ने ही उसे खाना खिलाया। वह पलंग पर सिर झुकाये बैठा खाता रहा। फिर बेगमा उसकी ओर देख कर मुस्कुराती थी, और वह भेंप मिटाने के लिये इधर-उधर देखता था। जब वह अकेला होता और विवाह वाले घर से लड़कियों के ढोलक बजाने और गीत गाने की आवाजें सुनाई देतीं तो बेगमा न जाने कहाँ से आ टपकती। घर में इस तरह घूमती जैसे कोई चीज़ ढूँढ रही हो। कभी खूँटी से नई रङ्गी हुई चुनरी उतार कर सिर पर डाल लेती। कभी लकड़ी की चौकी पर बैठ कर ऐड़ियाँ रगड़-रगड़ कर पाँव धोने लगती। कभी-कभी ज़रा-सा रोटी का टुकड़ा नमकीन छाज के साथ खा लेती। साराँश यह कि किसी न किसी बहाने से घर में ज़रूर आती और किसी न किसी हीले से उससे बात भी ज़रूर करती।

एक दिन रात के वक्त जब आँगन में दिया जल रहा था, सब लोग खाना खाकर ब्याह वाले घर जाने का तैयार थे और मुनीर अहमद झुककर जूता पहन रहा था कि उसकी पीठ पर एक कंकड़ आ लगा। उसने घूम कर देखा तो बेगमा ने शरारत से मुस्कराते हुए मुँह दूसरी तरफ कर लिया था।

इसी तरह बेतकल्लुफी हो गई। एक दूसरे पर कंकड़ फेंके जाने लगे। एक दिन शाम को वह अपने रहट पर गया। उसका बाप ब्याह वाले काम में फँसा था। शाम का वक्त था। रहट धीरे-धीरे चल रहा था। वह तहमद बाँधे, काला पम्प शू पहने रहट की गद्दी पर बैठा था और मन-ही-मन में अपने इस प्रेम के बारे में विचार कर रहा था। आखिर बेगमा की इन शरारतों और हँसी मज़ाक की तह में क्या राज़ था ?

मैं जरूर रोऊँगी !

शायद ये सब मौसूम शरारतें हों। बेचारी सीधे साधे स्वभाव की हँसोड़ लड़की है। यों ही दिल बहलावे के लिए चुहल करने लगती होगी। वह कितनी मजबूत, क़दावर और हसीन लड़की थी। उसके मुकाबले में वह दुबला पतला, नाटे क़द का और बदसूरत न सही, तो खूबसूरत तो हरगिज़ नहीं था। उसने सुना था कि गाँव की लड़कियाँ सीधे-सादे स्वभाव की होती हैं। जाहिरी टीप-टाप पर रीझ जाती हैं। हो सकता है कि बेगमा को उससे मुहब्बत हो गई हो...उसका दिल धड़कने लगा। बेगमा के शरीर के स्पर्श की कल्पना ही कितनी आनन्ददायक थी। जब कभी वह उससे छू जाता तो उसके शरीर में सिर से पैर तक सनसनाहट फैल जाती। बेगमा का शरीर मदिरा के एक भरे प्याले की भाँति छलका जाता था।

इतने में उसे एक कंकड़ आकर लगा।

उसका दिल बल्लियाँ उछलने लगा। उसने घूमकर देखा कोई भी सूरत न दिखी। उसने मुस्कराकर मुँह फेर लिया। वह हैरान था कि बेगमा इतनी दूर कैसे चली आई...सहसा फिर एक कंकड़ लगा। उसने तुरन्त सिर घुमा कर देखा और कच्ची दीवार की आँड़ में उसे चूड़ियों वाली गोरो कलाई की झलक दिखाई दी। वह धीरे-धीरे उसको ओर बढ़ा। इतने में उधर से तीसरा कंकड़ मारने के लिये हाथ उठा...बेगमा ने निशाना बाँधने के लिये भाँककर देखा और एकदम उसे सामने देख कर उसने प्रसन्नता की एक चीख मारी और भाग कर दूर जा खड़ी हुई। रहट के चारों ओर व एक दूसरे के पीछे भागते फिरे। बेगमा चीख-चीख कर हँस रही थी। तबले की एक दीवार जरा आगे को बढ़ी हुई थी। बेगमा मुनीर को चक्कर देकर उस दीवार के पीछे छिप गई। मुनीर दबे पाँव बढ़ा, तो बेगमा उसकी ओर से बेखबर दीवार के दूसरी ओर ताक लगाये खड़ी थी। उसकी चुनरी कंधों पर गिरी हुई थी। पीठ दीवार से लगी थी और दोनों हाथ दीवार पर टिके थे। घने वालों के साथ बंधी लम्बी चोटी पिंडालियों के ऊपर झूल रही थी। उसका दम फूला हुआ

प्रतिध्वनि

था। छतियाँ नीचे ऊपर हो रही थी...मुनीर चुपके से कदम नापता हुआ पहुँचा और उसने एकदम अपने दोनों हाथ बेगमा के दोनों ओर दीवार पर टेक दिये और उसे घेरे में ले लिया...वह चौंक कर चौंकी और फिर बिलबिला कर हँसने लगी। उस समय वह कितनी प्रसन्न थी ! रहट के उस खामोश काने से लगी हुई बेगमा...उसके नथुने फड़क रहे थे, गाल तमतमाये हुए थे, आँखें चमक रही थीं। न जाने उस समय मुनीर अहमद ने उसकी तरफ किन नजरों से देखा कि उसकी शांखी शर्म में बदल गई और वह आँखें झुका कर जमीन की ओर देखने लगा।

हर तरफ खामोशी छाई थी। सिर्फ पीपल की दरखन की डालियों में ताते फड़फड़ा रहे थे।

भाववेश में मुनीर अहमद की टोंगे काँप रही थी, “बेगमा !” उसका गला शुष्क हो रहा था।

बेगमा ने धीरे से ओढ़नी को संवार कर सिर ढाँपते हुए एक उच्चटती-सी निगाह मुनीर पर डाली तो उसके गाल लाल हो गये। वह ज़मीन की ओर देखती हुई बोली — “मुझे जाने दीजिए ”

मुनीर अहमद अपनी दोनों हथेलियाँ दीवार पर टिकाये खड़ा था। बेगमा ने हरकत की। लेकिन मुनीर की पतली-पतली बांहें उसे घेरे में लिये हुए थी। वह उनकी ओर ऐसे देखने लगी मानो वे लोहे की शलाखें हों, जिन्हें हटा देना उसकी ताकत के बाहर था।

मुनीर ने बड़ी नमी से उसे अपनी बांहों में ले लिया और बड़ी व्याकुलता से उसका गाल चूमा...बेगमा ज़मीन की ओर देखती रही। उसने अपना मुँह छिपाने की कोशिश नहीं की। उसके गाल खून की गर्मी से और भी गर्म हो गये। मुनीर ने कुछ टूटे-फूटे शब्द कहे और बार-बार उसके होंठ चूमने लगा। बेगमा ने शरीर ढीला छोड़ दिया... कितनी ज़िन्दगी थी उस जिस्म में, कितना अनोखा सुरू था...वे इसी

मैं जरूर रोऊँगी !

प्रकार एक-दूसरे से लिपटे हुए न जाने कितनी देर तक खड़े रहे ।

इंजन सीटियाँ देता हुआ चला जा रहा था । उसके रहट का दृश्य आँखों से ओझल होता जा रहा था ।...मुहब्बत की इस शुरूआत का अंजाम अच्छा हुआ । उन दोनों की शादी हो गई । अभी वे आठ महीने के लगभग ही एक-दूसरे के साथ रह चुके थे कि उसे हिन्दुस्तान से बाहर जाना पड़ा । उसे एक टॉग रण-चण्डी की भेंट चढ़ानी पड़ी...उसके चले जाने के बाद उसे अपनी पत्नी की एक चिट्ठी मिली, जिसमें उसने दूटी-फूटी उर्दू में लिखा था कि वह उसके बिना बहुत उदाम रहती है । स्वप्न में उसकी सूरत देवती है...लड़की का जन्म हुआ तो उसकी पत्नी मर गई । जब उसे इस बात की सूचना मिली तो वह रो पड़ा और उस पर इस समाचार का इतना गहरा असर पड़ा कि उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं और वह जीवन से इतना विरक्त हो गया कि युद्ध समाप्त होने के बाद भी वापस आने को उसका जी न चाहता था । उसने बाप का लिख दिया कि वह अपनी पोती का खयाल रखे । दो वर्ष पूर्व जब वह काहिरा में था तो मालूम हुआ कि उसके पिता का भी देहान्त हो गया । फिर उसके रिश्तेदारों की चिट्ठियों पर चिट्ठियाँ आने लगीं कि उसका चचा उसकी ज़मीन की सारी आमदनी बँटोर रहा है । उसके बच्ची का पालन-पोषण भी बेपरवाही से हो रहा है । आखिर वह स्वदेश की ओर चल पड़ा ।

उसकी ज़िन्दगी में अथाह उल्लास छप्पर फाड़ कर प्रविष्ट हुआ था । क्या वह स्वप्न में भी सोच सकता था कि वह इतनी सुन्दर प्रेम करने वाली पत्नी का पति बनेगा ? वह उस सुरूर और आनन्द को, जो उसे अपनी पत्नी से प्राप्त हुआ था, मरते दम तक नहीं भुला सकता था । यह उसका सौभाग्य ही था कि ऐसी सुन्दर और सघड़ पत्नी उसे प्राप्त हुई । लेकिन अभी उसने जाम हँठो से लगाया ही था कि वह हाथ से

छूटकर चूर-चूर हो गया। अब उसकी ज़िन्दगी इतनी नीरस, बल्कि कटु हो गई थी कि यदि उसे अपनी नन्हीं बच्ची का खयाल न होता तो वह कभी का आत्म-हत्या कर लेता। ...शेष जीवन अब वह उस अथाह आनन्द और सुन्दरता की देवी की याद में हो बिता सकता था। वह एक टाँग से लंगड़ा भी हो चुका था। पहले उसका विचार था कि वह दूसरी शादी कर ले, लेकिन अब उसे कोई खूबसूरत लड़की पसन्द नहीं कर सकती थी। उसने हार मान ली थी। अब वह अपना जीवन इसी तरह बिताने पर संतुष्ट था। उसका विचार था कि मौजूदा ज़मीन बेच कर वह दुनिया से अलग-थलग किसी शान्ति पूर्ण कोने में पड़ा रहे। जीवन के कोलाहल से उसे कुछ भी दिलचस्पी बाक़ी न रही थी।

डिब्बे में हलचल मच गई। गाड़ी गुजरात के निकट पहुँच रही थी। शहर के आस-पास उसे वे सब मकान और दरखान तथा छोटे-मोटे दुकानें याद थीं। एक लम्बे अरसे के बाद वह वापस आ रहा था। हर चीज़ पहले ही के समान थी। लेकिन इसके बावजूद उसके अपने जीवन में एक महान परिवर्तन हो चुका था। एक सरे से नक़शा ही बदल चुका था।

गाड़ी धीरे-धीरे चलती हुई प्लेटफ़ार्म पर रुक गई। बाहर के लोगों ने अन्दर की तरफ़ हल्ला बोल दिया और गाड़ी के अन्दर के लोग बाहर की तरफ़ लपके। लेकिन उसके डिब्बे में कोई गड़बड़ नहीं हुई थी। बाहर से दो कुली आये और उसे फ़ौजी वर्दी में देख कर उसका सामान उठा लिया। वह बग़लों में बैसाखियों दबाये बाहर निकला और कुलियों के साथ जब फाटक के बाहर आया तो उसने गाँव को जाने वाले टाँगों के लिये इधर-उधर निगाह दौड़ाई। एक आदमी से मालूम हुआ कि टाँग अभी व पस नहीं गया। बाज़ार से आने ही वाला है।

मैं जरूर रोज़ंगी !

मुनीर अहमद ने सामान एक दूकान पर रखवा और दूकानदार से कह दिया कि जब टाँगा आये तो उसका सामान उसमें रखवा दे । फिर वह बाज़ार की ओर चला गया । उसने सोचा कि थोड़ी देर सैर ही कर ले । शहर स्टेशन से काफी फ़ासले पर था । रास्ते में हर चीज़ से वह परिचित था । बाज़ार में वही पुरानी दुकानें और चहल-पहल थी । जगह-जगह कुम्हारों की दुकानें—खूबसूरत मराहियाँ, घड़े, प्याले, हाड़ियाँ, बघनी, चूड़े—हर चीज़ जानी पहचानी हुई थी । वही उजड़ु लोग, वही गन्दे बाज़ार, हर तरफ़ गर्द-गुबार, लम्बे-लम्बे पट्टों वाले जवान । वह टाँगे से उतर कर दोनों बँसालियों के सहारे बाज़ार के किनारे पर खड़ा हो गया । उसके शुष्क हाँठों पर एक फीकी-सी मुस्कराहट उत्पन्न हुई । जब उसने चने का खोमचा देखा तो उसका धैर्य जाना रहा । मसाले में लथ-पथ चनों से भरा परात, बीच-बीच में हरी मिर्चें, प्याज के कतले दुसे हुए — उसने दो पैसे के चने लिये और उन पर नाँवू निचुड़वा कर पत्ते के चमचे से उन्हें खाने लगा ।

इसके बाद वह इधर-उधर घूमता रहा । उसे कपड़ों के कुछ टुकड़े पसन्द आये तो उसने उसे अपनी बच्ची के लिये खरीद लिये । चचा के बच्चों के लिये रेवड़ियाँ और कुछ मिठाई ले ली और फिर टाँगे पर सवार हो कर जब स्टेशन पर पहुँचा तो उसके गाँव का टाँगा जाने के लिये तैयार खड़ा था ।

खेतों के बीच में से होकर टाँगा ऊबड़-खाबड़ कच्ची सड़क पर हच-कोले खाना चला जा रहा था । मुनीर अहमद अपने विचारों में खोया था । दिल पर उदासी के बादल छाये हुए थे ।

सोचते-सोचते उसे अपनी बच्ची का खयाल आया । वह नहीं जानता था कि अपने मन में उसकी कैसी कल्पना करे । शायद लड़की अपनी माँ की तरह खूबसूरत हो य स्वयं उसकी तरह कमज़ोर, बेडौल और साधारण रूप वाली । रास्ते में दूसरी सवारियों ने उससे कोई भी बात

नहीं की। सवारियाँ अगले गाँव की थीं और टाँग वाला एक नौजवान लड़का था, जो उससे परिचित नहीं था।

आखिर टाँगा उसके छोटे से गाँव तक जा ही पहुँचा। उसने टाँगे वाले को पैसे दिये तो गाँव के बाहर मोर्चियों के लड़के उसके गिर्द जमा हो गये। कुछ बड़े-बूढ़े भी ठिठक कर उसकी ओर देखने लगे। चमारों के लड़कों में से एक ने उसका सामान उठाया और वह अपने घर की ओर रवाना हो गया। काहिरा के शानदार और सुन्दर कहवा-खानों के बाद यद तंग गलियाँ कुछ अजीब-सी मालूम हो रही थीं। अपनी गली में पहुँच कर उसने अपने मकान के दरवाजे पर निगाह डाली। दरवाजा बन्द था। शायद जब से उसका बाप मरा था, तभी से बन्द होगा। दरवाजे के आगे, कच्चे चबूतरे पर ठाकरियों और सूखे पत्त गिरे पड़े थे।

साथ वाला मकान उसके चचा का था। उसने अन्दर दाखिल हो कर आवाज दी। उसका चचा हुक्का उठाये हुए बाहर आया। पहले कुछ क्षणों तक तो उसने उसे पहचाना ही नहीं। एक तो चिंताओं के कारण मुनीर की सूरत बदल गई थी, दूसरे अब वह एक टाँग से लँगड़ा भी हो चुका था। लेकिन उसने अपने चचा को पहचान लिया था। उसका चचा कहावर, सुर्खा लिए काले रंग का एक मोटा-तगड़ा व्यक्ति था। उसने कहा—“चचा ! मैं मुनीर अहमद हूँ। पहचाना नहीं क्या ?”

चचा के हाथ से हुक्का छूट गया। दोनों एक दूसरे से लिपट गये। चचा उसका हृदय और शुभचिन्तक था, लेकिन उसकी चची बड़ी चालाक औरत थी। वह भी आवाज सुनकर आ गई और दुआयें दे-दुकर इधर-उधर की बातें बनाने लगी। फिर वह मुड़ कर शर्बत बनाने के लिये अन्दर चली गई। मुनीर से अधिक देर तक खड़ा न रहा गया। उसने तुरन्त अपनी बच्ची का देखने की इच्छा प्रकट की। चचा ने कहा कि बच्चे बाहर खेलने के लिये गये हैं। देखता हूँ कि शायद वह घर ही में हो।

मैं जरूर रोऊँगी !

मुनीर अहमद ने सामान एक दूकान पर रखवा और दूकानदार से कह दिया कि जब टाँगा आये तो उसका सामान उसमें रखवा दे । फिर वह बाजार की ओर चला गया । उसने सोचा कि थोड़ी देर सैर ही कर ले । शहर स्टेशन से काफी फासले पर था । रास्ते में हर चीज़ से वह परिचित था । बाजार में वही पुरानी दुकानें और चहल-पहल थी । जगह-जगह कुम्हारों की दुकानें—खूबसूरत मराहियाँ, घड़े, प्याले, हाड़ियाँ, बधनी, चूड़े—हर चीज़ जानी पहचानी हुई थी । वही उजड़ु लोग, वही गन्दे बाजार, हर तरफ गर्द-गुबार, लम्बे-लम्बे पट्टों वाले जवान । वह टाँगे से उतर कर दोनों बैसाखियों के सहारे बाजार के किनारे पर खड़ा हो गया । उसके शुष्क हाँठों पर एक फीकी-सी मुस्कराहट उत्पन्न हुई । जब उसने चने का खोमचा देखा तो उसका धैर्य जाता रहा । मसाले में लथ-पथ चनों से भरा परात, बीच-बीच में हरी मिर्चें, प्याज के कतले दुसे हुए -- उसने दो पैसे के चने लिये और उन पर नाँवू निचुड़वा कर पत्ते के चमचे से उन्हें खाने लगा ।

इसके बाद वह इधर-उधर घूमता रहा । उसे कपड़ों के कुछ टुकड़े पसन्द आये तो उसने उसे अपनी बच्ची के लिये खरीद लिये । चचा के बच्चों के लिये रेवड़ियाँ और कुछ मिठाई ले ली और फिर टाँगे पर सवार हो कर जब स्टेशन पर पहुँचा तो उसके गाँव का टाँगा जाने के लिये तैयार खड़ा था ।

खेतों के बीच में से होकर टाँगा ऊबड़-खाबड़ कच्ची सड़क पर हच-कोले खाना चला जा रहा था । मुनीर अहमद अपने विचारों में खोया था । दिल पर उदासी के बादल छाये हुए थे ।

सोचते-सोचते उसे अपनी बच्ची का खयाल आया । वह नहीं जानता था कि अपने मन में उसकी कैसी कल्पना करे । शायद लड़की अपनी माँ की तरह खूबसूरत हो य स्वयं उसकी तरह कमज़ोर, बेडौल और साधारण रूप वाली । रास्ते में दूसरी सवारियों ने उससे कोई भी बात

नहीं की। सवारियाँ अगले गाँव की थीं और टाँगे वाला एक नौजवान लड़का था, जो उससे परिचित नहीं था।

आखिर टाँगा उसके छोटे से गाँव तक जा ही पहुँचा। उसने टाँगे वाले को पैसे दिये तो गाँव के बाहर मोर्चियों के लड़के उसके गिर्द जमा हो गये। कुछ बड़े-बूढ़े भी ठिठक कर उसकी ओर देखने लगे। चमारों के लड़कों में से एक ने उसका सामान उठाया और वह अपने घर की ओर रवाना हो गया। काहिरा के शानदार और सुन्दर क़हवा-खानों के बाद यदु तंग गलियाँ कुछ अजीब-सी मालूम हो रही थीं। अपनी गली में पहुँच कर उसने अपने मकान के दरवाज़े पर निगाह डाली। दरवाज़ा बन्द था। शायद जब से उसका बाप मरा था, तभी से बन्द होगा। दरवाज़े के आगे, कच्चे चबूतरे पर टीकरियाँ और सूखे पत्ते गिरे पड़े थे।

साथ वाला मकान उसके चचा का था। उसने अन्दर दाखिल हो कर आवाज़ दी। उसका चचा हुक्का उठाये हुए बाहर आया। पहले कुछ क्षणों तक तो उसने उसे पहचाना ही नहीं। एक तो चिंताओं के कारण मुनीर की सूरत बदल गई थी, दूसरे अब वह एक टाँग से लँगड़ा भी हो चुका था। लेकिन उसने अपने चचा को पहचान लिया था। उसका चचा क़हावर, सुर्खों लिए काले रंग का एक मोटा-तगड़ा व्यक्ति था। उसने कहा—“चचा ! मैं मुनीर अहमद हूँ। पहचाना नहीं क्या ?”

चचा के हाथ से हुक्का छूट गया। दोनों एक दूसरे से लिपट गये। चचा उसका हृदय और शुभचिन्तक था, लेकिन उसकी चची बड़ी चालाक औरत थी। वह भी आवाज़ सुनकर आ गई और दुआयें दे-दुकर इधर-उधर की बातें बनाने लगी। फिर वह मुड़ कर शर्बत बनाने के लिये अन्दर चली गई। मुनीर से अधिक देर तक खड़ा न रहा गया। उसने तुरन्त अपनी बच्ची का देखने की इच्छा प्रकट की। चचा ने कहा कि बच्चे बाहर खेलने के लिये गये हैं। देखता हूँ कि शायद वह घर ही में हो।

मैं जरूर रोऊँगी !

थोड़ी देर बाद चचा की आवाज़ आने लगी—“चलो बेटा ! तुम्हारे अब्बा आये हैं ।”

वह आगे बढ़ा और फिर रुक गया । दरवाजे में एक मैली-कुचैली, दुबली-पतली, अस्त-व्यस्त वाला वाली खूबसूरत बच्ची खड़ी थी । उसका रङ्ग पीलापन लिये हुए था । मुनीर अहमद एक क्षण के लिये तामोश रहा । वह उसकी बच्ची थी—उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं । भवें बड़ा-ही सुन्दर मुकाव लिए हुए । गालों को हड्डियाँ कमजोरी के कारण कुछ उभर आई थीं । बच्ची उसको देखकर खुश नहीं हुई, बल्कि वह उदास, मौन और निश्चल खड़ी रही ।

मुनीर अहमद बैसाबियाँ टेकने हुये आगे बढ़ा । चचा ने लड़की को उठाकर उसकी बांहों में दे दिया । मुनीर अहमद ने अपनी बेटी को गले से लगाकर उसके माथे पर हाँठ रख दिये । चचा शर्बत लेने के लिये अन्दर चला गया और वह उसे इसी तरह गले से लिपटाये खड़ा रहा, “मेरी बच्ची !...मेरी बच्ची !!”

उसके शरीर की थकावट दूर हो गई । उसे ऐसा मालूम हुआ मानो किसी ने मंत्र फूँक कर उसके सारे दुख शरीर से बाहर खींच लिये हों ।

सु । और सन्तोष की लहर उसे अपने हाथों और पाँव के नाखूनों तक महसूस हुई । वह चारपाई पर बैठ गया । उसने बच्ची की ओर देखा । बच्ची की आँखों में मुस्कुराहट खेल रही थी !...ऐसा लगता था मानो घर में उसे प्यार करने वाला कोई नहीं था । न जाने घर वालों का कैसा सलूक था । बच्ची की आँखों के नीचे गढ़ों की गहराइयों में एक ऐसी उदासी थी, जिसे देखकर मुनीर अहमद का दिल भर आया ।

उसके दिल में अपने चचा के खिलाफ़ जबरदस्त शिकायत थी, लेकिन उसे वह जवान पर न लाया । चचा ने शर्बत का लोटा और गिलास एक स्टूल पर रख दिया...इतने में गली के लोग भी जमा हो गये । वे लोग जो उसके घनिष्ठ मित्र थे, उसे झुक-झुक कर सलाम करने लगे ।

उनमें से बहुतों ने उसे पहिचाना ही नहीं। वे उसे पुलिस का कोई आफ़सर समझ बैठे। इधर-उधर के बच्चे भी जमा हो गये। और जब उन्होंने आशाँ को एक वर्दी-धारी आदमी की गोद में बैठे देखा, तो वे बड़े प्रभावित हुये। और नन्हीं बच्ची को भी इस बात का अनुभव हो गया कि अब वह अपने बाप की गोद में है।

जब मुनीर अहमद को शर्बत का गिलास दिया गया तो उसने पहले बच्ची के मुह से लगा दिया। बच्ची ने अपनी बाँहें उसके गले में और भी कसते हुये इनकार में सिर हिला दिया। उसकी मंशा थी कि पहले उसका बाप शर्बत पी ले। वह एक समझदार बच्ची थी। मुनीर ने पुचकार कर कहा— ‘नहीं बेटी ! पियो...शाबाश, शाबाश...’

थोड़ी देर के बाद चचा के बच्चे भी आ गये। मुनीर ने रेवड़ियों और लड्डुआँ की टोकरी उनको सौंप दी। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद उसने अपने घर की चाभी माँगी और अपनी बच्ची को गोद में उठाये हुये घर की ओर गया। बाहर का ताला खोल कर ड्योढ़ी में दाखिल हुआ, और दो ही कदम बढ़कर ठिठक गया। फिर उसकी आँखों के सामने बिजली की भाँति एक दृश्य कौंध गया। जब उसे हिन्दुस्तान से बाहर जाने का हुक्म मिला तो समय बहुत कम मिला था, इसलिये वह भागा-भागा घर वालों से मिलने एक ही दिन के लिए आया था। दिन भर ज़रूरी सामान बाँधने में लगा रहा। फिर गई रात तक आपस में बातें होती रहीं। उसकी माँ सारी रात रोती रही—पत्नी से खुलकर बातें करने के लिये समय ही न मिला।

दूसरे दिन रवाना होने से पहले उसका सामान टाँगे पर रख दिया गया। वह इसी ड्योढ़ी में बैठा था। पास ही उसकी माँ रोये जा रही थी। उसने उसे तसल्ली देने की कोशिश की। लेकिन उस बुढ़िया के तो हवास ही ठिकाने न रहे थे। फिर न जाने वह किस काम से उठ कर गली की ओर चली गई। इतने में बायें हाथ वाले दरवाजे में से

मैं जरूर रोऊँगी !

उसकी पत्नी अन्दर दाखिल हुई। वह दृश्य उसके मन पर अंकित होकर रह गया।

उस समय उसकी प्यारी पत्नी की काली आँखों के कोनों में आँसू भलक रहे थे। वह महीन मलमल की काने रङ्ग की कमीज़ पहने हुए थी। कमीज़ के नीचे जालीदार बनियाइन था। उसकी पतली लचकदार कमर का दोनां खिंचाएँ जैसे-जैसे ऊपर उठती थीं, वैसे-वैसे फैलती जा रही थीं। उसकी छत्रियाँ जिन्हें अंगिया की आवश्यकता ही नहीं थी, कितनी आकर्षक थीं। सिर ढाँकने के लिये जत्र दानों हाथ ऊपर उठाये तो उसकी बनियाइन ऊपर को सरक गई और तनी हुई चिकनी खाल पर उसकी कोंड़ी की भौंति मनोहर नाभि दिखाई पड़ने लगी। पेट के सुन्दर उभार पर एक बड़ी ही मनोहर गहराई... वह उस शरीर का भूखा था। वह उस बदन की पूजा करता था। वह तने हुये चिकने—मौस से भरे कूल्हों पर क्रिदा था। उस शरीर की लचकदार खाल की गर्मी और नमी को महसूस करके उस पर मदहोशी-सी छाने लगती थी... वह लड़खड़ाते हुये कदमों से आगे बढ़ा। वह नहीं जानता था कि जिस शरीर में मादक शराब लहरें मारती थीं, उसे आनन्दित होने से बढ़कर दुनिया में और क्या चीज़ हो सकती थी... वह उसे अपनी बांहों में कमने ही वाला था कि उसकी माँ आ गई। उसके कदम रुक गये। उसने आँखों ही आँखों में विदा ली और आँखों ही आँखों में पत्नी को आश्वासन दिया कि वह शीघ्र ही लौट आयेगा।

ड्यूंदो में खड़े-डे आज कई वर्ष बाद वही पुराना दृश्य उसकी आँखों के सामने फिर रहा था। उसका दिल बैठने लगा उसे ऐसा लगा, मानो इस बार वह फिर इन्द्रियो की दुर्बलता का शिकार हो जायगा। उसने दीवार का सहारा लिया और बड़ी मुश्किल से अपनी बच्ची को संभाले रक्खा। थोड़ी देर बाद उसका सामान भी आ गया। अपने

वीरान घर के बीचो-बीच उसने चारपाई डाल कर बिस्तर बिछा दी । फिर वह अपनी बेटी से बातें करने लगा । उसके लिए खिलौने, कपड़े और फल निकाले । बच्ची बहुत खुश हुई । सरसों के तेल के दिये के प्रकाश में उसकी लड़करी गई रात तक उससे बातें करती रही और फिर बाप के गले से लिपट कर सो गई । मुनीर अहमद को नींद न आई । वह एक हाथ से बच्ची को पंखा झलता रहा और दूसरा हाथ सिर के नीचे रख कर आकाश ताकता रहा । अब यह घर उसे काटने को दौड़ता था । यदि उसे यहीं रहना पड़े तो वह पागल हो जायेगा ।

दूसरे दिन उसने चचा से ज़मीन बेच देने की इच्छा प्रकट की । लड़ाई खतम हो चुकी थी । ज़मीनों की क्रीमतें भी गिर चुकी थीं । लेकिन लड़ाई में लोगों ने कमाया भी खूब था, इसलिये उसकी ज़मीन के कई गाहक निकल आये और थोड़ी कशमकश और सौदेबाजी के बाद उसने कुल ज़मीन और मकान तेरह हजार में बेच डाला ।

यह सब काम आठ-दस दिन के अन्दर समाप्त हो गया । जब उसके घर का साज-सामान छकड़ों पर लदने लगा तो गाँव के लोग और उसके दूर और नज़दीक के रिश्तेदार जमा हो गये और सब उसके इस विचार पर खेद प्रकट करने लगे । उसके उन दोस्तों ने, जो बचपन से ही उसके साथी थे, उसे समझाया कि वह अपनी जन्म-भूमि जरूर आता रहे ।

मुनीर अहमद ने काँगड़े की घाटी में एक छोटे-से कस्बे में प्रैक्टिस शुरू कर दी ।

यह एक पहाड़ी स्थान था । इस घाटी में हरे-भरे मैदान और ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के जंगल थे । पहाड़ों से आने वाली आड़ी-तिरछी बरसाती नदियाँ थीं, जो या तो बरसात के दिनों में बहती थीं या जब पहाड़ों की चोटियों पर बर्फ पिघलने लगती थी । चारों ओर शानदार पहाड़ अभिमान से सर उठाये खड़े नज़र आते थे ।

लड़ाई से पहले यह एक छोटा-सा कस्बा था । लेकिन लड़ाई के

मैं जरूर रोऊँगी !

दिनों में बड़ी उन्नति प्राप्त हुई। यहाँ के जंगलों से लकड़ी हासिल की जाती थी। लड़ाई के दिनों में ही यहाँ माचिस बनाते और रेशम तैयार करने के दो कारखाने भी स्थापित हो गये थे। पहले यह लोग काश्मीर में काम किया करते थे, लेकिन चूँकि वह जगह बहुत दूर थी इसलिए इस जगह का चुनाव किया गया। सरकार ने भी गत्ते और लकड़ी की पेट्टियाँ बनाने के कारखाने क्रायम कर दिये थे। इस तरह बहुत से सरकारी और गैर-सरकारी लोग भी उस जगह आ बसे थे। बहुत से लोगों को यह जगह इतनी पसन्द आई कि उन्होंने ज़मीन खरीद कर मकान बनवा लिए और स्थाई रूप से इसी जगह रहने लगे।

कस्बे के बाहर बड़ी संख्या में बँगला-नुमा मकान बने हुए थे। यहाँ अधिकतर ईसाई रहते थे, या बेचारे गरीब एंग्लो इण्डियन। इस जगह रहने वाले वे लोग थे जिनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी, लेकिन उनके लिए साफ़ कपड़े पहनना भी ज़रूरी था। जो लोग वास्तव में पैसे वाले थे वे सिविल लाइन्स में रहते थे।

हर मकान के हर्द-गिर्द कुछ ज़मीन छोड़ दी गई थी। सभी मकान लगभग एक ही डिज़ाइन के बने हुये थे। हर एक में तीन-तीन कमरे, इनके अतिरिक्त गुसलखाने, भण्डार घर, बरामदे, रसोई घर, आँगन इत्यादि था।

जो ज़मीन बाहर बची हुई थी, उसमें मकान के बाहर वाले हिस्से में फूलों की बगियाँ बनाई जा सकती थीं और पिछले भाग में सब्जियाँ उगाई जा सकती थीं। कुछ लोगों ने चैडमिन्टन-कोर्ट भी बना रखे थे।

उन भवनों के बीच हरी-भरी आदमक़द बाड़ें थी। उन बाड़ों की पत्तियाँ गहरे हरे रङ्ग की थीं। बरसात के दिनों में उनमें हलके रङ्ग के छोटे-छोटे फूल खिलते थे और बारिश में धुले-धुलाये फूलों की कलियाँ आँखों को बहुत ही भली मालूम होती थीं।

प्रतिध्वनि

मकान में दाखिल होने के पहले उसकी खूब अच्छी तरह से सफाई करवाई गई दीवारों पर सफेदी, दरवाजों पर नया पालिश बाकी थोड़ी बहुत मरम्मत हो जाने के बाद सारा सामान मकान में करीने से रख दिया गया। तीन कमरों में से एक ड्राइंग रूम बना दिया गया और एक बड़ा कमरा उसने अपने लिए अलग कर लिया और अपने नाम की लकड़ी की छोटी सी तख्ती फाटक पर लटका दी।

मुनीर अहमद ने अपने पड़ोसियों की तरह मकान के सामने के हिस्से में 'क्यारियाँ बनवाईं'। पिछले हिस्से में सब्जियाँ उगाईं। केवल एक कोने में जंगली गुलाब के कुछ पेड़ रहने दिये। उनकी ओट में लोहे की एक बड़ी-सी बेंच पड़ी थी। यहाँ चीड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों का छाया भी था। बाद में मकान की पिछली तरफ बैडमिन्टन खेलने का कोर्ट भी बना लिया गया।

बाहर के बरामदे में लोहे के तारों के बने हुए गमले लटका दिये गये। उनमें से रंग-बिरङ्ग के फूलों की बेलें नीचे लटकती रहती थीं। कमरे अपनी हैसियत के अनुसार उसने सजा लिये।

रहने का ठिकाना बना लेने के बाद मुनीर अहमद ने आशाँ (आयशा) को एक स्थानीय स्कूल में दाखिल करा दिया। यह एक मिशन स्कूल था जहाँ अँग्रेज़ी में शिक्षा दी जाती थी।

बाप के साथ चन्द ही दिन रहने के बाद आशाँ के चेहरे का रङ्ग बदलने लगा। उसके अंग में फुर्ती और आँखों में बचपन की चंचलता झलकने लगी।

स्कूल में जूनियर क्लासों तक लड़कियाँ लड़के मिलकर पढ़ते थे, इसलिये आशाँ की लड़कियों के अतिरिक्त लड़कों से भी दोस्ती हो गई। जब कभी मुनीर अहमद अपने मकान के बरामदे में झूलने वाली कुर्सी पर बैठा कोई किताब देख रहा होता, तो आशाँ के दोस्त और सहेलियाँ आती और मीठी बोल बोलने वाले पक्षियों की तरह चहचहा कर

मैं जरूर रोऊँगी !

कहती—“गुड इवनिंग अनिल !” मुनीर ने दूसरी लड़कियों की तरह आशाँ के सिर के बाल भी कतरवा डाले । उसने सोचा कि जब वह बड़ी हो जायेगी तो उसके सिर के बाल छोड़ दिये जाँयेंगे ।

आशाँ की सबसे गहरी सहेली उसके पड़ोसी हिन्दुस्तानी पादरी मसीह पालसिंह की लड़की थी । मसीह पालसिंह पहले सिक्ख था, फिर ईसाई हो गया । वह बहुत ही विनम्र स्वभाव का आदमी था । यद्यपि उसके हाथ-पाँव की बनावट और शरीर का ढाँचा पंजाब के सिक्खों की तरह खूब मज़बूत था लेकिन उसके सफाचट चेहरे से रूखेपन और कठोरता के वे लक्षण प्रगट न होते थे जो कुछ सिक्खों की सूरत से प्रगट होते हैं । उसकी आँखों में प्रेम और सन्तोष छन-छन कर निकलता हुआ दीखता था । उसकी शादी एक एंग्लो इन्डियन स्त्री से हुई थी । दोनों की अवस्था में बहुत अन्तर था । वह लगभग बयालीस वर्ष का था, और पत्नी सत्ताइस-अठ्ठाइस वर्ष की । उनके दो बच्चे थे । एक दूध पीता लड़का और एक आशाँ की उमर की लड़की मार्या । मार्या भी आशाँ के मिशन स्कूल में ही पढ़ती थी । उन दोनों की खूब गाढ़ी छनती थी । उनके प्रेम के कारण मुनीर अहमद भी उनके यहाँ आता जाता था ।

मुनीर अहमद की पहली मुलाकात मसीह पालसिंह से उस समय हुई थी, जब आशाँ ने अपनी मुँह बाली बहन मार्या का उपहार के रूप में एक गुड़िया भेंट की थी । थोड़ी ही देर बाद मसीह पालसिंह गुड़िया हाथ में लिए हुए उनके फाटक में दाखिल हुआ । मुनीर ने दूर ही से उसे पहचान लिया । यद्यपि पहले कभी उनकी आपस में बात-चीत न हुई थी, लेकिन वह उनकी सूरत से परिचित था । उसने अनेक बार उसे अपने बाग की क्यारियाँ नलाई करते, या चीड़ के पेड़ों के नीचे बाइबिल पढ़ते देखा था । जब वह पास आया तो सलाम हुआ के बाद मसीह पालसिंह ने गुड़िया दिखाते हुए अपनी खाश नर्म आवाज़ में पूछा—
“डॉक्टर साहब ! यह गुड़िया मेरी लड़की आपके यहाँ से ले गई थी ।

वह कहती थी कि आपकी बच्ची ने इसे उसे उपहार के रूप में भेंट किया है।

मुनीर अहमद ने कुर्सी पेश करते हुये कहा—“जी हाँ, यह ठीक है। मार्या आशा की मुँह-बोली बहन है। आशा मुझसे कह रही थी कि अपनी दो गुड़ियों में से एक वह मार्या को दे देना चाहती है।”

मसोह पालसिंह यह सुन कर मुस्करा दिया, “मुझे यों ही शक हुआ...मार्या बाहर गई हुई है। मैंने सोचा कि आपसे पूछूँ लूँ। अब मुझे मार्या से इस गलत-फ़हमी के लिए माफ़ी माँगनी होगी।”

मुनीर अहमद ने उसे विश्वास दिलाया कि मार्या बहुत ही नेक और ईमानदार बच्ची है।

इसके बाद वे पन्द्रह-बस मिनट तक इधर-उधर की बातें करते रहे।

इस प्रकार एक-दूसरे के यह आना-जाना शुरू हुआ।

इस स्थान पर हमेशा बहार ही का मौसम रहता था। जब वह आशा को अच्छे-अच्छे कपड़े पहना कर बाहर ले जाता तो प्रकृत के सुन्दर-सुन्दर दृश्य, ढलवानां तथा पहाड़ियों की हरयाली, प्रर्वता की गम्भीरता और बच्ची की मैना की-सी बातों से उनके मन को बड़ी शान्ति प्राप्त होती थी... कभी-कभी वे बड़ी दूर निकल जाते तो उन्हें वे पहाड़ों लड़के दिखाई देते जो नदी के किनारे दम साधे बैठे रहते थे। दरअसल वे मछलियाँ पकड़ने की धुन में होते थे। एक बड़े से कटोरे में गुंघे हुए आटे की गोली रखकर वे उसके ऊपर मजबूत कपड़ा बाँध देते और कपड़ों के बीचो-बीच सूराख कर देते। पानी की रौ में मछलियाँ बहती हुई आतीं और उनमें से पन्द्रह-बीस उस सूराख में चली जातीं। चुपचाप वे पहाड़ी लड़के एकदम समाधि से चौक पड़ते और कटोरा पानी से बाहर निकास कर रख देते। फिर वे जल्दी से कपड़ा हटा कर तड़पती हुई मछलियाँ थाली में उलट देते।

सबसे ज़ालिम तो केरूने पकड़ने वाले होते थे। यह लोग बरसात

के दिनों नहरों, या नदियों के किनारे-किनारे दूर-दूर तक पाँव के बल उकड़ूँ बैठे नजर आते थे। डेढ़ हाथ लम्बी लकड़ी के एक सिरे पर पन्द्रह-बीस केंचुए बंधे होते थे। केकड़ा केंचुओं की तरफ लपक कर आता और जैसे ही केंचुए को अपनी पकड़ में लेता, शिकारी बस लाठी उचकाकर उसे एक झटके के साथ किनारे पर फेंक देता। केकड़ा घबराहट में बेदंगी-सी चाल से पानी की ओर लपकता। लेकिन इसके पहले कि वह फिर पानी के पास पहुँचने पाये कि शिकारी उसकी एक टाँग लाठी से दबा कर तोड़ डालता। केकड़ा पीड़ा से पागल होकर इधर-उधर भाग जाने की चेष्टा करता। लेकिन एक के बाद एक करके उसकी सब टाँगें और बाजू तोड़ कर परे फेंक दिये जाते। उस समय मारे कष्ट के उसकी आँखें बाहर उबल आती थीं। लेकिन वह थैले में अपने दूसरे साथियों की तरह बेवस पड़ा रहता था। आशाँ जब यह दृश्य देखती तो उसका दिल कांप उठता। वह पूछती —“अम्बा ! वे इनका क्या करेंगे ?”

उस समय शिकारी नहीं लड़की की बात सुन कर कहता—“बीबी ! इसे बंगाली बाबू खाया करते हैं।”

वहाँ बंगाली बाबूओं की भी कमी नहीं थी, इसलिए उन लोगों का यह नया व्यापार भी खूब चल रहा था।

आशाँ बड़ी समझदार और तेज़ लड़की साबित हुई। वह स्कूल की बहुत अच्छी छात्राओं में समझी जाती थी। स्कूल में छोटे-छोटे नाटक भी खेले जाते थे। एक बार आशाँ को उस फाख्ता का पार्ट दिया गया जिसका भई दाना चुँगने गया और वह वहाँ एक चील के भोपड़े में जा फँसा। ऊपर से चील आ गई और अपने बच्चों को परों में छिपा कर बैठ गई। इधर उसकी बहन फाख्ता यानी आशाँ बहुत परेशान थी। वह उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उस जगह पहुँची और बड़ी मुश्किल से अपने भाई को मुक्त किया।

वह कई एक खेल भी खेल लेती थी। उसे रस्सी फाँदने में भी बड़ी दक्षता प्राप्त थी। इस खेल में स्कूल की केवल दो लड़कियाँ उसका मुकाबला कर सकती थीं, बाक़ी बेचारियाँ मुँह देखती ही रह जाती थीं। वे बेचारी शहरी लड़कियाँ थीं। उनकी रगों में वह खून कहाँ जो आशा की नस-नस में दौड़ रहा था।

इसके अलावा उसे गेंद खेलना भी खूब आता था। वह रबड़ के गेंद को एक बार जमीन पर दे मारती और फिर गेंद उछाले ही जाती और उसे जमीन पर न गिरने देती। इस खेल में स्कूल की कोई भी होशियार से होशियार लड़की भी उसका मुकाबला न कर सकती थी।

दिन बीतते गए।

मुनीर अहमद की व्यस्तता बढ़ती गई। अब उसका दवाखाना भी चल निकला था। चार घंटे सुबह और चार घंटे शाम के वह दवाखाने में ही बिताता था। केवल इतवार के दिन की छुट्टी मनाता, यानी शाम के वक्त दवाखाने भी न जाता। उसने अपने मकान पर ही प्रैक्टिस शुरू कर दी। केवल इतना किया था कि मालिक मकान से कह कर अपने कमरे के आगे वाले हिस्से के सामने एक सायबान बड़ा करवा लिया था। उस सायबान के अन्दर लकड़ों की बेंचे बिछी हुई थीं। रोगी आते और उन पर बैठे अपनी बारी का इन्तज़ार करते थे।

डाक्टरों के अलावा उसे मुर्गी-पालन का भी शौक था। उसने मकान की पिछली ओर एक अच्छा-सा मुर्गीखाना बनवा लिया था। मुर्गियाँ पालने की कला पर उसने बहुत सी किताबें मँगवाईं। किताबों में लिखे हुए आदेशों के अनुसार एक बहुत बड़ी जाली मुर्गीखाने के चारों ओर लगवा दी। जाली के अन्दर ईंटों के छोटे-छोटे खाने बनवा दिये जिससे कि मुर्गे और मुर्गियाँ सर्द गर्मी से बच सकें और मुर्गियाँ अंडे दे सकें। उसने अच्छी नस्ल की अंग्रेजी मुर्गियाँ और मुर्गे खरीद कर पाले। कुछ ही वर्षों के बाद उनकी संख्या इतनी अधिक हो गई कि

मैं जरूर रोऊंगी !

अगर वह चाहता तो अच्छा खासा व्यापार शुरू कर सकता था । लेकिन उसने सोचा कि कौन यह नया भंडार मोल ले । उसका समय अच्छी तरह कट जाता था । रोज़ अन्डे खाने को मिलते थे, और फिर मुर्गी के बच्चे भी इतने अधिक थे कि रोज़ पकाये जाते तब भी ख़तम न होते ।

बागवानी से भी उसे बड़ा शौक था । अब उसे फूलों की किस्मों का भी काफ़ी ज्ञान हो गया था । वह अपने हाथ से क्यारियों बना कर फूलों के पौधे लगाता । फूलों के साथ वह सब्जियाँ भी बोया करता था । हर मौसम की सब्जी उसके छोटे से बाग से मिल सकती थी ।

इन कामों के बाद जो समय मिला वह पादरी साहब की संगति में बिता देता था । आशों प्रायः अपनी सहेलियों में व्यस्त रहती और वह अपने दोस्त मसीह पालसिंह के साथ बातें करता । मसीह पालसिंह का ज्ञान बहुत विस्तृत था, विशेष कर धर्म के मामले पर । सबसे बड़ी बात यह थी कि केवल बाइबिल पढ़ लेना या मसीह का गुण-गान कर लेना उसका धर्म नहीं था, बल्कि वह व्यवहारिक जीवन में भी धर्म की ऊँची शिक्षा का ध्यान रखता था । वह एक व्यवहारिक ज्ञानी था और शायद इसी कारण इसके चेहरे से एक अनन्त आनन्द और संतोष का नूर झलकता था । उसकी आवाज़ धीमी होती थी । उसकी बात-चीत में तनिक भी तेज़ी या कठोरता नहीं थी । मुनीर अहमद को उसकी यह अदा बहुत पसन्द थी कि वह दूसरों की बात कान धर कर सुनता था । उसे अपनी बात कहने की कभी जल्दी न होती थी । वह बड़े इतमीनान से मुस्करा-मुस्करा कर दूसरों की बातें सुनता, चाहे वे बातें कितनी भी शुष्क क्यों न होतीं या कहने वाला कितनी ही ग़लत-बयानी से काम क्यों न लेता, उसके माथे पर बल तक न आता ।

उसकी संगति में मुनीर अहमद को हमेशा अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव होता था । मसीह पालसिंह के मकान के इर्द-गिर्द उसके मकान की अपेक्षा दुगनी ज़मीन खाली पड़ी थी । शायद ज़मीन के मालिक

का उस जगह पर एक और मकान बनवाने का विचार हो जो किसी कारण-वश बनवाया नहीं गया। इस समय वह सारी जगह मसीह पालसिंह के कब्जे में थी। मसीह पालसिंह ने कोई बाग नहीं लगवाया था। वह कहता था कि उसकी रुचि स्टेवेन्सन की तरह थी। उसे जमीन का सादा टुकड़ा बहुत पसन्द था। इसी तरह अपने अहाते में चीढ़ के पेड़ों के नीचे बैठना उसे बहुत ही पसन्द था।

शाम के वक्त मुनीर अहमद भी दरखतों के उस झुण्ड के नीचे जा बैठता था। मुनीर अहमद का धर्म या फिलासफी की बारीकियों से अधिक दिलचस्पी न थी और न वह उन्हें समझता ही था। लेकिन वह उसके भाषण में से काम की कोई न कोई बात पा ही लेता था। उसे विश्वास था कि यदि कोई बड़े से बड़ा विद्वान भी आकर उसकी यह बात-चीत सुने तो वह उससे प्रभावित हुए बिना न रहे। उसकी अधिक गहरी बातों के बजाय मुनीर अहमद को हजरत ईसा के सीधे-साधे कथन ज्यादा पसन्द थे। और फिर वह बाइबिल की मनोरंजक कहानियाँ बड़े गौर से सुनता। भूले हुए बेटों की कहानी, सात कुमारियों की कथा, बीज बोने वाले का किस्सा इत्यादि उसे सचमुच बहुत पसन्द थे। वह यह कहानियाँ आशाँ को भी सुनाया करता। गई रात तक आकाश से बातें करने वाले चीढ़ के पेड़ों के नीचे मसीह पालसिंह, उसकी पत्नी और मुनीर अहमद बातें किया करते थे। मसीह पालसिंह की आवाज़ में बड़ी मिठास थी। जब वह बातें करते समय अपने हाथों को भी एक खास ढंग से हिलाता, तो सुनने वाले पर सुरूर छा जाता। जब कभी मुनीर अहमद को अतीत की याद सताती तो मसीह पालसिंह की ही आवाज़ सुन कर ही अपने दुख दूर होते हुए महसूस होते थे। हफ्ते में एक बार वे सब लोग बाइसकोप देखने चले जाते थे। उन दिनों वहाँ मूक चित्रपट आते थे। उनमें कुछ धार्मिक खेल भी होते थे, जिन्हें देख कर मसीह पालसिंह की आँखों में आँसू आ जाते थे।

मैं जरूर रोऊँगी !

हृद-गिर्द पहाड़ों में बहुत से मनोरंजन के स्थान भी थे। कभी वे सब मिलकर पिकनिक पर भा चले जाते थे। सारे दिन-हँसी मजाक, घूमने-फिरने और नहाने-धोने में बीत जाता था।

धीरे धीरे मुनीर अहमद बुढ़ापे की तरफ़ कदम बढ़ाता गया और उसकी बच्ची जवानी की ओर !

आशाँ जब पन्द्रहवें वर्ष में पहुँची तो उसकी जवानी के सामने उसकी माँ का शत्राव भी पीका पड़ गया। यह स्वस्थ और सुडौल शरीर वाली हज़ारों में एक थी उसका रंग गोरा न सही, लेकिन खून की गर्मी से उसके गाल लाल थे। रसाले हाँठ, रसभरी आँखें, मानाँ अभी उनमें से मधु टपक पड़ेगा। वह कहावत कि 'कुछ सूरतें खुदा फुरसत में आराम से बैठ कर पूरा ध्यान लगा कर बनाता है' उसी पर पूरी उतरती थी। लेकिन वह उस समय अपने सौन्दर्य और यौवन से उतनी ही बेखबर थी, जितनी एक छः वर्ष की बच्ची ! वही भाग-दाँड़, कूद-फाँद, छीन-भपट ! जब मुनीर अहमद पलंग पर बैठा कोई किताब पढ़ने में व्यस्त होता, तो वह बच्चों की तरह मटकती आती और पलंग पर लेट कर बाप का हाथ अपने गाल से मलने लगती। वह समझ जाता कि उस समय उसकी बेटी कोई फरमायश लेकर आई है। वह उच्चक कर माथे का चुम्बन लेता और पूछता -- "आशाँ ! आज लाडली बेटी की क्या फरमायश है ?"

इस पर वह खिलखिला कर हँसने लगती -- "अब्बा ! आपको मेरे दिल का हाल कैसे मालूम हो जाता है ? क्या आप गैबदान (अन्त-र्यामी) हैं ?"

वह आशाँ की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहता -- "हाँ, आशाँ ! मैं

ईदवान । कम-से-कम तुम्हारे दिल की बातें मुझसे छिपी नहीं रह सकतीं ।”

इसके बाद कुछ मजेश्वर बातें होतीं, और अपनी फरमायश मंजूर हो जाने पर वह अपने कमरे में चली जाती ।

आशाँ अभी तक इतनी अल्हड़ थी कि मुनीर अहमद को यही खयाल आता कि उसके लाड़-प्यार के कारण उसकी लड़की को दुनिया-दारी की हवा तक नहीं लगने पाई । अभी तक वह नहीं बच्ची ही है । उसने अनेक बार आशाँ को मार्था के साथ कमरे में नाचते देखा था । वे दोनों एक साथ कदम उठातीं । शरीर के प्रत्येक अंग की हरकतों में सामंजस्य पैदा करने की कोशिश करतीं और बड़ी तत्परता से महीन आवाज़ में कोई गति पैदा कर देतीं । मुनीर अहमद ने बेटी को स्कूल से हटा लिया । अलवत्ता एक अध्यापिका उसे घर पर पढ़ाने आती थीं । उसके बाल कटवाने भी अब बन्द कर दिये थे और वे बढ़कर अब बड़े, घने और लम्बे हो गये थे । आशाँ का मार्था के सिवा किसी और के घर अधिक आना-जाना नहीं था । उसने अँग्रेजी टंग की शिक्षा पाई थी । बुर्के के अन्दर रहना और इतना कड़ा पर्दा करना उसके बस की बात न थी ।

तीन-चार वर्ष और बीत गये !

आशाँ ने वह जीवन निकाला कि यदि वह गाँव में होती तो इलाके भर में शोर-सा मच जाता और कई दिल-फैंक नौजवानों के सिर फट गये होते । लेकिन दुनिया के इस खामोश कोने में वह एक जगली फूल की तरह खिल कर रह गई थी और उसका शरीर जवानी की गर्मी से फूँक रहा था । आँखों में वह तरावट पैदा हो गई थी जो सिर्फ भरपूर जवानी ही का नतीजा हो सकती थी । होठों पर एक ऐसी रसीली

नै जरूर रोज़गार !

चिकनाई उत्पन्न हो गई थी, जिस पर भौरे मडलाते रहें। वह पलंग पर पड़ी-पड़ी अंगड़ाइयाँ लेती। उसके शरीर का जोड़-जोड़ टूटता। अंग-अंग में मीठी-मीठी कसक महसूस होती। वह बैठे-बैठे गहरी साँसें ले-लेकर सीना तान लेती और चोर दृष्टि से उसकी ओर देखती और फिर रास्ता भूली हुई हिरनी की तरह घबराई हुई निगाहों से इधर-उधर देखने लगती। वह घंटों चारपाई पर पड़ी-पड़ी बेचैनी से करवटें ले-लेकर अपने शरीर को इधर-उधर पटकती।

गर्मियों का मौसम था। इतवार का दिन था और दोपहर का समय ! मुनीर अहमद अखबार देख रहा था। उसे नींद-सी आ रही थी और फिर उसे पता भी नहीं चला कि कब नींद ने उसे आ दबाया। एकाएक जो आँख खुली तो उसे पसीना आ रहा था। उसने बिजली का पंखा चला दिया। पानी का लोटा लेकर बाथ-रूम में गया। मुँह पर ठंडे पानी के छींटे दिये। वह अपने हाथों को उलट-पुलट कर देखने लगा। अब उसके हाथ की खाल पर सिलवटें पड़ रही थीं। शरीर का रंग भी फीका पड़ गया था। वह अपने शरीर में भी पहले की अपेक्षा कुछ दुर्बलता का अनुभव कर रहा था। उसने सोचा कि वह बूढ़ा हो रहा है।

वह बैसाखियाँ बगलों में दबाये बाहर खुली हवा में निकल आया। हवा बन्द थी, लेकिन आसमान के एक कोने से मुर्मई रंग के बादल निकल कर सूरज को अपने आँचल में छिपा लेना चाहते थे। घटा के आगे-आगे चीलें उड़ रही थीं। जिसका मतलब था कि बारिश होगी।

वह क्यारियाँ में से होता हुआ जंगली गुलाब के पेड़ों की ओर चला गया। उस जगह दो-तीन चीड़ के पेड़ भी थे। उसे खयाल आया कि एक तरसे से लोहे की बेंच गुलाब के झुण्ड के पीछे पड़ी है। यदि उसे झुण्ड के इस ओर पेड़ के नीचे रख दिया जाय तो जिस दिन बादल छाये हों, वह सुबह-शाम उस पर बैठ कर बाग का नज्ज़ारा कर सकता है।

इन्हीं विचारों में खोया वह आगे बढ़ा। कुञ्ज में बिछी हुई बेंच

पर...आशाँ किसी अपरिचित नौजवान के पहलू में बैठी हुई थी ।

मुनीर स्तब्ध रह गया...कितना विचित्र और अविश्वसनीय...आशाँ बदमस्त शराबियों की तरह नौजवान के कंधे पर गिरी पड़ी थी । ढीले-ढाले बाल बेपरवादी से इधर-उधर बिखरे हुए थे । उसकी आँखें बन्द थीं । मुँह जरा खुला था और दाँत मोतियाँ की तरह चमक रहे थे । नथुने फड़क रहे थे । दुपट्टा साँने पर मे खिसक चुका था...और एक गोल गोरी नग्न ब्राँह दिखाई पड़ती थी । नीचे गले में से उसकी दाहिने छाती का उभार साफ़ नज़र आ रहा था और वह युवक उसके कंधों, गर्दन, होठों और आँखों को चूमे जा रहा था । उस समय आशाँ आपने वातावरण से इतनी बेखबर थी कि उसे अपने तन-वदन का कुछ होश ही न था । वह किसी पके हुए फल की तरह दहनी से टूटा ही चाहती थी ।

यह अद्भुत करने वाला दृश्य इतना अचानक और असाधारण उसकी आँखों के सामने आ गया कि वह बुत बना खड़ा रह गया । उसे यह भी खयाल न ही आया कि उसे ऐसे मौके पर टल जाना चाहिये । पहले आश्चर्य और क्रोध के मारे उसकी आँखें खुली की खुली रह गईं । उसका एक पाँव जमीन में गड़ गया ।

सहसा युवक की निगाह उस पर पड़ी । बिजली की सी तीव्रता के साथ वह आशाँ को परे ढकेल कर खड़ा हो गया । दूसरे ही क्षण आशाँ परे हटी । मुनीर अहमद ने पथराई हुई आँखों से देखा कि वह अपनी अर्ध-नग्न छाती ढाँपती, ओढ़नी संभालती, घर की तरफ भाग गई और उस अपरिचित युवक ने क्षण भर फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखा और फिर उच्चक कर बाड़ में से बाहर निकल गया ।

कुछ क्षणों तक उसकी चेतना-शक्ति बिलकुल ही लुप्त हो गई । वह अपनी जगह से हिल न सका । बगलों में दबी हुई बैसाखियाँ काँपती रहीं । फिर जब क्रोध की पहली लहर चढ़ कर उतर गई और वह इस

मैं जरूर रोऊंगी !

योग्य हुआ कि हिल सके तो वह बड़ी तेजी से बैसाखियाँ टेकता इधर-उधर देखता हुआ घर की ओर बढ़ा। ड्राइङ्गरूम में निकल कर जब वह सोने के कमरे में घुसा तो देखा कि आशा पलंग पर औंधे मुँह पड़ी सिसकियाँ ले रही थी।

उसके पिछले समस्त जीवन का क्रोध एक शोले की तरह भड़क उठा। उसकी आँखें ऐसी थीं मानो उनसे खून टपकने वाला हो। उसका सिकुड़ा हुआ चेहरा पत्थर की भाँति निश्चेष्ट था और चेहरे की टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें किसी मिछी ममी की भाँति भयानक नज़र आ रहा थीं। आशा ने बाप को ऐसी क्रुद्ध अवस्था में कभी नहीं देखा था। बाप अपनी आँखें उस पर गाढ़े हुए थे। उसकी बाँहों में से हिंसक पशुओं की भाँति दाँत निकल कर चौंक रहे थे। वह उसे देखकर भयभीत हो गई। भाग निकलने के लिये उठने लगी, लेकिन हाथ-पाँव फूल चुका था। वह विवश होकर दया-पूर्ण दृष्टि से बाप की ओर देखने लगी, लेकिन उसके बाप का चेहरा लाश की तरह सफेद और निश्चेष्ट था, और वह क्षण भर रुकने के बाद आगे को बढ़ा आ रहा था।

आशा की आँखें आश्चर्यजनक रूप से फट गईं। उसकी कनपट्टियाँ जल उठीं। उसने अत्यधिक भय के कारण चीखने की कोशिश की, लेकिन उसके कंठ से आवाज़ ही न निकलती थी।

उधर उसका बाप आगे बढ़ा आता था। इधर वह सिर हिला कर, जैसे उसे आगे बढ़ने से रोक रही थी। उसके सूखे होंठ काँप रहे थे। अपने बचाव के लिये हाथ तक उठाने की उसमें शक्ति न रही थी। बाप ने नज़दीक पहुँच कर पूरी ताकत से उसके गाल पर तमाचा मारा। “हरामजादी !...बेहया !!...बेशर्म !!!...जलील...”

उसके मुँह से गालियाँ ऐसी अनाखी और भयानक आवाज़ में निकल रही थीं, मानो उसके भीतर कोई पशु बैठा बोल रहा हो। आशा थप्पड़ खाकर फर्श पर गिर पड़ी। बाप बैसाखियाँ परे फेंक, उस पर भेड़िये

की तरह झपट पड़ा। घूँसे पर घूँसा, थप्पड़ पर थप्पड़ ! पागल कुत्ते की तरह उसने उसके बाल नोच डाले। जैसे-जैसे वह उसे मारता था, वैसे-वैसे उसका वहशीपन बढ़ता जा रहा था। आशाँ की कमीज तार-तार हो गई। मसूड़ों से रक्त बहने लगा। वह अर्ध-नग्न अवस्था में चौपाये की तरह घुटने और हाथों के बल चलती हुई दरवाज़े की ओर बढ़ी। इसके पहले कि वह बाप के हाथों की पकड़ से बाहर निकल जाये, उसके सिर पर बैसाखी की चोट इस जोर से पड़ी कि वह बेहोश हो गई।

उस समय मुनीर अहमद ने खिड़की में से देखा कि उसकी बावरचिन दोपहर की छुट्टी करने के बाद वापस आ रही है। वह फाटक पर ही थी कि मुनीर अहमद ने तुरन्त सोने के कमरे का दरवाज़ा बन्द किया और ड्राइङ्ग-रूम में चला गया। बावरचिन सीधी रसोई घर में पहुँची और वहाँ से बर्तनों के हिलने-डुलने की आवाज़ें आने लगी।

मुनीर अहमद कमरे में खिड़की के सामने खड़ा था। उसकी बर्बरता कम हो रही थी। वह सोचने की कोशिश कर रहा था। उसका क्रोध कुछ-कुछ टंडा पड़ रहा था। धीरे-धीरे उसका दिल परेशान होने लगा। एक अज्ञात-सा भय उसके दिमाग पर छाने लगा। फिर वह बेचैन होकर कमरे में टहलने लगा। जल्दी-जल्द टहलने के बाद वह एकदम रुका और रुई, पानी तथा दवाओं का बक्स लेकर वह भाग कर सोने के कमरे में पहुँचा। उसने आशाँ की ओर देखा। आशाँ खून में लथपथ बेहोश पड़ी थी। उसने उसे उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया। जल्दी से उसके सिर का घाव धोया। उसकी उँगलियाँ बड़ी फुर्ती से अपना काम कर रही थीं। घाव पर पट्टी बाँध देने के बाद उसने उसके शरीर को टटोल-टटोल कर देखना शुरू किया। उसने उसकी टाँगे हिला-डुला कर देखीं। उसके बाजू, कलाईयाँ, टखने, गर्दन सब को बड़ी नमी से हिलाया-

मैं जरूर रोऊँगी !

हुलाया और उसे थोड़ी शांति का अनुभव हुआ । फिर उसने स्टेथसकोप लगाकर हृदय की गति और साँस के चलने का निरीक्षण किया । उसे किसी प्रकार का कोई गहरी चोट न आई थी । सिर का घाव भी मामूली था ।

उसने खिड़की खोल दी । दरवाज़े में ताला बन्द करके रसोई घर की ओर गया । बावरचिन से कहा कि आज आशॉ अपनी एक सहेली के यहाँ दावत में गई है । वह आज खाना नहीं खावेगा और केवल सूप ही पी लेगा । बावरचिन मन में प्रसन्न हुई कि जान छूटी ।

बावरचिन के चले जाने के बाद मुनीर अहमद देर तक बरामदे में टहलता रहा । आशॉ अभी तक बेहोश थी, लेकिन उसे इस बात का संतोष था कि उसकी ज़िन्दगी को कोई खतरा नहीं ।

बाहर पूरा चाँद चीढ़ के दरखतों की कोमल शाखाओं में उलझा हुआ नज़र आ रहा था ।

मुनीर अहमद अजीब मानसिक उलझन में पड़ा था । दूर भींगुर बोल रहे थे । वह रात्रि के अंधकार में बैसाखियाँ टेकता हुआ बाड़ में से निकल कर मसीह पालसिंह के मकान की तरफ बढ़ा । वह कमरे में बैठे नज़र आ रहा था । लेकिन वह अकेला न था । भार्था उसके पास बैठी थी । मुनीर अहमद चोरों की तरह खिड़की के पास खड़ा हो गया । मन में डर रहा था कि यदि उसे कोई इस हालत में देख ले तो न जाने क्या समझे ! इतने में भार्था दूसरे कमरे में चली गई तो उसने मसीह पालसिंह को आवाज़ दी । मसीह पालसिंह ने उसे अन्दर बुला लिया । लेकिन उसने कहा कि वह उससे अकेले में बात-चीत करना चाहता है ।

मसीह पालसिंह धबराया हुआ नंगे सिर बाहर निकल आया । चीढ़ के दरखतों के नीचे पहुँच कर दोनों एक बेंच पर बैठ गये । मुनीर अहमद

ने सारी बात कह सुनाई। मसीह पालसिंह ने कुल घटना सुनने के बाद कहा—“यह बिल्कुल मामूली-सी बात है। जवानी की उर्म ही ऐसी होती है। इस तरह की बातों पर आपको परेशान न होना चाहिये, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि आप लड़की की शादी कर दें। बल्कि आपको चाहिये था कि यहाँ तक नौवत पहुँचने के पहले उसकी शादी कर देते।”

इसके बाद मसीह पालसिंह ने अपने खास लहजे में एक बड़ा लम्बा-चौड़ा भाषण दिया। मुनीर अहमद के दिल को बड़ी तसकीन हासिल हुई। बातें करने से उसके जी का बोझ हलका हो गया। फिर जब वह विदा होने के लिया उठा तो लजित हो कर बोला—“अफसोस तो इस बात का है कि मैंने बेचारी को पीट डाला।”

जिन्दगी में एक बार फिर सिक्कों के खास अन्दाज़ में निर्भीक और लम्बा ठहाका लगा कर मसीह पालसिंह कहने लगा—“मिस्टर मुनीर अहमद ! आप से चार अंगुल ऊँची और मजबूत शरीर वाली नौजवान लड़की का आपके घूँसों से कुछ नहीं बिगड़ सकता।”

जब मुनीर अहमद वापस आया तो उसने दरवाज़ा खोल कर देखा कि आशों अब भी बेहोश पड़ी है। बड़ी खिड़की में से पूरे चाँद की दूध-सी सफेद रोशनी अन्दर दाखिल हो रही थी। वह उसके पास जा खड़ा हुआ। आशों की कमीज़ के चिथड़े होकर लटक रहे थे। उन चिथड़ों पर भद्दे रंग के खून के धब्बे दिखाई दे रहे थे। वह इस दृश्य को देखने की ताब न ला सका। उसने ज़मीन की ओर देखते हुए हाथ बढ़ा कर उसकी कमीज़ उतारी और जल्दी से मुँह फेर कर उसे अंगीठी में फेंक कर माचिस दिखा दी।

मैं जरूर रोऊँगी !

कमरे में पूरा सन्नाटा छाया था । केवल क्लक की टिक-टिक सुनाई दे रही थी । उसके दिल पर एक धुंध-सी छा रही थी । उसकी टाँग लड़खड़ा रही थी । उसने काँपते हुए हाथों से ड्रेसिंग-टेबल की दराज़ में से धुली हुई कमीज़ निकाली और बड़े सावधानी से नज़रें ज़मीन पर गाढ़े हुए वह आशों की पलंग की ओर क़दम बढ़ाता रहा...सहसा उसकी आँखें ऊपर उठ गईं ।

श्वेत चाँदनी में, उजले बिस्तर पर नूर के साँचे में ढला हुआ बेदाग और बेऐव शरीर ऐसे पड़ा था, जैसे सीप में मोती...

एक ही नाव पर

मेरी आँख देर से खुली, और जब खुली, तो नज़र अपने दोस्त कपूर के ओवरकोट पर पड़ी। पहले तो आश्चर्य हुआ, फिर खयाल आया, कि रात जब हम पान खाने के लिए नीचे उतरे थे, तो वह वहीं से अपने घर को चला गया था। ओवरकोट का किसी को खयाल ही नहीं आया।

मैंने फिर आँखें बन्द कर लीं। इतवार की सुबह थी। छुट्टी का दिन था। भला विद्यार्थी इतवार को भी नींद के मजे न लूँ, तो कब लूँ ? एकाएक याद आया, कि आज एक अँग्रेज़ी पिक्चर का दस बजे वाला शो देखना था। इसलिए ज्यादा सोने की गुंजाइश नहीं थी।

सुस्ती हटाने के लिए सिगरेट की तलाश हुई। तकिये के नीचे और

मैं जरूर रोऊँगी !

करीब की तिपाई पर कहीं भी सिगरेट दिखाई नहीं दी। मजबूर होकर उठना पड़ा। कुर्सी की टेक पर लटके हुए ओवरकोट की जेब में किसी बोझिल चीज से पाँव टकराया। जेब टटोली, तो अन्दर से सोने का सिगरेट-केस निकला। खोला, तो उसमें सिगरेट भी मौजूद थे। “हुरे !” मैं खुशी से चिल्ला उठा।

सिगरेट जला कर, सिगरेट-केस देखना शुरू किया। सोचा, ‘हमारे यार कपूर की भी क्या शान है ! सिगरेट-केस भी स्पेशल आर्डर देकर बनवाया गया है। और फिर ओवरकोट देखिये। कैसा बढ़िया कपड़ा है, कैसी सुन्दर कटाई और सिलाई ! चुराद-से-चुराद शरस भी पहने, तो देखने वालों पर रोब गँठ जाय। अच्छा हुआ, कि वह कोट यहीं भूल गया, आज सर्दी भी है। यार लोग इसे पहन कर ठाट से सिनेमा देखने जायेंगे, और फिर लौटा देंगे।’

मुझे यकीन था, कि मैं उसे पहन कर बहुत सुन्दर दिखाई दूँगा। यूँ तो मैं एक मामूली घराने का, बी० ए० का विद्यार्थी हूँ, लेकिन रंग गोरा है, और नाक-नकशा भी अच्छा है।

सुस्ती उतर गई, तो सर्दी का बहाना दिल से निकाल दिया। शेव किया, और मुँह हाथ धोकर उजली कमीज निकाली। सज-धज में जो कमी रह गई थी, वह ओवरकोट से पूरी हो गई। रास्ते में एक पनवाड़ी की दूकान पर अपनी शकल देखी। सचमुच रोब टपक रहा था।

जनवरी का महीना था। आकाश में बादल छाये हुए थे। अचानक गरज के साथ बिजली भी चमकी। मैं डरा, कि कहीं सिनेमा-घर पहुँचने से पहले ही बारिश न होने लगे। यह सोच कर, लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ बढ़ा। इतने में बड़े जोर की बड़ी-बड़ी बूँदें पड़ने लगीं। भट कनाट-प्लेस की दूकानों के बरामदे में शरण ली। धरती से आकाश तक धुँआ-धार हो गया, और वर्षा का तार बंध गया।

वर्षा आ जाने के कारण, मन खराब हो गया। लेकिन कोई उपाय

न था। इतवार के कारण दूकानें बन्द थीं, और सड़कें सुनसान पड़ी थीं।

कुछ क्षण के बाद, क्या देखता हूँ, कि एक खम्भे के पीछे से बहुत अच्छे कपड़े पहने हुए एक सज्जन निकले। आयु लगभग छियालीस वर्ष, दाढ़ी-मूँछ सफ़ाचट, हाँठों पर मुस्कराहट। मुझमें आँखें मिश्रित ही, बोले—“फ़ाइन वेदर (अच्छा मौसम है) !”

“आ, यस, वेरी फ़ाइन (हाँ, बहुत अच्छा) !” मैंने जवाब दिया।

वे मेरे करीब आकर, पतलून की जेब में हाथ डाल कर, खड़े हो गये। “खूब फँसे !” यह कहते-कहते उनका मुँह भर से खुला, और सफ़ेद मजबूत दाँत दिखाई दिये।

मुझे कोई जवाब नहीं सूझा, तो मैंने अपना मुँह उनसे भी ज्यादा खोला, और दाँत भी ज्यादा संख्या में दिखाये।

शायद वे खासे बातूनी थे। कहने लगे—“कहते हैं, कि गीदड़ की मौत आती है, तो वह शहर की तरफ़ भागता है। यही बात मेरे साथ हुई। मौसम अच्छा पाकर, और पिक्चर शुरू होने में काफ़ी वक्त बाकी पाकर, मैंने मोटर ब्रिड्ज रोड पर रुकवा दी। सोचा, कि टहलता हुआ चला जाऊँगा। और फिर जहाँपारा को भी एक सखी से मिलने जाना था।”

इसके बाद उन्होंने मेरी ओर देखा। और मेरे दिल की हालत भाँप कर, बोले—“शाहज़ादी जहाँपारा—मेरी बेटी—मेरी इकलौती बेटी !”

यह कह कर, वे बड़े प्रेम से हँसे। फिर बोले—“और तमाशा देखिये, इधर मैं फँस गया हूँ, और उधर मेरी सेक्रेटरी मिस मितर सिनेमा-घर में टिकट खरीद कर मेरा इन्तज़ार कर रही होंगी।... क्या आप भी ...”

“जी, मैं भी सिनेमा जा रहा था।”

“ओह...क्या तमाशा, क्या तमाशा...एक ही बोट (नाव) पर... हा-हा !”

मैं जरूर राजूंगी !

क्षण भर बाद उन्होंने फिर बोलना शुरू किया—“मैं अपना परिचय दे दूँ—मेरा नाम नवाब दोस्त मुहम्मद यार जंग बहादुर है ।”

मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई । उन्होंने बढ़ कर, मेरे काँट को बढ़े ध्यान से देखा । “बहुत खूबसूरत कपड़ा है—‘वेरी कॉस्टली’ (बहुत कीमती) । कट भी बहुत बढ़िया है । कहाँ से सिलाया था आपने ?”

“ओह...ही-ही...” मुझे खुद भी मालूम न था । सौभाग्यवश काँट की अन्दर वाली जेब पर लगे हुए दर्ज़ी के लेबिल पर नज़र पड़ी । भट बोला—“रैकीन एन्ड कम्पनी का सिला हुआ है ।”

“वेरी गुड (बहुत अच्छा) !”

मैंने कुछ धवरा कर जेब से सिगरेट-केस निकाला, जिसे देख कर नवाब साहब सचमुच रोब में आ गये । समझे कि यह भी कोई मामूली आदमी नहीं है । और उन्होंने मुझसे पूछ ही लिया, “आपको तारीफ़ ?”

मैंने जवाब देने से पहले सिगरेट-केस आगे बढ़ाया, और दिमाग पर जोर डालकर सोचने लगा । सिगरेट जलाने के बाद, मैंने जवाब दिया—“बन्दे को कुँवर चन्द्रभान सिंह सूर्यवंशी कहते हैं ।”

मेरा जवाब तो खासा नामाकूल था, परन्तु जब नवाब साहब ने आदाब पर के, कहा—“ओह, कुँवर चन्द्रभान सिंह सूर्यवंशी,” तो मुझे तसल्ली हो गई, कि उसके ने तीर का काम किया !

अब मुझे जो दूर की सूझी, तो पूछ बैठे — “गवर्नमन्ट ने रियासतें खत्म कर डाली हैं, और आप . .”

उन्होंने मुझे कुछ आश्चर्य से देखा, फिर हँस दिया । कहा—“ओह —हमारी रियासत उनके पजे से बाहर है । इमफ़ाल के दक्षिण में मेरी आज़ाद रियासत है ।”

“अच्छा, अच्छा । समझ गया । खूब, खूब !” मैं नहीं चाहता था, कि मैं नवाब साहब की नज़र में बेवकूफ़ साबित होऊँ ।

नवाब साहब ने मुझसे पूछा—“अच्छा तो आपकी स्टेट का क्या हाल है ?”

मैंने घबराहट में जवाब दिया —“मैं राज्य-प्रमुख बन गया हूँ— मध्य भारत की कुल रियासतों का राज्य-प्रमुख !”

“खूब, खूब !” कहते-कहते उन्होंने अपना धूप का चश्मा उतार कर, शीशे पर पड़े हुए पानी के छुंटे साफ़ किये । उन्होंने फ़ौरन चश्मा आँखों पर चढ़ा कर, पूछा—“सिनेमा शुरू होने में कितना टाइम बाकी है ?”

“अभी दस मिनट है ।...आज खूब रश होगा । रीय ह्वर्थ की पिक्चर है ।”

मैं दिल-ही-दिल में परेशान हो रहा था, कि साढ़े-दस आने के रियायती टिकट ख़तम हो जायेंगे । यह बात याद ही नहीं रही, कि मैं राज्य-प्रमुख हूँ !

नवाब साहब बोले —“आप ठीक कहने हैं । मैंने रीय ह्वर्थ को देखा है । ओह, क्या हुस्न पाया है उसने ! जब मैं जहाँपारा को लेकर आगा खाँ से मिलने गया, तो वह दूर ही से उछल पड़े । मैंने पूछा, कि क्या बात है, तो कहने लगे ‘आपकी बेटी तो बिलकुल रीय ह्वर्थ से मिलती-जुलती है ! ओह, शी इज़ बेरी ब्यूटीफुल !’ ”

फिर उन्होंने सिगरेट का गहरा कश लेकर, पूछा—“यह कौन-सा सिगरेट है ?” और फिर सिगरेट पर लिखे अक्षरों को पढ़ने की कोशिश करने लगे ।

मैंने बताया —“यह अमेरिकन कम्पनी का कैमेलस सिगरेट है । मेरे खयाल में यह दुनिया का बेहतरीन सिगरेट है । मैं हमेशा यही पीता हूँ, और दोस्तों से भी इसकी सिफ़ारिश करता हूँ ।”

“बेरी गुड (बहुत बढ़िया) !” नवाब साहब ने सिर हिलाते हुए कहा— “जब मैं अमेरिका में था, तो वहाँ अच्छे-अच्छे सिगरेट पीने में

मैं जरूर रोऊँगी !

आये, लेकिन मुझे मालूम नहीं था, कि कैमेलस सब से अच्छा होता है ओह, अमेरिका बहुत बड़ा देश है। उसकी सभ्यता ऊँची है। वह हर लिहाज से बढ़ा-चढ़ा है। वहाँ सही माने में डेमाक्रोसी (जनतंत्र) है।”

मैंने फिर शाहजादी का जिक्र छेड़ते हुए कहा — “शाहजादी साहब इधर से निकलतीं, तो आपको इतनी तकलीफ़ न उठानी पड़ती।”

“ओ यस ! भाई कुँवर साहब, आप शाहजादी जहाँपारा से मिल कर खुश हो जायेंगे। वह बेहद मिलनसार और खुशमिजाज है — शरीर छोकरी !”

यह कह कर, नवाब साहब फुटक कर हँसे। फिर बोले — “नाजुक होने पर भी शिकार खूब खेलती है। जब मैं शेर के शिकार को जाता हूँ, तो राइफल लेकर मेरे साथ चलती है। अरे, साहब, वह शायरी भी करती है। ऑल राउन्ड टेस्ट है उसका।... हालाँकि उसकी पढ़ाई-लिखाई विलायत में हुई, लेकिन वह अपनी मातृभाषा नहीं भूली।... बड़ी दिखाइये।” फिर झुंझलाकर कहा — “मिस भितर भी पंगशान हो रही हांगी। वह बड़ी चार्मिंग है। उसके मँगेतर ने कहा, कि ‘नवाब साहब की नौकरी छोड़ दो, नहीं मैं तुमसे शादी न करूँगा,’ लेकिन उस बफ़ा की पुतली ने इनकार कर दिया।... सचमुच इन लोगों का कैरेक्टर बहुत ऊँचा होता है।”

मैं समझ गया, कि नवाब साहब एक ही घाव हैं। दुनिया का ऊँच-नीच खूब देखे हुए हैं। मैं दिल में सोच रहा था, कि अपने बारे में क्या बताऊँ। न मेरे पास कार, न शाहजादी जहाँपारा, न सेक्रेटरी !

उन्होंने पूछा — “आज-कल आप यहाँ तफ़रीह के लिए आये हैं क्या ?”

“जी हाँ,” मैंने बेपरवाही से नथुनों में से धुँआ उड़ाते हुए उत्तर दिया — “शिकार को जा रहे थे देहरादून। सारी पार्टी आगे निकल गई। मैं यहाँ रुक गया। मुझे जरा पंडित जी से मिलना था।”

“पंडित जवाहरलाल नेहरू से ?”

“जी हाँ ।”

“तो अभी कुछ दिन रुकेंगे आप ?”

“इरादा तो है ।”

“तो फिर जहाँपारा से आपकी मुलाकात जरूर हो जायगी । और मुमकिन है, कि वह आपके साथ शिकार पर जाने को तैयार हो जाय ।”

अब मैं और घबराया । लेकिन फिर अपने होश कायम रखते हुये जवाब दिया—“यह भी मुमकिन है, कि मैं शाहजादी से मिलने के बाद शिकार का प्रोग्राम ही रद्द कर दूँ ।” यह कह कर हँसा, तो नवाब साहब ने मेरे इशारे को समझ कर, बड़े खास तरीके से एक आँख बन्द करके मेरी तरफ़ देखा, और खूब जोर से हँसते हुये, बोले—“यू नाँटी ब्वाय !”

बारिश जरा धीमी हो गई थी । मैंने बेतकल्लुफ़ी से उनका हाथ पकड़ कर कहा—“आइये, छोटी सी दौड़ लगायें । अब तो न्यूज़ रील दिखाई जा रही होगी ।”

“ओ० के०, ब्वाय !”

बस, फिर क्या था, हम सनेमा घर दौड़ते हुये पहुँचे । नवाब साहब ने इधर-उधर देखा, और परेशान होकर बोले—“मिस मितर कहाँ गई ?”

फिर उन्होंने गेट-कीपर को मिस मितर का हुलिया बता कर, पूछा—“क्या ऐसी मिस साहब यहाँ आई थीं ?”

गेट-कीपर ने इनकार कर दिया । नवाब साहब ने लाहौल पढ़ी—“तोबा ! न जहाँपारा, न सेक्रेटरी ” अब उनकी परेशानी कुछ और बढ़ी । जेबों को छूने के ढंग से मालूम होता था, कि उनके पास इस वक्त रुपया भी नहीं है । संयोगवश मेरी जेब में दस रुपये का नोट था ।

मैं जरूर रोऊँगी !

हालाँकि घर से साढ़े-दस आने का टिकट खरीदने के लिए सोच कर चला था, परन्तु मजबूरन ऊँचे दर्जे के टिकट लेने पड़े।

नवाब साहब मेरे हाथ में दो टिकट देख कर चौंक पड़े। “ओह—हट—आप ने मेरा भी टिकट खरीद लिया।...नो—आपको ऐसा नहीं करना चाहिये था।”

मैंने उनकी पीठ पर हल्की-सी थपकी देकर, कहा—“चलिये, नवाब साहब, मेरा रुपया आपसे अलग नहीं है।”

बेचारे मजबूर होकर मेरे साथ चल दिये।

मैंने समझाया—“नवाब साहब, हो सकता है, कि मिस मितर बारिश की वजह से न आ सकी हों, या आप के ही किसी जरूरी काम से चली गई हों। बाकी रही शहजादी साहबा। वह तो अभी बच्ची हैं।” और मौका देख मैंने पूछ ही लिया—“क्या उम्र होगी उनकी?”

नवाब साहब की खुशमिजाजी फिर वापस आ गई। बड़ी मीठी आवाज़ में बोले—“ओह—यही सोलह बरस—नहीं, अभी सोलह बरस की भी नहीं हुई—साढ़े तीन महीने बाकी हैं। ओह! शी इज़ सुइट—आप उससे मिल कर खुश होंगे।”

सिनेमा के पर्दे पर जब रीय हेवर्थ नाचती, धूम मचाती, आई, तो नवाब साहब आपे से बाहर हो गये। हाथों को मिरोड़कर, उँगलियाँ चटखाने लगे। बोले—“देखिये इन लोनो की हेल्थ कितनी अच्छी होती है। हट ए न्यूटी!”

मैंने उत्तर दिया—“नवाब साहब, यह क्या है? पैरिस के स्टेज पर जो नाच होते हैं, उनके मुकाबले में तो यह कुछ भी नहीं।”

“सच?” नवाब साहब ने मुँह खोल कर, मेरी ओर देखा।

“आप तो पैरिस कई बार गये होंगे,” मैंने उन्हें याद दिलाया।

“यस, यस, गया हूँ,” नवाब साहब ने सँभल कर, जगमग दिया—
“लेकिन...ही-ही...आप जानते हो हैं, कि शहजादी मेरे साथ होती
थी। भला उसके साथ मैं नाच वगैरा देखने कैसे जा सकता था ?”

“ठीक है, ठीक है।”

मैंने पैरिस के बारे में सुनी-सुनाई बातों को याद कर के, उन्हें कई
कहानियाँ सुनाईं। मालूम होता है, कि औरतों की बातें सुन कर उनके
जिस्म के रोंगटे खड़े हो गये। वेचैन होकर, बोले—“उफ़-उफ़—बहुत
मज़ा आता होगा तब तो।”

“बस, कुछ न पूछिये ! बिलकुल परिस्थान होता है।”

यह सुनकर, नवाब साहब मेरे हाथ पर हाथ मार कर, और एक
आँख बन्द कर हँसे। फिर तो वे खूब खुल कर ग्वेले। उन्होंने आप-
बीतियाँ सुनाईं। कुछ मैंने कथा-कहानी गढ़ कर उन्हें खुश किया। यहाँ
तक कि जब पिक्चर खत्म हुई, तो हमारे सम्बन्ध काफ़ी गहरे हो
चुके थे।

गैलरी से उतरते वक्त उन्होंने कहा—“कुँवर साहब, मेरी कार
आई होगी। मैं आपको आपके निवास-स्थान तक छोड़ आऊँगा।”

मेरे पाँव तले से जमीन खिसक गई। कुछ सूझ नहीं रहा था।
परन्तु नीचे जाकर मालूम हुआ, कि अभी कार नहीं आई। इस पर
नवाब साहब चिन्तित दिखाई देने लगे। बोले—“कुँवर साहब, डरता
हूँ, कि कहीं जहाँपारा किसी दुर्घटना में न पड़ गई हो। यह मुमकिन ही
नहीं कि वह ऐसी गफलत से काम ले।”

मैं खुश हुआ, और उन्हें तसल्ली देते हुये बोला—“अजी, नहीं !
उन्हें पिक्चर खत्म होने का टाइम न मालूम होगा, वरना ज़रूर पहुँच
जाती।”

मौका पाकर मैंने खिसक जाने की ठानी। नवाब साहब ने मुझे

मैं जरूर रोऊँगी !

रोकने की बहुत ही कोशिश की, पर मैंने बहाना किया, कि “मुझे बहुत जरूरी काम है। फिर मिलूँगा।”

वे बोले—“अच्छा, फिर कब मिलियेगा ?”

“जब आप फरमाइये।”

उन्होंने हिसाब लगा कर, कहा—“आज इतवार है। अच्छा बुध के रोज़ मिलिए। शाम को चार बजे चाय हमारे साथ पीजिये।”

“बेहतर है। लेकिन, नवाब साहब, आप रहने कहाँ हैं ?”

“३२, पटौडी हाउस।”

“बेहतर।”

“भूलियेगा नहीं। अरे, भाई, जहाँपारा से आपका जिक्र आयेगा, तो मचल जायगी। कहेगी, ‘अभी मिलवाइये।’”

इसके बाद हमने बड़े जोर-शोर से हाथ मिलाये। फिर जो मैं भागा, तो सीधे अपने कमरे में आ कर दम लिया।

रात भर शाहजादी जहाँपारा की खयाली तस्वीर के सपने आते रहे।

दूसरे दिन मैंने सोचा, कि नवाब के यहाँ जाने के लिये कम-से-कम एक सूट तो ऐसा हो जो पहन कर जा सकूँ। इसके बाद रुपये का सवाल पैदा हुआ। कुछ उधार और कुछ कितानें बेच-बाच कर बढ़िया सूट का कपड़ा खरीदा, और अपने पुराने दर्जी के यहाँ गया, और कहा -- “एक सूट अजेंट मिलना है।”

“अरे, साहब कहीं दो महीने के बाद तो सूरत दिखाई, और वह भी अजेंट काम लेकर !”

इतने में सामने नजर पड़ी, तो मैंने एक सूट खूँटी पर लटका देखा। दिमाग पर जोर डालने पर याद आया, कि यही सूट नवाब साहब पहने हुए थे। मुझे हैरानी हुई। सोचा, कि शायद मरम्मत के लिए भेजा हो। मैंने उसके बारे में दर्जी से पूछा, तो उसने बताया—

एक ही नाव पर

“यह एक नवाब साहब का सूट है। वे कुछ दिनों से बाहर गये हैं। इसलिए ले नहीं गये।”

मैंने हैरानी से पूछा—“क्या आज-कल आप से नवाब भी सूट सिलाने लगे हैं?”

“अजी, बाबूजी, आज-कल मेरे पास एक बहुत बढ़िया कटर आ गया है। विलायत-पास कटर का शागिर्द रह चुका है। कपड़े में जान डाल देता है। अबे, लड़के, जरा जुल्ले खाँ को बुला। नाप ले ले बाबूजी का।...बाबू साहब, अब की आप अपना सूट देख कर हैरान रह जायेंगे।”

अब मैंने भी सारा किस्सा कह सुनाया—“अरे, भाई, मैं एक दास्त का ओवर-कोट पहने था। सो! एक नवाब साहब मुझे भी कहीं का राजा समझ बैठे। परसों मुझे चाप पर बुलाया है...”

“जुल्ले खाँ आ गया। जाइये, नाप दे दीजिये।”

मैंने धूम कर देखा। जुल्ले खाँ—अरे, नवाब साहब!

मैं आश्चर्य की वजह से कुछ बोल न सका। मेरे सामने ‘नवाब साहब’ ढीला-ढाला पैजामा पहने खड़े थे। गले में मैला-कुचैला फीता लटक रहा था। मालिक ने फिर कहा—“आप ड्रेसिंग-रूम में जाकर नाप दे दीजिये।”

आगे-आगे जुल्ले खाँ, पीछे-पीछे मैं। दोनों चुप।

ड्रेसिंग-रूम में पहुँचते ही, जुल्ले खाँ ने धूम कर, मुझे फर्शाई सलाम किया, और बड़ी गम्भीरता से एक आँख बन्द करके, मेरी ओर देखते हुए, फरमाया—“कुँवर चन्द्रभान सिंह सूर्यवंशी!”

मैंने और भी ज्यादा आदर के साथ आदाब-अर्ज करते हुए, जवाब दिया—“आला हज़रत नवाब दोस्त मुहम्मद यार जङ्ग बाहादुर!”

बाबा मंहगासिंह

एक हमारे मामा जी हैं, जो शहर में किसी न किसी काम से आते रहते हैं। रात के प्रायः मेरे घर ही बिताते हैं, और जब विदा होने लगते हैं, तो मुझे अपने साथ ले जाने का आग्रह करते हैं। मुझे गाँव से कोई दिलचस्पी नहीं। खुली हवा, दूध, दही और सीधे-सादे, भोले-भाले लोग से मुझे क्या मतलब ? मैं दूध के बजाय चाय पीना पसन्द करता हूँ। खुली हवा के बजाय कॉफी हाउस का धुँआधार वातावरण अच्छा लगता है। गाँव के सीधे-सादे लोगों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने के बजाय मैं आराम कुर्सी पर बैठकर किसी दोस्त के साथ उन बेचारों की उन्नति के विषय पर बात-चीत करना अच्छा समझता हूँ। स्वास्थ्य विज्ञान की

दृष्टि से शहर के हानिकारक वायुमंडल में चालीम वर्ष जीने को गाँव में अस्सी वर्ष तक जीवित रहने पर तरजीह देता हूँ...लेकिन मामा जी के आग्रह पर विवश हो कर एक बार गाँव में जाना पड़ा ।

गाँव में पहुँचकर मुझे निराशा बिलकुल नहीं हुई, बल्कि कुछ प्रसन्नता हुई कि गाँव के बारे में मेरे जो विचार थे, वे सही निकले । अब हर तरफ खुली हवा थी । कोई अच्छा मकान नहीं, कोई कम्युनिस्ट नहीं, बस खुली हवा है, और मुझे इस बात पर खुश होने की दावत दी जा रही थी । मैं मामा जी के बाहर वाले बैठक में बैठा जम्हाइया लिया करता और घर के सामने खुली जगह में मामा जी की भैंस दुम हिलाया करती । कभी-कभी मेरी ओर देखती, मानो कह रही हो— ‘कहो बेटा ! दूध पियोगे, मक्खन चाओगे, दही खाओगे...’ मैं कहता—‘मैंडम ! आप दूध के बजाय गर्म चाय क्यों नहीं देती ? मालूम देता है कि आप को चाय का स्वाद नहीं मिला । नहीं तो...’ भैंस भी आखिर देहाती ठहरी । वह बात काट कर सींग हिलाने लगती और फिर अपनी बैकद्री पर उदासी होकर बड़ी-ही बेपरवाही से पूरव की ओर देखने लगती और मैं गई की गिरह ढीली करके पाँचलूम की तरफ नज़र जमा लेता ।

दो ही दिन बाद मुझे विश्वास हो गया कि इस जगह मेरे देखने की कोई चीज़ नहीं है । अलबत्ता मैं गाँव वालों के लिए देखने की चीज़ हूँ । मामा जी मुझे अपने साथ लेकर बाहर निकलते तो जो भी परिचित निकलता—और गाँव भर में कोई ऐसा व्यक्ति न था जो उनका परिचित न हो—उसे मेरे सम्बंध में सारी बातें बताते । वे लोग मुझे सिर से पाँव तक आँखे पाड़-पाड़ कर देखने लगते । उनके इस व्यवहार से मैं भूल ही गया कि मुझे भी यहाँ कुछ देखना है...वे प्यारी-प्यारी देहाती लड़कियाँ, जिनकी तरबूज-तरबूज भर छातियाँ—जिन्हें देहाती सचमुच छातियाँ समझते हैं...और उनके वे गोबर में सने हाथ, जिन्हें पैला कर वे कुछ ऐसे निर्भीक भाव से मेरी ओर देखती थीं कि मैं अपने आपको

मैं जरूर रोऊँगी !

बिल्कुल बुद्ध जाहिर करने लगता । आँख मारना तो दूर रहा, मुस्कराने तक का साहस न होता था...और बेचारे भोले-भाले नौजवान, जिनकी सूरतों से प्रगट होता था कि यदि मेरे साथ मामा जी न होते तो वे एक टके के लिये भी मेरे प्राण लेने के लिये संकोच न करते ।

उस वातावरण में मेरे लिये और अधिक दिनों तक ज़िन्दा रहना असम्भव हुआ जा रहा था । मुझे बड़ी धूम-धाम से वहाँ ले जाया गया था, और मैं भी बड़ी शान से वहाँ गया था । इसलिये दो ही दिन बाद लौट आना बिल्कुल अनुचित लगता था । न जाने मैं क्या कर डालता, यदि सचमुच मेरी दिलचस्पी का सामान न पैदा हो जाता । दूसरी कई चीजों के साथ मेरे मन में सबसे अधिक आकर्षण सरदार मंहगासिंह के प्रति उत्पन्न हुआ ।

एक दिन सुबह के वक्त जब कि मामा जी मुझे पूरा आवा सेर दुहा हुआ दूध पिलाने पर तुले हुए थे, सरदार मंहगासिंह उधर से निकला । मामा जी से साहब सलामत थी, अतः 'वाह गुरु जी की फ़तह' कह कर आगे बढ़ गया और फिर मुझे मामा जी की बातों से मालूम हुआ कि वह तो मेरे लिये एक शिक्षाप्रद वस्तु था । वह कैसे ?—उस समय सरदार मंहगासिंह की आयु तीन कम अस्सी वर्ष की थी । किन्तु उस अवस्था में भी दो-चार सेर दूध एक ही साँस में पी लेना उसके लिये असाधारण बात न थी । और इधर मैं, जो अभी नौजवान था आध सेर भी दूध नहीं पी सकता । सरदार मंहगासिंह तो जवानी में दूध से भरे घड़े को मुँह लगा दिया करता था ।

“पीने के लिये !” मैंने चकित होकर पूछा ।

“और नहीं तो क्या ?” मामा जी ने हँस कर जवाब दिया ।

मैं खेतों में गायब होते हुए मंहगासिंह को देखता रहा । उसका ऊँचा कद, लम्बी दाढ़ी और बड़े-बड़े हाथ पाँव...

“काम क्या करता है ?”

“कुछ नहीं, अपनी ज़मीन की देख-भाल करता है। पहले डाके डालता था, अब ‘बाह गुरू’ की भक्ति करता है।”

मुझे मंहगासिंह के व्यक्तित्व से दिलचस्पी पैदा हो गई। वह एक प्रतिभाशाली व्यक्ति था। राजनीति, अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान आदि विषयों पर वह बातें नहीं कर सकता था, लेकिन एक मनुष्य की हैसियत से वह अवश्य ही बहुत दिलचस्प था। उसका राक्षसों के समान डील-डौल, गैँडे की तरह खाल, मुरब्बे वाली फूँती हड़ की सी आँखें, घने बालों से ढँकी हुई छाती, छाज की तरह कान, प्राचीन ‘बाबूली’ बादशाहों की तरह बड़ी हुई लम्बी ढाढ़ी और मूँछें देख कर किसी को संदेह भी नहीं हो सकता था कि वह गुदगुदी पैदा करने वाले किमी चुटकले को सुन कर कहकहे भी लगा सकता था।

चाँदनी रातों में गाँव से बाहर करीब-करीब रोज़ ही गाँव के नवयुवक कबड्डी खेला करते थे। लेकिन अँधेरी रातों में प्रायः वे मंहगासिंह को घेर लेते थे। मंहगासिंह के जीवन में असंख्य मनोरंजक घटनाएँ घट चुकी थीं। जिन अपराधों का सबूत मिल गया था, उनके दण्ड वह भोग चुका था। और जो अपराध सिद्ध न हो सके थे, उन्हें दुनिया ने माफ़ कर दिया था। अब वह ‘बाह गुरू’ का नाम जपता था, या गाँव के नौजवानों को कोई मजेदार किस्सा सुना देता था।

गाँव से लगभग एक पल्लांग पर लफ्टेन की बगीची, यानी लेफ्टिनेन्ट का बाग था। मैंने उसके नामकरण का इतिहास जानने की कभी चेष्टा ही नहीं की। अस्तु, उस बगीचे के पास एक ऊँचा टीला था। मंहगासिंह रात का भोजन करने के बाद उस टीले पर जा बैठता और प्रेमरस में डूबे हुए शब्द अपनी बेढब आवाज़—किन्तु अपनी समझ में बड़ी ही लय के साथ पढ़ा करता था। कुछ और भी आदमी उसके पास आ बैठते। दाढ़ियों पर हाथ फेर-फेर कर शब्दों के अर्थों की प्रशंसा करते। कभी-कभी प्रेमरस और ज्ञान-ध्यान से अचानक कतरा कर वे औरतों की

मे जरूर रोऊंगी !

बातें करने लगते । उनके बालों, आँखों, हाँठों गर्दन, और छातियों से हाँते हुए गहराइयों तक उतर जाते । सब भिन्न-भिन्न कर बड़ी गन्दी बातें करते और जब जी भर जाता तो सारी बात-चीत का एक बहुत ही ऊँचा नैतिक निष्कर्ष निकाल लेते । और फिर सब बड़े ज्ञानियों की तरह जीवन की निस्सारता पर लम्बी आँहें भरते हुए उठकर गाँव की ओर चल देते ।

मेरा भी यह नित्य-क्रम हो गया था कि साँभ का भोजन करता और बाबा जो के टीले का आर चला देता । बाबा मंहगासिंह आँखें मूँदे, गुरु-चरणों में शीश नवाये, कपड़ा की बनी माला जपते या शीश नवाते । जिस दिन का बात अब कर रहा हूँ, उस दिन भी सब लोग प्रेम रस में रसगुल्ले बने बैठे थे । न जाने औरतों की चर्चा क्यों ओर कहाँ से शुरू हुई । उस दिन न री जाति पर नया आरोप लगाया गया और बाबा मंहगासिंह ने पहले गुरु साहब के लिखे हुये स्त्री-चरित्र का उल्लेख किया और फिर उसकी चर्चा छोड़ व्यक्तिगत वर्णन करने लगे ।

हम सब उनके और निकट सरक कर बैठ गये ।

तारों के मद्धिम प्रकाश में जब मंहगासिंह ने इस नये विषय पर बात करने के लिये मुँह खोला तो उसकी आँखों में एक नई चमक पैदा हो गई । उसकी हवा में लहराती दाढ़ी मानो हवा में भूम-भूम कर प्रसन्नता प्रगट करने लगी ।

“स्त्रियों की चालाकी ?... हा, हा, ... पुरुष अपने को चाहे कितना ही बुद्धिमान क्यों न समझे, लेकिन स्त्री के सामने उसकी एक नहीं चलती । अब मैं आप-बीती सुनाता हूँ, जो वैसे तो सुनने में इतनी आश्चर्यजनक है कि शायद तुम लोगों में से कुछ को इस बात का विश्वास भी न हो ।”

हम सब उनके मुँह से निकला हुआ एक-एक शब्द ध्यान से सुन रहे थे । असल बात शुरू करने के पहले उन्होंने बताया कि उस समय उनकी आयु तीस वर्ष के लगभग थी । वे बहुत शक्तिशाली जवान थे ।

धूसा मार कर ईंट तोड़ डालते थे। कई जबरदस्त डाके डाल चुके थे। इलाके भर के लोग तो उनका नाम सुन कर थर-थर काँपते थे। पुलिस तक का साहस न होता था कि...

यह भूमिका काफी लम्बी थी। बाबा मंहगासिंह यह बातें पहले भी इतनी बार दोहरा चुके थे कि हम उसे सुन-सुन कर तंग आ चुके थे। लेकिन न उसे टोका जा सकता था, न उसका प्रतिवाद किया जा सकता था। वह अब भी लड़ने-मरने पर उतारू हो जाता था। आखिर वह असल कहानी की ओर आया।

“...जिस घटना की अब मैं चर्चा करने वाला हूँ, उसके पहले कई दिन कोई माल हाथ न लगा था। यों तो ‘वाह गुरू’ का दिया सब कुछ था, और फिर अपने बाजू की ताकत से भी बहुत कुछ कमाया था, लेकिन शरीर में बल था और बल का प्रयोग भी तो आवश्यक था न ?...हाँ भई, चरन सिंह ! तुम तो लगभग मेरी ही उम्र के हो न ? तुम्हे याद है ? केलों के गेव के इर्द गिर्द का इलाका कितना खतरनाक समझा जाता था..”

“हाँ, मुझे याद है। वहाँ बड़े-बड़े दरखतों के झुण्ड और झाड़ियाँ कोसों तक चली गई थीं। जंगल ही जंगल था...”

मंहगासिंह ने फिर बात शुरू की। “बड़ा मुनसान इलाका था। वहाँ या तो भेड़िये रहते थे या डाकुओं के गुप्त अड्डे थे। मुझे भी कभी-कभी वहाँ शरण लेनी पड़ती थी...एक बार काफ़ी अरसे तक छिपे रहने के बाद मैंने अपने घर जाने की ठानी—महीनों से न घर वालों की मुझे और न मुझे घर वालों की कोई खबर रही थी। मैंने दो-तीन साथियों से कह दिया था कि मैं अधिक से अधिक आठ-दस दिन तक लौट आऊँगा। और अगर मैं इतने अरसे के अन्दर-ही-अन्दर न लौटूँ तो समझना कि गिरफ्तार हो गया हूँ। फिर मुझे जेल से छुड़ाने का प्रयत्न करना...

मैं जरूर रोकूँगी !

बाबा मंहगासिंह अपनी टोंगां को सहलाते हुए ज़रा रुका । फिर बोला—“अपने गाँव तक चालीस कोस का फ़ासिला था । सोचा, रात को सफ़र किया करूँगा और दिन को कहीं छिप रहूँगा । जंगल ख़तम होते ही पहला गाँव ‘केलाँ’ था । रात आधी से अधिक बीत चुकी थी । मेरे हाथ में एक लम्बा लट्ट और कमर से एक डेढ़ फ़िट क्रिपान लटकी हुई थी । यह क्रिपान मैंने ख़ालिस लोहे की बनवाई थी...उस समय मुझे सिवाय जानवरों के और किसी का ख़तरा न था । केलाँ के लोग चूँकि बड़े ख़तरनाक इलाके में रहते थे, इसलिए सर्दियों में तो शाम पड़ते ही घरों में घुस बैठते थे । मैं मजे से शब्द गुनगुनाता खेतों के बीच में से होता हुआ चला जा रहा था । एकाएक जो मेरी नज़र उठी तो एक बड़ा विचित्र दृश्य दिखाई पड़ा ।...केलाँ से कई खेत इधर दरखतों के झुंड के पीछे स्मशान और कब्रस्तान साथ-साथ कुछ इस ढंग से बने हुए थे कि अगर गाँव से एक तरफ़ देखा जाय, तो सिवाय उन घने दरखतों के और कुछ भी दिखाई नहीं देता था ।...देखता क्या हूँ कि कब्रस्तान में तेज़ रोशनी हो रही है । पहले मैंने खयाल किया कि हो सकता है स्मशान में कोई मुर्दा जलाया गया हो, और आग अभी जल रही है । लेकिन यह रोशनी कुछ और ही तरह की थी और फिर क्षण प्रति क्षण तेज हो रही थी...।

सब लोग बिना आँखें भपकाये मंहगासिंह की ओर देख रहे थे । मंहगा सिंह ने डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए अपना बयान जारी रक्खा ।

“वह रोशनी देखकर मेरे मन में कई तरह के विचार उठे । जरा ग़ौर करने की बात है कि ऐसी सुनसान जगह, अँधेरी रात, राजव की सर्दी, हर तरफ़ सन्नाह...और कब्रस्तान में बढ़ती हुई रोशनी ! पहले मैंने सोचा—हे मना ! तुझे इन बातों से क्या लेना ? सीधा रास्ता नापता चला जा ! तुझे मंजिल पर पहुँचना है । वाह गुरु की बातें वाह गुरु ही जाने ।—लेकिन मन की तसल्ली न हुई और मैंने सोचा, देखूँ तो

रही, आखिर मामला क्या है ?...तो भाई, मैंने अपना रास्ता छोड़ कर कब्रस्तान का रुख किया। कब्रस्तान मुझसे काफी फासिले पर था। जैसे-जैसे मैं करीब पहुँच रहा था, वैसे-वैसे रोशनी और साफ नज़र आने लगी थी। कब्रस्तान से कुछ फासिले पर मैं रुक गया।...घनी भाड़ियों में न सिर्फ आग की रोशनी साफ नज़र आ रही थी, बल्कि वहाँ कोई चीज हिलती हुई भी दिखाई पड़ी। पहले सोचा शायद मेरा वहम हो, चुपचाप खड़ा देखता रहा। ऐसा लगा मानो दो सींग हिल रहे हों। मैं कदम नापता, दरखतों की आड़ लेता हुआ कुछ और करीब पहुँचा तो सर से पाँव तक बिल्कुल काली गाय दिखाई पड़...आग का एकाध शोला भाड़ी के ऊपर लपकता हुआ दिखाई पड़ जाता था।...वह काली गाय वीराने में अकेली खड़ी बिल्कुल चुड़ैल का रूप मालूम होती थी। मैंने हमेशा बाह गुरु अकाल पुरुष पर भरोसा किया है...अतएव मैं 'बाह गुरु' का नाम लेकर आगे बढ़ा। फिर ठिठक गया। कुछ इस तरह का सन्देह हो रहा था कि वहाँ कोई और हस्ती भी है। रात घोर अधियारा थी। दरखतों के वह हिस्से जहाँ आग की रोशनी नहीं पहुँच रही थी, बड़े भयानक दिख रहे थे। मैंने एक नज़र अपने सर के ऊपर डाली, टहनियों पर भी डाली कि कहीं वहाँ कोई छिपा न बैठा हो..."

हम लोग उसकी आवाज़ की गूँज और शब्दों के जादू से बुत बने बैठे थे। श्रोताओं में से किसी के मुँह से थरथराती हुई आवाज़ निकली—“फिर...तुमने क्या देखा..."

“मैं फूँक-फूँक कर कदम रख रहा था। एक दरखत की ओट से दूसरे दरखत की ओट तक बढ़ी ही सावधानी के साथ चलता हुआ मैं बिल्कुल करीब पहुँच गया। मैंने ज़िन्दगी बड़े-बड़े वीरानों में बिताई है। बहुत से अजीब दृश्य देखने में आये हैं। लेकिन जो दृश्य मैंने वहाँ देखा वह मरते दम तक न भूलूँगा...गाय के करीब एक कब्र के पास बड़ा-सा

मैं जरूर रोऊँगी !

चूल्हा बना हुआ था। उसमें आग जल रही थी। कुछ बर्तन पड़े थे, पानी का एक कोरा मटका...इन सब चीजों के बीच एक औरत..."

“औरत ...!” सब के मुँह से निकला।

“हाँ, औरत...बीस इक्कीस वर्ष की अवस्था होगी। इतनी सुन्दर और ऐसी जवान कि मैं बयान नहीं कर सकता। मैं तो उसे देख कर हक्का-बक्का रह गया। सोचा, न जाने यह परी है सचमुच या किसी चुड़ैल ने परी का रूप धारण किया है। दरख्त के तने से लगा हुआ मैं चुपचाप उसे देखता रहा। ...सोचने की बात है कि ऐसी काली रात में आबादी से परे, वीराने बालूक क़ब्रस्तान में किसी नौजवान और हसीन औरत का यह साहस कैसे हो सकता था ? मैंने मन में कहा कि देखें अब यह औरत क्या करती है...उसने मेरे देखते-देखते चूल्हे में ओर लकड़ियाँ डाल दीं। आग धधक उठी। फिर उसने सर से ड्रपट्टा उतार दिया। उसके काले बाल दिखाई देने लगे। उसने जूड़ा खोला और फिर सारी चीटी खोलकर बाल बिखरा दिये और रुई की सदरी के बटन खोलने लगी। सदरी के नीचे एक वास्कट पहन रखी थी। उसके बटन खोल कर उसे भी उतार दिया। और जब उसने कमीज के बटन भी खोलने शुरू किये तो मेरा दिल धड़कने लगा।...वाह गुरु !...वाह गुरु !!...बटन खोलने के बाद उलटा कर कमीज को भी उतार दिया। अब उसके शरीर के ऊपर वाले हिस्से पर एक तार नहीं था...आप लोग मेरी हैरानी का भली-भाँति अनुमान कर सकते हैं। उस समय मुझे भी अपने इर्द-गिर्द की खबर न रही। दिल धड़क रहा था। न जाने यह औरत क्या करने का है। मैं एक बच्चे की सी हैरानी के साथ उसकी ओर देखता रहा। और अब जो उसने अपनी सलवार का इजारबन्द खींचा तो मैंने दूसरी तरफ़ मुँह फेर लिया...कुछ क्षणों तक मेरी हालत कुछ अजीब सा हो गई। मैंने समझा कि यहाँ जरूर भूतों और चुड़ैलों का अड्डा है। इतने में पानी गिरने की आवाज आने

लगी। मैंने झिझकते हुए उस तरफ़ निगाह उठाई तो औरत ने पानी का मटका काली गाय के सर पर सींगों में फँसा कर रख दिया था। एक हाथ से उसने मटका थाम रक्खा था, दूसरे हाथ से लोटे भर-भर कर अपने बदन पर डाल रही थी। नहा कर उसने एक चादर से बदन पोछा। बिना कपड़े पहने उसने एक रङ्गीन टोकरी में से गहने निकाल कर पहनने शुरू कर दिये। अंगूठियाँ, कड़े, पहुँचियाँ तोड़े, कंठा, बाजू-बन्द, बालियाँ, सारांश यह कि सर से पैर तक सोने में पीली हो गई...।”

हम में से एक ने कहा—“ऐसी सर्दों में...उसने कपड़े नहीं पहने...”

“नहीं...यही तो हैरानों की बात थी। अब उसने एक छोटी-सी रकबी से कपड़ा सरकाया। उसमें गूँथा हुआ आटा था। चूल्हे पर तवा रक्खा और आटे को पराठे की तरह लपेट कर तवे पर डाल दिया और उसे घी में तलने लगी।

“अब मैं सोचने लगा कि मुझे क्या करना चाहिये। मैंने सुना था कि परियों की कमर का पिछला हिस्सा खोखला होता है, यानी रीढ़ की हड्डी नहीं होती। दूसरे भूतों का साया नहीं होता पर उस औरत का साया साफ़ नजर आ रहा था। और फिर हर चीज़ इतनी साफ़ थी कि मैंने समझ लिया कि दाढ़ में कुछ काला है। भूतों-चुड़ैलों पर मेरा विश्वास नहीं था, लेकिन उस औरत का मामला इतना अजीब था कि विश्वास न होता था कि एक जवान और हसीन औरत ऐसी सुनसान जगह पर आने का साहस कर सकती है। खैर, अब मैंने कदम बढ़ाया और उससे चन्द कदम परे खड़ी हुई गाय की पीठ से टेक लगा कर खड़ा हो गया...गाय के शरीर का छूकर मेरा विश्वास पक्का हो गया कि यह कोई असाधारण जीव नहीं है। अभी मैं खड़ा ही हुआ था कि उस औरत की निगाह मेरे पाँव पर पड़ी और एकाएक उसने निगाह उठा कर मेरी ओर देखा। अब एकदम उसकी सूरत विकृत हो गई। बाछें

चिर'गई', दाँत चमकने लगे, नथुने फैल गये और आँखें जैसे उबल पड़ीं ।...हाथों की उँगलियों में कँपकँपी सी उत्पन्न हुई और वह बाल फैलाये, 'कलेजा खालूँगी, कलेजा खालूँगी' कहती हुई मेरी ओर झपटी । उसकी आवाज सुनकर मुझे इतमीनान हो गया कि यह कोई औरत है चुड़ैल नहीं । जैसे ही वह मेरे पास पहुँची, मैंने मुस्करा कर उसके दोनों हाथ पकड़ लिए । वह वहशियों की तरह दाँत काटने लगी । मैंने जोर से उसे पीछे की ओर ढकेल दिया । वह गिरते ही फिर उठ कर मुझसे गुत्थम-गुत्था हो गई । उस औरत में गजब की ताकत थी । लेकिन स्पष्ट है कि हम दोनों वा कोई मुकाबला ही न हो सकता था । मैंने तंग आकर उसके बालों को हाथ में पकड़ कर खूब भंभोड़ा और उसकी पीठ पर दो-तीन हाथ भी जमाये, लेकिन सिर्फ उतनी ही जोर से जितना वह सहन कर सके । फिर मैंने उसकी कोमल गर्दन को अपनी लम्बी उँगलियों की पकड़ में लेकर कहा—'देखो, अगर ऐसी छिछोरी हरकतें करोगी तो तुम्हें जान से मार डालूँगा'...वह बेचारी थक कर हाँफ रही थी । मैंने उसे परे ढकेल कर कहा—'जरा वहाँ खड़ी होकर बातें तो करो मुझसे...'

'अब उसे भी इस बात का विश्वास हो गया कि मैं उसकी असलियत समझ चुका हूँ, इसलिए अधिक हील-हुज्जत व्यर्थ थी । सहसा उसने चादर उठाई और अपने शरीर पर लपेट ली और उसकी आँखें नीचे झुक गईं । मैंने इस आडम्बर का उद्देश्य जानने की चेष्टा की । वह जमीन की ओर देखती रही और भिन्न-भिन्न कर बातें करती रही । अब उसे मुझसे डर मालूम होता था । उसकी बातों से मालूम हुआ कि चार वर्ष पहले उसका विवाह एक बड़े साहूकार से हुआ था, लेकिन अब तक वह सन्तान के लिए तरस रही थी । और उसका पति दूसरे विवाह पर तुला हुआ था । इधर वह परेशान थी । आखिर एक बूढ़ी स्त्री ने उसे यह नुस्खा बताया था कि काली गाय के सर पर पानी का मटका रखकर कन्नूरस्तान से स्नान कर और वहीं से एक पराठा पका कर ला और किसी

सन्तान वाली स्त्री को खिला दे तो उसके बच्चे मर जायेंगे और तेरे घर सन्तान होगी।...मैंने यह सुना तो ठहाका मार कर हँसा। उस समय गहनों से लदी हुई वह औरत आग की रोशनी में बहुत हसीन दिख रही थी। मैंने आगे बढ़ कर उसके गाल को छुआ। वह तुरन्त पीछे हट गई। कैसी नर्म त्वचा थी उसके चेहरे की और कितनी भोली सूरत थी उसकी।

“उसने रोष प्रगट करते हुए कहा—‘तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं एक भले घराने की औरत हूँ।’

“मैंने हँसकर कर कहा—‘मुझे मालूम है कि तू भली औरत है लेकिन हे भली स्त्री ! मैं भी भले खानदान का आदमी हूँ। पराई स्त्री की तरफ बुरी नियत से देखना पाप समझता हूँ। गुरु का दिया खाता हूँ। जब तक बिल्कुल लाचार न हो जाऊँ कभी किसी पर हाथ नहीं उठाता। इसलिए तू घबरा मत...लेकिन यह बात सुन ले कि तू ने सन्तान प्राप्ति का जो तरीका अपनाया है, यह बहुत बड़ा पाप है। किसी का बुरा चाहना भले आदमी का काम नहीं है। बड़े-बड़े ऋषियों, गुरुओं, नवियों किसी ने भी सन्तान प्राप्ति का यह तरीका नहीं बताया जो तू अपना रही है।’

“यह कहकर मैंने कुछ डाढ़ी को सँवारा...कुछ पगड़ी को दुरुस्त किया, अँगौछे से मुँह और बाजुओं की गर्द पोछी और भई मैं भी खासा कड़ियल जेवान था, वह मुस्कुरा दी...”

बाबा मंहगासिंह चुप हो गये। हमने कहा—“बाबा जी ! इसके बाद फिर तुमने कभी मिलने की कोशिश की...?”

“हाँ, लेकिन फिर मुलाकात नहीं हुई।...मालूम होता है कि फिर उसे कभी मेरी जरूरत ही न पड़ी होगी...और यह भी हो सकता है कि खफा हो गई हो।”

“क्या तुमने खफा होने की कोई बात की थी ?”

“नहीं, उसे मेरी कोई बात नापसन्द नहीं थी। अलबत्ता जब वह जाने

मैं जरूर रोऊँगी !

लगी, तब मैंने उसका कंठा पकड़ लिया। वह हैरान सी रह गई। बोली—
‘तुम्हारा मतलब ?’ मैंने जवाब दिया कि इससे पहले तो मेरा कोई
मतलब ही नहीं था। मेरा असल मतलब यही है। उसने कहा—‘अकेली
जान कर मेरे गहनों पर हाथ डाल रहे हो ?’ मैंने जवाब दिया—‘चलो गाँव
में जितने आदमियों के सामने कहो, तुम्हारे गहने उतार लूँ।’ उसे मेरा
यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया, अतः उसने सारे गहने उतार कर मेरे
हवाले कर दिये...।’

यह कहकर बाबा जी ने सर झुका लिया, और फिर जैसे ध्यान मग्न
हो गये। एक बुजुर्ग बोले—“देखो, ऐसी पाजी होती हैं औरतें।”

लौजिये—मैं मन में सोचने लगा—मारूँ घुटना फूटे आँख। इस
किस्से का क्या ही शानदार नैतिक निश्कर्ष निकाला गया है। सब लोग
आपस में औरतों की बदमाशी और उनकी चालाकी की चर्चा करने
लगे। लेकिन बाबा जी अभिमुँदी आँखें किये चुपचाप बैठे रहे।

“वाह गुरु, वाह गुरु !!” उनके होंठ हिले।

मैंने उन्हें उदास देख कर पूछा—“बाबा जी, आपने उस औरत
के गहने उतार लिए। शायद आपको इसी बात का दुःख हो रहा है
इस वक्त।”

बाबा जी के भारी पपोटे हिले और उन्होंने मेरी ओर प्रेम भरी
दृष्टि से देखते हुए ठंडी आह खींची और बोले—“नहीं, मुझे इसका
दुःख नहीं, दुःख इस बात का है कि पचास वर्ष होने को आये, वाह
गुरु अकाल पुरुष ने मुझे फिर कभी ऐसा अवसर प्रदान न किया...”

कठिन डगरिया

रिक्खी चन्द दूकान से वापस आ रहा था। सूरत से प्रगट होता था कि वह उस समय कोई मजेदार बात सोच रहा है। होठों पर मुस्कराहट खेल रही थी... चलते-चलते जब उसे सिगरेट सुल्लगाने की इच्छा हुई तब उसे ध्यान आया कि माचिस तो दूकान पर ही रह गई है। खैर, कोई हर्ज नहीं है। अब वह घर के पास पहुँच चुका है... वह अपनी धुन में इतना मग्न था कि उसे सिगरेट मुँह से निकालने का खयाल तक न आया। किसी राह चलते की दृष्टि उसके ढीले ढाले होठों में फँसे सिगरेट पर जा पड़ती तो वह अनायास मुस्करा देता... और रिक्खी चन्द स्वयं भी मुस्कराये जा रहा था। कभी सिर हिलाने लगता,

मैं जरूर रोऊँगी !

कभी होटों ही होटों में कुछ कहने लगती...वह बिल्कुल पागलों की सी हरकतें कर रहा था ।

लेकिन वह पागल नहीं था । चौतीस-पैंतीस वर्ष के लगभग उसकी आयु थी । सूरत भी बुरी नहीं थी । स्वास्थ्य भी काफी अच्छा था । तीन बच्चों का बाप था । ऊँचे पैमाने पर रेडियो की एक दूकान चला रहा था । वह बड़े नियमित रूप से काम करने वाला आदमी था । ग्यारह बजे दूकान पर जाता । उसका सहकारी वहाँ पहले ही से उपस्थित रहता था । एक से दो बजे तक लंच के लिए दूकान बन्द कर दी जाती । शाम के पाँच बजे के करीब वह घर चला आता । लेकिन दूकान सात बजे तक खुली रहती । आज कारबार के सिलसिले में एक आदमी से मिलने के लिए उसे दिल्ली जाना था । उसने अपनी पत्नी शान्ता को सामान तैयार करने को भी कह दिया था । लेकिन अचानक दूकान पर उसे तार मिला की कल वह आदमी स्वयं ही कानपुर पहुँच रहा है । चलो, सफर की कठिनाई से जान बची, उसने सोचा । लेकिन आज शाम का प्रोग्राम क्या हो ? यह सवाल अनायास उसके मन में उभर आया और वह कुछ क्षणों तक अकारण ही इस चिन्ता में खोया रहा और फिर उसके मन ने उसे राय दी कि यह शाम अपने दोस्त बैजनाथ के यहाँ बिताई जाय, बल्कि रात का भोजन भी वहीं किया जाय ।

कुछ दिन से बैजनाथ की पत्नी कामिनी उसके लिए विशेष आकर्षण का कारण बनी हुई थी ..यह बात शिष्टाचार और नैतिकता से गिरी हुई अवश्य थी, किन्तु वह मन के हाथों विवश था । जवानी के दिनों में वह अत्यधिक शर्मीला बना रहा । जिन्दगी का सुनहरा जमाना किसी से प्रेम की पेंगें बढ़ाये बिना बीत गया । जब विवाह हुआ तो कुछ वर्षों तक वह अपनी पत्नी से पागलों की तरह प्रेम करता रहा, लेकिन धीरे-धीरे पत्नी में कोई आकर्षण बाकी न रहा । जब कभी पत्नी अच्छी लगती तो बस हाथ बढ़ाने भर की देर होती । वहाँ इनकार का सवाल

कठिन डगरिया

ही पैदा न होता था। धीरे-धीरे अपनी पत्नी उसे रसहीन लगने लगी और उसने रूप के बाजार का चक्कर लगाना शुरू किया। वहाँ पर हर दलाल यही कहता कि बस साहब हफ्ते भर से ही बाजार में बैठने लगे हैं। पहले-पहल तो यह विचार कुछ कम आनन्दप्रद नहीं था, किन्तु जब दलालों के हथकण्डों का पता चला तो उसका मन बुझ-सा गया। दुनिया का धंधा तो चलता रहा, किन्तु प्रेम की प्यास के मारे हरदम काँटा-सा खटकने लगा।

पिछले दिनों रविवार के दिन वह अपने मकान के सामने चबूतरे पर बैठ आखबार देख रहा था कि उसने बैजनाथ को कामिनी के साथ अपने पास आते देखा। दोनों की आँखें चार होने पर बैजनाथ ने कहा—“हम इस शहर में नये-नये आये हैं, मकान खोज रहे हैं। क्या आप हमारी मदद कर सकेंगे?”

यह उनकी पहला मुलाकात थी। उसने बड़ी दौड़-धूप के बाद उसे मकान दिलवा दिया। यद्यपि उनके घरों के बीच मील भर से कम फासिला नहीं था, लेकिन इसके बावजूद दोनों घरानों के सम्बन्ध घनिष्ठ होते गये। एक दूसरे के यहाँ आना-जाना, दुख-सुख में शरीक होना, कभी-कभी मनोरञ्जन के लिए शहर के बाहर चले जाना उनके लिए साधारण बात हो गई थी।

ऐसे अवसरों पर कामिनी उसकी ओर स्नेहमयी दृष्टि से देख लेती...पहली बार तो उसका कलेजा धक-धक करने लगा। वह समझा कि उसकी आँखों ने धोखा खाया है, लेकिन फिर जब दबी-दबी मुस्कानों का आदान-प्रदान भी हुआ, तब उसे अनुभव हुआ कि वे शायद एक दूसरे से प्रेम कर सकेंगे। कभी-कभी उसका मन उसे धिक्कारता किन्तु फिर वह यह कह कर उसको समझा लेता कि कामिनी की ओर से ही इसकी शुरुआत हुई है...कभी सोचता—मामूली दिल्लीगी ही तो है, जरा सी चुहल हो जाती है तो मन बहला रहता है। इसमें हर्ज

मैं जरूर रोऊँगी !

ही क्या है...लेकिन यह सब ऊपरी मन की बातें थीं, क्योंकि दिल की गहराइयों में वह अच्छी तरह महसूस करने लगा था कि उसे कामिनी से प्रेम हो गया है।

रास्ता चलते-चलते वह कामिनी के विषय में सोचता रहा। अभी तक उसने उसे स्पर्श तक न किया था। शायद आज कोई विशेष घटना घटे। सम्भव है कि वह इस अपनी प्रथम प्रेमीका के बहुत निकट पहुँच जाय।

अब वह अपनी गली में पहुँच चुका था। जिया पनवाड़ी की दुकान उसके घर के पास ही थी। दुकान के पास से गुजरते समय सुलगती हुई रस्सी देख कर उसे सिगरेट सुलगाने का खयाल आ गया। यदि कोई मित्र उससे मिलने के लिए आता, तो घर वालों को पता हो या न हो, लेकिन जिया अवश्य इस बात का ध्यान रखता था। अतएव सिगरेट सुलगा कर उसने जिया से पूछा—“क्यों बे जिये ! मुझसे कोई मिलने के लिए तो नहीं आया था ?”

उस समय जिया सुँघनी सुँघ रहा था। झूँक आने को ही थी, इसलिए मुँह से जवाब न दे सका। कभी स्वीकारात्मक रूप से सिर हिलाता, कभी नकारात्मक रूप से। अन्त में मालूम हुआ कि कोई नहीं आया था।

रिक्खी ने सिगरेट का कश खींचा और घर की ओर बढ़ा। दरवाजे के आगे जो तीन सीढ़ियाँ बनी हुई थीं, उसकी दो सीढ़ियाँ उखड़ चुकी थीं। हर समय उस पर से फिसलने की आशंका रहती थी। उसे कई बार ध्यान आया कि उनकी मरम्मत करवा दी जाय, लेकिन बेपरवाही के कारण यह काम पूरा न हो सका !

घर के अन्दर घुसा तो देखा कि शान्ता बड़े आइने के सामने बैठी बाल बना रही थी। लगता था, अभी-अभी नहा कर आई है। उस समय वह बड़ी प्यारी दिख रही थी। उसके मित्र कहा करते—“यार,

कठिन डगरिया

तुम्हारी पत्नी तो बड़ी सुन्दर है, फिर बाजारों में इधर-उधर धक्के क्यों खाते फिरते हो ?”

शान्ता ने बालों को एक हाथ से घुमा कर आगे लाते और उनमें कंघी करते हुए कहा—“जी, मैंने अपना सामान तैयार कर दिया है।”

“भई, आज तो मैं नहीं जाऊँगा।”

“क्यों ?” शान्ता ने आश्चर्य से आँखें फाड़ कर पूछा।

“जिस आदमी से मिलना था वह स्वयं कल यहाँ आ रहा है... नल बन्द तो नहीं हुआ ? जरा नहा लूँ...”

वह बाथ-रूम में चला गया और वहाँ—‘क्या करूँ, तुम्हसे मुहब्बत हो गई...हो गई...’ गाता रहा।

जब कपड़े पहन चुका तो पत्नी ने पूछा—“अब खाना खा कर ही जाइयेगा बाहर ?”

“नहीं भई, मुझे देर हो रही है। एक दोस्त से मिलना है। खाना बाहर ही खाऊँगा। इन्तजार में बैठी मत रहना।”

यद्यपि उसकी पत्नी को उस पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं था, लेकिन उसने ब्रैजनाथ के घर का नाम जान-बूझ कर न लिया। आखिर फ्रायदा ही क्या ? स्त्रियों वहमी तो होती ही हैं।

आइने के सामने खड़े-खड़े उसने अपने रूप का निरीक्षण किया और फिर स्वयं ही निर्णय किया कि उसकी सूरत ब्रैजनाथ से कहीं अच्छी है। यदि कामिनी उसे अपने पति से अधिक अच्छा समझती है तो इसे उसकी सुर्चा ही समझना चाहिए।

खूब बन-ठन कर उसने अपने आप पर आखिरी निगाह डाली। कोट के ऊपर वाली जेब में रंगीन रुमाल ठिकाने से रखा, गालों पर हाथ फेर कर उनका चिकनापन देखा। दाईं की गाँठ ठीक की। पतलून की क्रीज पहलू बदल-बदल कर देखी। फुट पर जमी हुई गर्द को बारीक तह को चुटकी बजा-बजा कर साफ किया। चाँदी का सिगरेट

मैं जरूर रोऊँगी !

केस जेब में डालते हुए उसने एक नजर पत्नी की ओर देखा। आज वह सचमुच सुन्दर दिखाई पड़ रही थी। दोनों लड़के नाना के घर गये हुए थे। उनकी अनुपस्थिति में पत्नी को प्यार करने में भी कोई रुकावट नहीं थी। लेकिन वह जल्दी में था, इसलिये वह छुड़ी घुमाता हुआ घर से निकल आया। एक क्षण के लिये उसे खयाल आया कि वह सिगरेट केस में अब्दुल्ला सिगरेट रख लेता तो अच्छा होता। वह अब्दुल्ला सिगरेट का बड़ा प्रशंसक था, और विशेष कर उन्हें उस समय पीता था जब वह प्रसन्न हो। अब सिगरेट लेने के लिए वापस जाने को उसने असगुन समझा, इसलिए यार के कूचे की ओर बढ़ता ही चला गया।

उसका मन प्रसन्न था। कदम बड़े बाँकपन से उठ रहे थे। आस-पाम की प्रत्येक वस्तु उजली और नई नई सी दिख रही थी। मानो प्रत्येक वस्तु ने नया जन्म लिया हो। उसके चेहरे पर चमक थी और गति-विधि से चंचलता टपकती थी। अपनी पत्नी और घर से दूर वह अपने आग को स्वच्छन्द पत्नी की भाँति हलका फुलका महसूस कर रहा था। वह उस कॉलेज के छात्रों की भाँति दिख रहा था, जो घर से शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा गया हो और अब घर से आने वाले रुपये के बल पर रोमांस लड़ा रहा हो। केवल स्त्री का व्यक्तित्व उसके सामने कुछ भी नहीं था। वह तो प्रेम का भूखा था, प्रेम पीड़ा का इच्छुक। असल चीज तो वह अपनत्व का प्रभाव था जो वह 'कम्मो' के प्रति अनुभव कर रहा था। उसकी वही एक अभिलाषा थी कि यदि उनका प्रेम बढ़े और दोनों की धड़कती हुई छातियाँ किसी दिन मिल जायें तो वह उसे 'प्यारी कम्मो' कह कर बुलाये। कभी-कभी जब वह कलना के तिलिस्म में से निरुलता तो सोचता, क्या पता उसके भाग्य में कामिनी की मुस्कराहट ही लिखी हो।

कठिन डगरिया

आखिरकार शाम के धुँधलके में जब बैजनाथ का बिना पलस्तर की ईंटों का मकान दिखने लगा तो उसके कदम डगमगाने लगे। यहाँ तक तो वह एक असपष्ट लेकिन मंत्र-मुग्ध करने वाले भाव के अन्तर्गत चला आया था...लेकिन अब वह सोचने लगा कि उसे उनके घर में किस ढंग से प्रवेश करना चाहिए। इस समस्या के कई पहुलानों पर विचार करने के बाद उसने यह निश्चय किया कि इस मामले में अधिक सोचने या योजनायें बनाने की आवश्यकता नहीं। हर बात बड़े स्वाभाविक रूप में होना चाहिए। अतएव वह बड़ी बेतकल्लुफी से उनके घर के अन्दर दाखिल हो गया। बड़े कमरे से पति-पत्नी के हँसने और बातें करने की आवाजें सुनाई दे रही थीं। रिकखी दरवाजे में जा खड़ा हुआ। बैजनाथ पाँव फैलाये कुर्सी के हथ्ये पर बैठा हुआ था। उसने नये कपड़े पहन रखे थे, जिससे जाहिर होता था कि शायद वह बाहर जाने की तैयारी कर रहा है। कामिनी उसकी कमीज के बटन टाँक रही थीं और वह गा रहा था। गाते समय उसका शरीर हिल रहा था। और पत्नी बिगड़ रही थी, “अब जरा गाना बन्द कर दीजिए न, सुई छाती में उतर जायेगी तो फिर न कहियेगा।”

बैजनाथ मसखरेपन से बोला, “तुमसे नहीं कहेंगे तो और किससे कहेंगे माई डार्लिंग ! और हमारा कौन है ?” और वह फिर बड़े भड़े ढंग से नथुने हिला-हिला कर टूटे हुये बॉस की सी आवाज में एक विसा-पिटा सा फिल्मी गाना गाने लगा—

“तेरा कौन है ?

किससे करता मूरख प्यार प्यार प्यार !

तेरा कौन है...कौन है...हाँ, तेरा कौन है ?”

इधर पति-पत्नी में यह चुहलें हो रही थीं, उधर छः महीने का बच्चा पालने में पड़ा रो रहा था। लगता था कि बैजनाथ उस समय बड़े अच्छे मूड में है। जैसे-जैसे पत्नी उसकी हरकतों से चिढ़ती वैसे

मैं जरूर रोऊंगी !

वैसे वह उसे और अधिक परेशान किये जाता । वह झुँझला कर कहती, “अब मटकना बन्द कीजिए...मुन्ना रो रहा है ।”

रिक्खी दो कदम आगे बढ़ा, और उसने खाँस कर उन्हें अपने आगमन की सूचना दी ।

बैजनाथ ने सिर उठाकर उसकी तरफ देखा । पहले तो हैरान रह गया, फिर चिल्लाया, “हल्लो, हल्लो ! यार मेरा खयाल था, अब तक तुम गाड़ी में बैठे होगे ?”

रिक्खी ने हाथ बढ़ाते हुए जवाब दिया, “नहीं भाई, दिल्ली जाने का प्रोग्राम कैन्सिल हो गया...कृपाराम से मिलना था, उसका तार आया है कि कल वह खुद कानपुर पहुँच रहा है...”

इतने में कामिनी ने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते किया ।

“जी नमस्ते !” उसने बैजनाथ से हाथ मिलान के बाद दोनों हाथ जोड़ कर बड़े सरल भाव से उत्तर दिया ।

मुन्ना रो रहा था । कामिनी उसे प्यार से पालने में से उठा कर चुप कराने की चेष्टा करने लगी, “मुन्ना क्यों रो रहा है...हमारा मुन्ना क्यों रो रहा है...न न...क्यों जी, आपकी मुन्नी भी रो रही थी ?”

“जी नहीं, हमारी मुन्नी तो सोई पड़ी थी । आज कल हमारे घर में बच्चों का शोर बहुत कम होता है । दोनों बच्चे नाना के यहाँ गये हुए हैं । बच्चे हैं न ? नई जगह पर उनका भी दिल बहला हुआ है । घर में मुन्नी बेचारी है, सो चुपचाप पड़ी रहती है ।”

“न जी न, हमारा मुन्ना भी तो नहीं रोता ।” कामिनी ने बच्चे को चुमकाते हुए कहा, “आज तो इसके बाबू जी ने इसे रुला-रुला कर हलाकान कर दिया है ।...मैं इनके बटन टॉक रही थी और यह हिल-हिल कर गाते जा रहे थे । मुन्ना जाग उठा और रोने लगा ।”

जब वह बातें कर रही थी तो रिक्खी उसके लचकीले शरीर और तेजी से हिलते हुए होठों की ओर देख रहा था । उस समय तो सज-धज

का तो कोई सवाल ही नहीं था, लेकिन मामूली घरेलू कपड़ों में भी कामिनी कितनी सुन्दर दिख रही थी। और फिर अकस्मात् उसे जैसे कुछ खयाल आया हो, वह बैजनाथ को सम्बोधित कर बोला, “यार, मालूम होता है तुम बाहर जाने की तैयारी कर रहे थे... मैं तो यों ही इधर चला आया। अगर तुम किसी काम से जा रहे हो तो चलो।”

“नहीं यार बैठो, बातें करो।”

“नहीं भाई, मुझ से यह न होगा।”

कामिनी ने बच्चे को गोद में झुलाते हुए कहा, “आज इनकी दावत है कहीं।”

“सचमुच... भई वाह, तब तो मैं तुम्हारा रास्ता नहीं गेकना चाहता। जरूर जाओ। तकल्लुफ की जरूरत ही क्या है?”

“नहीं, अब मैं नहीं जाऊँगा। तुम इतनी दूर से आए हो, अब तो मिलकर बातें करेंगे। और हाँ जीलानी के यहाँ ब्रिज खेलने क्यों न चलें?”

लेकिन रिक्खी को अपना व्यवहार बहुत अनुचित लग रहा था, “बैजनाथ भाई, अपना प्रोग्राम खराब मत करो। मैं तो योही चला आया था। बस अब घूमते हुए घर चला जाऊँगा... यह जरा भद्दी सी बात है कि मेरी वजह से तुम दावत में न जाओ... और फिर हम दोनों में तकल्लुफ तो होना भी नहीं चाहि।”

बैजनाथ कुछ क्षणों तक चुप रहा, फिर बोला, “इतनी दूर से आये हो, हम दोनों का समय खूब कट सकता है। हाँ यार, एक बात सूझी है मुझे। तुम यहीं बैठो और मैं जरा खाना खा कर अधिक से अधिक एक घंटे के अन्दर वापस आ जाऊँगा। मेरी वापसी तक तुम भोजन भी कर लोगे। फिर हम जीलानी के यहाँ चले चलेंगे। बड़े मजे का आदमी है। गप्प भी उड़ेगी, और ब्रिज भी खेला जायेगा।”

रिक्खी का दिल उछल कर जैसे गले में आ रहा। एक घंटे के लिए

मैं जरूर रोऊँगी !

वह और कमिनी अकेले रह जायेंगे । गोदी का मुन्ना तो सो ही जायेगा । उससे बड़ा चार वर्ष का बालक भी सुलाया जा सकेगा... उसने तेजी से उचटती हुई दृष्टि कामिनी पर डाली । भौंति-भौंति के विचारों में घिरा वह कुछ बोल न सका ।

बैजनाथ कहता चला गया, “कहो यार, कैसी रही... भई, कहीं जाना नहीं । तुम्हें मेरी कसम, मैं बहुत दूर नहीं जा रहा हूँ । यहीं अपने डाक्टर शर्मा ही के यहाँ तो दावत है । तुम शायद नहीं जानते उनको, तुम्हारे ही रास्ते में मकान पड़ता है उनका । अच्छा तो वादा करो कि तुम नहीं जाओगे । यह न हो कि मैं भागा-भागा वापस पहुँचूँ और तुम गायब हो जाओ... बस, आज शानदार प्रोग्राम रहेगा ।”

रिक्खी चुपचाप खड़ा रहा । भला वह कहाँ जा सकता था । उसे विश्वास नहीं होता था कि उसकी किस्मत भी इतनी अच्छी हो सकती थी । उसे ऐसी आशा ही कहाँ थी । परन्तु भगवान ने अपने भक्त की प्रार्थना स्वीकार कर उसके रास्ते का काँटा साफ कर दिया ।

“लो, यह रहे सिगरेट... और यह रहा ‘वीकली’ ... कामिनी इन्हें रोधी खिला देना... जरा खयाल रखना, भाग न जायें कहीं । मैं चुटकी बजाते आया ।”

यह कह कर वह जल्दी-जल्दी उठा और पतलून के बटन लगाने लगा । ब्रश से बालों को बराबर किया । टाई की गँठ ठीली करके दोनों सिरों का नीचे-ऊपर किया । फिर तेज़-तेज़ कदम उठता हुआ बाहर वाले दरवाजे की ओर बढ़ा । कामिनी पुकार कर बोली, “हाय, कैसे भागे जा रहे हैं । घर से बाहर जाना हो तो पाँव जमीन पर लगते ही नहीं । अब जल्दी लौट आइयेगा ।”

“हाँ भई, लौट आऊँगा । लोग हमारा ईंघन उठा-उठा कर ले जाते हैं । ब्यढ़ी का दरवाजा बन्द कर लो । अच्छा यार, चला मैं ।”

कठिन डगरिया

ज्योढ़ी का दरवाजा बन्द करने के बाद कामिनी बैठक की खिड़की के पास आ खड़ी हुई। एक बार फिर पति से आँखें चार हुईं। पति ने हवा में हाथ ऊँचा करके हिला दिया।

वह वहाँ चुपचाप खड़ी, गली के नुक्कड़ पर से गायब होते हुये बैजनाथ को देखती रही। इस बीच में रिक्खी भी चुपके से दीवार से लग कर उसके निकट खड़ा हो गया था। कुछ देर तक कामिनी सुनसान गली की ओर देखती रही, और फिर उसका हाथ ऊपर आकर बिजली के बटन की ओर बढ़ा और दूसरे क्षण में बिजली का बल्ब बुझ गया और पर्श पर बिछी हुई दरी पर खिड़की से आती हुई चाँदनी फैल गई।

रिक्खी ने बाजू बढ़ाया और उसका हाथ कामिनी के पेट पर से होता हुआ उसके भरे-भरे कूल्हे पर जा कर टिक गया। कामिनी की कमर में हल्की-सी कंपन हुई, और रुक गई। वह और निकट होकर उसके साथ खड़ा हो गया। उन दोनों की आँखें चार नहीं हुईं, लेकिन कामिनी की कमर ने एक कंपन के बाद गतिहीन होकर मानो उसके प्रश्न का स्वीकारात्मक उत्तर दे दिया था।

वे चुपचाप खड़े थे। दो एक बार रिक्खी के होठों से निकलती हुई प्रेम रस में डूबी अत्यन्त मन्द सी आवाज़ सुनाई दी—“कम्मो ! कम्मो ! !”

“बीबी जी !...बी...बी...जी ! !” बड़े लड़के ने पुकारा।

वह उच्च स्वर में बोली, “आ गई बेटा, आई। बैठे रहो वहीं पर।”

रिक्खी की पकड़ ढीली पड़ गई और वह जरा परे सरक गई।

“सुनो...कम्मो...सुनो ! !” उसकी आवाज़ अब बुरी तरह काँप रही थी।

कामिनी दो कदम परे दीवार से पीठ लगाये, दोनों हथेलियाँ दीवार पर टिकाये और सिर नवाये खड़ी थी। कमरे का वातावरण स्वप्निल था। चारों ओर उजली-उजली धुँध सी छाई थी। कामिनी की आकृति

मैं जरूर रोऊँगी !

सुन्दर मूर्ति के समान दिख रही थी। केवल उसकी छातियों के उतार-चढ़ाव से पता चलता था कि वह निर्जीव मूर्ति नहीं है।

“कम्मो ! सुनो...मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।”

मैं तुमसे प्रेम करता हूँ—कैसे घिसे पिटे शब्द थे, जिसे उसने बीसों बार किताबों में पढ़ा था, फिल्म के पर्दे पर सुना था। लेकिन आज वह इन शब्दों को इस प्रकार कह रहा था मानो यह उसी के गढ़े हुए हों।

जवाब में कामिनी ने पलकें उपर उठाईं और एक बार भरपूर दृष्टि से उसकी ओर देखा और फिर पलकें झुका कर रह गई।

वह बिजली के कौंदे की तरह आगे बढ़ा। उसकी कमर को बाजूआं में लेकर उसे अपनी ओर खींचा, तो उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो उसने फूलों की कोमल डाली को पकड़ कर झनझना दिया हो। उसका शरीर सिर से पाँव तक कामिनी के नर्म और लचकीले शरीर के स्पर्श से आनन्दित होने लगा। एक तीव्र और क्षणिक आवेश में उसने न जाने किस-किस प्रकार उसे लिपटाया, चूमा...और फिर लड़के के पुकार की आवाज़ें हथौड़े की धमक की भाँति सुनाई देने लगीं।

और फिर कामिनी उड़ती हुई खुशबू की तरह उसकी आँखों से ओझिल हो गई।

वह कमरे में अकेला खड़ा रह गया। खिड़कियों से आने वाली चाँदनी में कुर्सियाँ, तिपाइयाँ, तस्वीरें, पर्दे और पुस्तकें, प्रत्येक चीज स्वप्निल और सुप्त दिख रही थीं। केवल उसकी टाँगें और बाजू हिल रहे थे। साँस तीव्र गति से चल रही थी। अनायास उसके हाँठों से कुछ अस्पष्ट से स्वर निकल पड़े। कुछ देर तक वह शून्य में घूर-घूर कर देखता रहा। एक बार प.प की तीव्र भावना से वह कँप भी उठा। किन्तु केवल एक क्षण के लिए, फिर उसने रूमाल से मुँह

और माथा पोंछा। कपड़ों की सिलवटों और कोट की भोल खाई हुई आस्तीनों को खींचकर बराबर किया। फिर धीरे-धीरे कदम उठाता हुआ आँगन में बने हुये रसोई घर की ओर बढ़ा। कामिनी चूल्हे के पास बैठी हुई पतीली में कढ़ी चला रही थी। उसका बड़ा लड़का उसके घुटने के साथ लगा हुआ ऊँघ रहा था। चूल्हे में लपलपाते हुए शोलों की रोशनी में वह कामिनी के दमकते हुए चेहरे की ओर देखता रहा। परस्पर खींच-तान में कामिनी के बाल बिखर गये थे, गाल सुर्ख हो रहे थे, कमीज़ दोन्तीन जगह से मसक गये थे...यह सब उसकी ज्यादाती का फल था, इस विचार पर वह एक नये आनन्द में डूब गया।

जाहिर में कामिनी उसके आगमन से बेखबर दिखाई देती थी। वह अपने कार्य में व्यस्त रही। बच्चे को ऊँघता देखकर उसने कहा, “चलो, तुम्हें सुला दूँ।”

और वह उसे सुलाने के लिए अन्दर चली गई।

रिक्खी चूल्हे के पास एक स्टूल पर बैठ गया। वह मन ही मन में परिस्थितियों का निरीक्षण करने लगा।

कामिनी फिर चूल्हे के पास आ बैठी। उसकी गति-विधि से किसी असाधारण घटना का आभास नहीं होता था। पतीली चूल्हे से उतार कर उसने तवा रख दिया और आटा तोड़ कर पेड़ा बनाने लगी। फिर उससे आँखें मिलाये बिना बोली, “आपको सर्दी लग रही होगी। चूल्हे के पास आ जाइये न।”

“सचमुच सर्दी बहुत सख्त पड़ रही है।” यह कह कर उसने स्टूल खिसकाया और चूल्हे के निकट आ गया।

रिक्खी की नज़रें उसके गालों, आँखों, तेज़ी से हिलते हुये होठों और हाथों पर जमी हुई थीं। वह मन में उस तृष्णा का बड़ी तीव्रता

मैं जरूर रोऊँगी !

से अनुभव कर रहा था, जो प्यासे होठों से शर्बत का गिलास परे हट जाने से महसूस होता है ।

कामिनी ने रोटी उलटते हुए कहा, “आपको भूख लग रही होगी ?”

उसने उठ कर कामिनी के गाल पर होंठ रख दिये, “नहीं, कम्पो ! मुझे भूख नहीं लग रही है ।” यह कह कर वह उसे अपनी बांहों में समेटने की चेष्टा करने लगा ।

कामिनी ने अपने आप को उसकी इच्छा पर छोड़ते हुये कहा, “मुझे रोटी तो पका लेने दीजिये ।”

“नहीं, मेरी जान कम्पो !...रोटियाँ फिर पका लेना ।” यह कह कर उसने हाथ मार कर तवा चूल्हे से गिरा दिया ।

.....यह प्रसन्न था और सिर से पाँव तक नशे में डूबा हुआ था । अब वह बैठक में दरी पर बैठा हुआ था । टाँगे उठा कर पास ही बिछी कुर्सी पर पाँव टिका रखे थे और बिजली के जगमगाते हुए प्रकाश में ‘वीकली’ पेट पर धरे उसके पन्ने उलट रहा था ।

एक बार फिर कामिनी चूल्हे के आगे बैठी उसके लिये पराटें पका रही थी । उस दिन से पहले ज़िन्दगी के जो दिन बीत चुके थे वे बिल्कुल नीरस लगने लगे । यह आनन्द, यह स्वाद उसने पहले कभी महसूस न किया था । मन सन्तुष्ट था, शरीर हलका-फुलका और चुस्त हो रहा था । आत्मा अकथनीय नशे में डूबी थी । आज कामिनी और वह एक हो गये थे ।

भोजन तैयार हो गया तो उन्होंने एक साथ मिल कर खाया । एक दूसरे के मुँह से मुँह मिला कर कौर छीनते रहे । हँसी-मज़ाक और चुहल में समय कट गया, और अन्त में दरवाजे की कुन्डी खटखटाने की आवाज़ सुनाई पड़ी ।

कठिन डगरिया

कामिनी ने दरवाजा खोला । बैजनाथ का सरल मुख देखकर रिक्खी के मन को एक चोट सी लगी । लेकिन कामिनी आड़े आई, “आप के दोस्त तो उठ-उठ कर भाग रहे थे । बड़ी मुश्किल से बिठाये रक्खा मैने ।”

बैजनाथ ने बेतकल्लुफी से उसके कन्वे पर हाथ मार कर कहा, “यार, कमाल करने हो । आखिर घबराने की क्या बात थी ?”

दोस्त की सादगी और सद्भाव देख कर रिक्खी को शर्म सी महसूस होने लगी और वह कुछ भी नहीं कह सका ।

“कहो, खाना खा लिया ?”

“हाँ !”

“आओ, तो फिर चलो जीलानी के यहाँ ।”

रास्ते में बैजनाथ दावत की बातें करता रहा । कहने लगा, “डाक्टर शर्मा मेरे गहरे दोस्तों में हैं । बड़े प्रेम से खिलाया पिलाया । वापस नहीं आने देते थे । हजार हीलों से जान छुड़ा कर आया हूँ ।”

जब वे जीलानी के यहाँ पहुँचे तो मालूम हुआ कि उनके यहाँ कोई फौजी रिश्तेदार बाहर से आये हुये हैं, इसलिए वे ‘ब्रिज’ न खेल सकेंगे ।

उनका प्रोग्राम चौपट हो गया । कुछ देर तक वे इधर-उधर टहलते रहे । फिर बैजनाथ ने कहा, “आओ, घर पर बैठें; सर्दी बहुत है ।”

“भई, अब जाने भी दो । मैं घर चल रहा हूँ । फिर मुलाकात होगी ।”

और हाथ मिला कर वे दोनों एक दूसरे से जुदा हो गये ।

आज की आनन्दप्रद घटना से उसका मन यद्यपि बहुत प्रसन्न था, किन्तु अपने मित्र के प्रति विश्वासघात के कारण उसकी आत्मा

मैं जरूर रोज़गी !

उसे धिक्कार भी रही थी। और जब वह अपने घर के पास पहुँचा तो अपनी भोली और मासूम पत्नी का ध्यान करके उसका मन और बोझिल हो गया। बेचारी सर्दी में ठिठुरी हुई, आग के पास बैठी उसका इन्तज़ार कर रही होगी।

जब वह जिया की दूकान के पास पहुँचा तो नित्य की भाँति उससे पूछा, “क्या बे जिये, कोई आया तो नहीं था हमसे मिलने के लिए?”

जिया ने सिर ऊपर उठाया और बोला, “जी, बैजनाथ बाबू आये थे। सीधे भीतर चले गये। मुझसे कुछ बोले नहीं। जब आप नहीं आये, तो बेचारे इन्तज़ार करके चले गये।”

“बैजनाथ !” उसके कंठ में हलकी सी चीख निकल गई और वह ठिठक कर खड़ा हो गया।

“हाँ जी ! बैजनाथ बाबू।”

दूकान से मकान तक चन्द कदम का फासला उसने बहुत धीरे-धीरे तय किया। जब वह सीढ़ियों पर कदम रखने लगा तो उसने देखा कि खड़ी हुई दो ईंटे फिर अपनी जगह से हट गईं। उसने सावधानी से उन्हें टिका कर रख दिया और फिर एक क्षण के मौन के बाद उसके मुँह से मद्धिम-सी हँसी निकल गई और जब वह ड्राइङ्गरूम में दाखिल हुआ तो वहाँ पर हर चीज़ जानी पहचानी हुई थी। वातावरण शान्त और आनन्दप्रद महसूस हो रहा था।

उसकी पत्नी अन्दर वाले दरवाजे में खड़ी दीख पड़ी। वह उस समय नये खिले फूल की भाँति ताजी और उजली दिखाई दे रही थी। वह फूल, जिसका मुँह शबनम ने बड़ी सावधानी से धो डाला हो या जिस पर जमी हुई गर्द की अज्ञात तह को किसी ने चूम-चूम लिया हो।

वह बड़े कोच पर बैठ गया।

शान्ता फूल की कोमल डाली की भाँति लचकती हुई उसके पास आई और उसके पास कोच में धँस गई।

कठिन डगरिया

उसने सिर से पाँव तक पत्नी का निरीक्षण किया और मुस्करा कर बोला, ‘शन्नो ! आज तो तुम बहुत प्रसन्न दिख रही हो ।’

अपने विशिष्ट अन्दाज़ में बालों पर हाथ फेरते हुये वह मुस्करा कर हँस दी । उसके प्रफुल्लित होठों में से सुफेद-सुफेद दाँत प्रगट हुए और उसने बिना कुछ कहे स्वीकारात्मक भाव से सिर हिलाते हुये उसके कंधे पर गाल टिका दिया ।

शन्नो की नौद की माती पलकें बांझिल हो कर झुकने लगीं । वह कुछ क्षणों तक शन्नो के चेहरे की तरफ देखता रहा फिर उसकी पीठ पर हलकी सी थपकी देकर बोला, “मैं भी बहुत ही खुश हूँ शन्नो !... जरा इधर लाओ तो अब्दुल्ला सिगरेटों का डिब्बा ।”

